झील का उत्तर

परमगुरु ओशो के
श्री चरणों में
समर्पित

-स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती
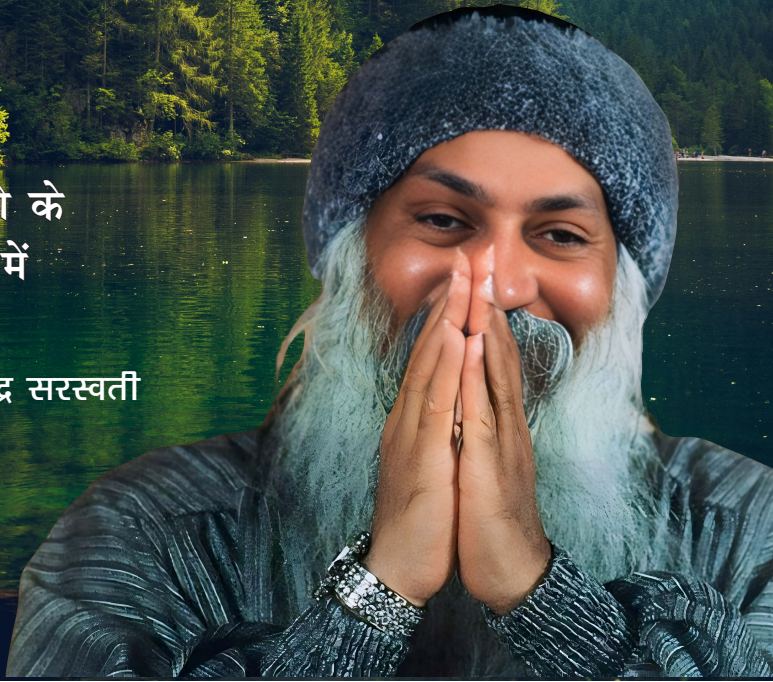
की प्रस्तुति

श्री रजनीश ध्यान मंदिर

कुमाशपुर–दीपालपुर रोड

जिला: सोनीपत, हरियाणा 131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

प्रथम निवेदन–

कृपया प्रतिदिन एक ही कथा पढ़ना बस!

+91 7988229565

+91 7988969660

+91 7015800931

Rajneeshfragrance

सद्गुरु ओशो द्वारा सुनाई एक बोध-कथा से शुभारंभ

झील का उत्तर

सूफियों में एक कहानी है कि एक पहाड़ के पास एक झील है। और उस झील के पास जब भी कोई साधक पहुंच जाता है और आग्रह करता है झील से, और आग्रह अगर वस्तुतः प्रामाणिक होता है, तो झील से उत्तर मिलते हैं।

एक फकीर वर्षों की तलाश के बाद अंततः उस झील के पास पहुंच गया। और उसने चिल्ला कर जोर से पूछा कि मेरा एक ही सवाल हैः जीवन क्या है? झील चुप रही। लेकिन वह पूछता ही गया। कहते हैं तीन दिन अहर्निश, रात और दिन उसने एक कर डाले। एक ही सवाल कि जीवन क्या है? आखिर झील के देवता को भी झुकना पड़ा। और उसने कहा कि तेरी निष्ठा पूरी है। तू कोई साधारण कुतूहल से नहीं आया। तू साधारण जिज्ञासु भी नहीं है, तू मुमुक्षु है; इसलिए तेरे प्रश्न का उत्तर हम देते हैंः जीवन एक वीणा है।

उस आदमी ने कहा, और पहेलियां अब नहीं चाहता। सीधा-सीधा उत्तर दो। मैं कोई संगीतज्ञ नहीं हूं। वीणा मैंने अपने जीवन में अभी तक देखी भी नहीं। सुना है नाम; लेकिन मुझे जीवन का भी पता नहीं, वीणा का भी पता नहीं। अब यह एक और उलझन हो गई। अभी मैं जीवन को हल करता रहा, अब वीणा का भी पता लगाऊं! तुम मुझे सीधा-सीधा ही कह दो।

झील ने कहा, उत्तर दे दिया गया है।

तो उस आदमी ने कहा, थोड़े संकेत दो जिससे कि मैं रास्ता खोजूं।

तो झील से उत्तर आया कि तू गांव में जा और पहली तीन दुकानों पर गौर से देख। और जो भी तू पाए, लौट कर उत्तर दे।

वह आदमी गया। उसने पहली दुकान पर देखा, वहां कुछ भी न था, लोहे-लंगर की दुकान थी, धातुओं के अलग-अलग तरह के रूप-रंग के ढेर लगे थे। वह कुछ समझा नहीं कि जीवन से इसका क्या लेना-देना! दूसरी दुकान पर गया। वह एक तारों की दुकान थी। वहां भी उसको समझ में नहीं आया कि जीवन से तारों का क्या लेना-देना? तीसरी दुकान एक बढ़ई की दुकान थी।

वह बड़ा नाखुश लौटा। उसने सोचा कि इससे तो हम पहले ही बेहतर थे। इस झील से पूछने के पहले ही बेहतर थे। कम से कम इस तरह की मूढ़ता तो दिमाग में न थी। इससे जीवन का क्या लेना-देना? यह तो ज्ञान न मिला और अज्ञानी हो गए। लौट कर नाराज आया और उसने झील से कहा कि यह-यह मैंने देखा। पर इससे जीवन का क्या संबंध है?

झील ने पुनः कहा कि जीवन एक वीणा है। अब तू इस सूत्र को पकड़ ले और इसकी खोज कर। वर्षों बीत गए। वह आदमी करीब-करीब भूल ही गया वह खोज- जीवन का वीणा होना। एक दिन अचानक एक बगीचे के पास से गुजरते वक्त उसने किसी को वीणा बजाते सुना। वह स्वरलहरी उसे खींच ली। वह खिंचा हुआ जादू के वशीभूत होकर बगीचे के भीतर पहुंच गया।

कोई कलाकार वीणा बजा रहा था। साधक को पहली दफा दिखाई पड़ा कि वही तार हैं जो दुकान पर पड़े थे। वही धातुएं हैं जो दुकान पर पड़ी थीं, वीणा में लग गईं। और उस बढ़ई ने भी काम किया है। लकड़ी का भी इंतजाम है।

आज उसे सूत्र साफ हुआ। आज उसे साफ हुआ कि जीवन एक वीणा है। लकड़ी भी है,

तार भी हैं, धातुएं भी हैं; अलग-अलग पड़े हैं। कोई संगीत पैदा नहीं होता। तीनों जुड़ जाएं, एक ढंग में बैठ जाएं, तालमेल आ जाए, तो संगीत उठ सकता है। इतना अदभुत संगीत उठ सकता है- निराकार! इतना प्राणों को मोहित कर लेने वाला संगीत उठ सकता है! ऐसी जादूभरी रहस्यपूर्ण घटना घट सकती है!

मैं भी तुमसे यही कहता हूं: जीवन एक वीणा है। लेकिन तुम्हें अपनी वीणा जमानी है। दूसरों की नकल मत करना। उन्हें अपनी वीणा जमानी है। वीणाएं बहुत तरह की हैं। हरेक व्यक्ति के पास अपने तरह की वीणा है और अपने ही तरह का छिपा हुआ संगीत है।

कृष्ण का वचन स्मरण रखना- 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः'। तुम अपनी वीणा को बजाते हुए मर जाओ तो भी तुम महाजीवन को उपलब्ध हो जाओगे। और 'परधर्मो भयावहः' यदि तुम दूसरे की वीणाओं को ढोते-ढोते जियोगे, तो तुम कोरे ही आए, कोरे ही जाओगे। तुम्हारे हाथों में कोई संपदा न होगी। तुमने जीवन व्यर्थ ही गंवाया।

संपादकीय

मित्रो, सद्‌गुरु ओशो द्वारा सुनाए उपरोक्त सूफी कथानक पर आधारित है इस किताब का शीर्षक। जीवन के बारे में जो प्रज्ञा सरलतापूर्वक किस्से-कहानियों से मिलती है, वह सैद्धांतिक व्याख्याओं से नहीं मिल पाती। छोटी-छोटी घटनाएं अपने संदेश को कब हमारे हृदय में चुपके से उतार देती हैं, इसका अहसास ही नहीं हो पाता। प्रस्तुत है ओशो शैलेन्द्र जी द्वारा विभिन्न प्रवचनों में सुनाई गई कथाओं का संग्रह- ओशोमय जीवन दृष्टि से ओतप्रोत।

इस किताब में कोई प्रत्यक्ष निर्देश या आदेश नहीं है। कोई नियम, नीति, सिद्धांत या जीवन-शैली थोपने की कोशिश नहीं है। सिर्फ छोटे-छोटे दृष्टांत हैं, जिन्हें पढ़ते हुए शायद आपके मनोरंजन के संग मन-परिवर्तन भी हो जाए! हृदय में कुछ अंतस-प्रेरणा जाग जाए! जीवन-वीणा जमाने का कोई परोक्ष संदेश मिल जाए! यदि मिल जाए तो वह आपके अंतःकरण से आई हुई आवाज ही होगी... गौर से सुनना, समझना, संभालना और विवेकपूर्वक जीना शुरु कर देना।

इसी आशा के संग आपके हाथों में दे रहे हैं, प्रेरक प्रसंगों का यह अपूर्व संकलन! शायद नैतिकता का सबक सिखाने वाली, इन प्रसिद्ध घटनाओं में से कुछ आपने पहले भी पढ़ी-सुनी होगी; किंतु जब ओशो शैलेन्द्र जी के नजरिये से आप पुनः कथा-सागर में झाकेंगे तो गहराई में छिपे हुए आध्यात्मिकता के अमूल्य मोती भी हाथ लगेंगे।

-मा नियति, संपादिका

अनुक्रम

संख्यात्मक से गुणात्मक क्रांति

सद्‌गुरु ओशो ने कहा है कि यदि दस हजार लोग ध्यानपूर्ण, प्रेमपूर्ण हो जाएं, तो नयी मनुष्यता जन्म सकती है। करीब आठ अरब की जनसंख्या वाली इस पृथ्वी पर इस नगण्य संख्या से भला क्या हो सकता है? आठ लाख मूर्च्छित व्यक्तियों में से एक जागेगा, तो शेष की नींद कैसे टूटेगी?

पॉजीटिव इनर्जी, सकारात्मक ऊर्जा की महत्ता; निगेटिव फोर्सेस से, नकारात्मक शक्तियों से बहुत ज्यादा है। हमारे अनुमान के बाहर है। आपका हिसाब- आठ लाख में एक; गणितीय रूप से ठीक है, लेकिन जिंदगी के अनुपात से बिल्कुल मैच नहीं करता। जीवन का गणित कुछ अलग ही है। कल ही मैं एक अनुसंधान के विषय में पढ़ रहा था कि प्रकृति विज्ञानियों ने जापान के प्रसिद्ध और खूबसूरत मकाक बंदरों का उनके प्राकृतिक परिवेश में ३० सालों तक अध्ययन किया। १९५२ में जापान के कोशिमा द्वीप पर प्रकृतिविज्ञानियों ने बंदरों को खाने के लिए शकरकंद दिए जो रेत में गिर जाते थे। बंदरों को शकरकंद का स्वाद भा गया लेकिन रेत के कारण उनके मुंह में किरकिरी हो जाती थी।

१८ माह की इमो नामक एक मादा बन्दर ने इस समस्या का हल शकरकंद को समीप बहती स्वच्छ जलधारा में धोकर निकाल लिया। उसने यह तरकीब अपनी माँ को भी सिखा दी। देखते-ही-देखते बहुत सारे बच्चे और उनकी माएँ पानी में धोकर शकरकंद खाने लगे।

प्रकृतिविज्ञानियों के सामने ही बहुत सारे बंदरों ने इस नायब तरीके को अपना लिया। १९५२ से १९५८ के दौरान सभी वयस्क बन्दर शकरकंदों को पानी में धोकर खाने लायक बनाना सीख गए। केवल वे वयस्क बन्दर ही इसे सीख पाए जिन्होंने अपने बच्चों को ऐसा करते देखा था। वे बन्दर जिनकी कोई संतान नहीं थीं, वे पहले की भांति गंदे शकरकंद खाते रहे।

तभी एक अनूठी घटना हुई। १९५८ के वसंत में कोशिमा द्वीप के बहुत सारे बंदर शकरकंदों को धोकर खा रहे थे- उनकी निश्चित संख्या का पता नहीं है। मान लें कि एक सुबह वहां ९९ बंदर थे जिन्हें पानी में धोकर खाना आ गया था। अब यह भी मान लें कि अगली सुबह सौवें बंदर ने भी पानी में धोकर शकरकंद खाना सीख लिया।

इसके बाद तो चमत्कार हो गया! उस शाम तक द्वीप के सभी बंदर पानी में धोकर फल खाने लगे। उस सौवें बन्दर द्वारा उठाये गए कदम ने एक वैचारिक क्रांति को जन्म दे दिया था। यह चमत्कार यहीं पर नहीं रुका बल्कि समुद्र को लांघकर दूसरे द्वीपों तक जा पहुंचा! ताकासकियामा द्वीप के सारे बंदर भी अपने फल को पानी में धोकर खाते देखे

गए। शीघ्र ही और भी द्वीपों पर मौजूद बंदर अपने फल धोकर खा रहे थे।

इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि जब किसी समूह में निश्चित संख्या में सदस्यों में जागरूकता आ जाती है तो वह जागरूकता चेतना के रहस्यमयी मानसिक स्तर पर फैल जाती है। सही-सही संख्या का अनुमान लगाना संभव नहीं है लेकिन सौवें बन्दर की क्रान्ति यह बताती है कि जब सुनिश्चित संख्या में यह जागरूकता उत्पन्न हो जाती है तो वह चेतना में घर कर लेती है। ऐसे में यदि केवल एक अतिरिक्त जीव में इस जागरूकता का प्रसार हो जाये तो वह चेतना एकाएक विराट समुदाय में फैल जाती है।

क्या मनुष्यों के विषय में भी ऐसा नहीं कहा जा सकता है? अचानक उन्नीसवीं सदी में लगभग आधी दुनिया में औद्योगिक क्रांति हो गई। बीसवीं सदी ने शिक्षा, नारी मुक्ति, चिकित्सा, भौतिक शास्त्र, अर्थ व्यवस्था और राजनीति के क्षेत्र में विराट परिवर्तन देखे। कार्ल मार्क्स का विचार, सिग्मंड फ्रायड का विचार, अल्बर्ट आइंस्टीन का विचार सब उलट-पुलट कर गया। सदियों से जमी हुई जड़ें उखड़ गईं। सत्य के उजागर होते ही असत्य यूं विलीन हो जाता है जैसे सूर्योदय होने पर रात्रि का अंधकार।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन टी.वी. के सामने बैठा सिसक-सिसक कर रो रहा था। बीवी ने कमरे में प्रवेश करते ही पूछा- 'मियां, कौन सा ट्रेजडी वाला सीरियल देखते हुए इतना फूट-फूटकर रो रहे हो?'

नसरुद्दीन बोला- 'डार्लिंग, यह सीरियल नहीं, हमारी शादी की डी.वी.डी.है।'

इस प्रकार की कहानियां भी शीघ्र ही ऐतिहासिक बातें हो जाएंगी। लद गए शादी के दिन, परिवार की नींव हिल गई है।

सेठ चंदूलाल एक दिन शिकायत कर रहे थे कि क्या ज़माना आ गया है... कलयुगी बच्चे अब मां-बाप का कहना नहीं मानते, जबकि पांच हजार साल पहले सतयुग में भी ठीक ऐसा ही होता था!

उसके भी पहले आदिमानव के युग से ही अवज्ञा की लंबी परंपरा चली आ रही है।

परंपरा तोड़ने की यह परंपरा ही जीवन के विकास की जन्मदात्री है। ओशो के संग एक नए युग का सूत्रपात हुआ है। आध्यात्मिक क्रांति का बिगुल बज चुका है। दस हजार लोग ध्यानपूर्ण, प्रेमपूर्ण हो जाएं, तो नयी मनुष्यता जन्म सकती है। ऐसा होकर ही रहेगा। संख्या का असर गुण पर पड़ता है, ९९ डिग्री तक जल, जल ही रहता है; १०० डिग्री पर अचानक भाप बन जाता है। टाइट्रेशन प्वांइट पर पहुंचकर, परिमाणात्मक भेद से गुणात्मक परिर्वन हो जाता है।

जीवन के विकास में श्रद्धा रखो। जागो। आपका अपना विकास सारी मानवता के लिए वरदान साबित हो सकता है। ध्यान स्वार्थ नहीं, चरम परमार्थ बन सकता है। गुणा-भाग ही न बिठाओ; आशा से भरो और समय रहते कुछ करो।

02

अवरोध बाहर नहीं

कृपया बताएं कि मुझ जैसे साधारण मनुष्य के लिए परमात्मा को पाने में कितना समय लगता है?

पहली बात, तो कोई मनुष्य साधारण नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति असाधारण, अद्वितीय, अनूठा है। इसीलिए कोई औसत सिद्धांत और नियम लागू नहीं होता कि कितना वक्त लगेगा। दूसरी बात, परमात्मा कोई बाह्य-वस्तु नहीं, अंतस-आत्मा का परम रूप है। वस्तुतः पाना नहीं, केवल जानना है। बाधा कहीं बाहर नहीं, अपनी ही समझ, प्यास, लगन और त्वरा में कमी से संबंधित है।

इस घटना से समझो- बहुत समय पहले चीन के तांग प्रांत में एक वृद्ध साधु वू-ताई पर्वत की तीर्थयात्रा पर जा रहा था। वू-ताई पर्वत पर ज्ञान के बोधिसत्व मंजुश्री का निवास माना जाता है। वृद्ध और अशक्त होने के कारण वह धूल भरे मार्ग पर भिक्षा मांगते हुए बहुत लंबे समय तक चलता रहा। कई सप्ताह की यात्रा के बाद उसे बहुत दूर स्थित वू-ताई पर्वत की झलक दिखी।

मार्ग के किनारे खेत में काम कर रही एक बूढ़ी स्त्री से साधु ने पूछा, मुझे वू-ताई पर्वत तक पहुँचने में कितना समय लगेगा?

बुढ़िया ने साधु को एक पल के लिए बहुत गौर से देखा, फिर कुछ बुदबुदाते हुए वह अपनी जगह पर चली गयी। साधु ने उससे यही प्रश्न पुनः दो बार पूछा पर उसने कुछ न कहा। साधु को लगा, शायद बुढ़िया बहरी है। वह अपने रास्ते चल दिया। कुछ कदम आगे वह चला ही था कि उसने बुढ़िया को जोर से यह कहते सुना, दो दिन! वहां पहुँचने में अभी पूरे दो दिन लगेंगे! यह सुनकर साधु ने झल्लाकर कहा, मुझे लगा तुम सुन नहीं सकतीं! यह बात तुमने पहले क्यों नहीं कही?

बुढ़िया बोली, आपने जब प्रश्न पूछा था तब आप आप स्थिर खड़े थे। मैं आपके चलने की गति और उत्साह दोनों देखना चाहती थी।

परमात्मा को वस्तुतः पाना नहीं, केवल भीतर उघाड़ना है, जानना है। अवरोध बाहर नहीं, अपनी समझ, प्यास, लगन और त्वरा में कमी है। अगर कमी नहीं, तो जरा भी विलंब नहीं; इसी क्षण ज्ञान घट सकता है। परमात्मा है स्वयं की चेतना की अनुभूति। संसार के विषयों की ओर भाग रही बहिर्मुखी चेतना, अंतर्मुखी हो जाए... बस! इसी का नाम ध्यान है। तीसरी बात, आत्मा है समयातीत, बियोन्ड टाइम। इसलिए उसे जानने हेतु समय की आवश्यकता नहीं है। साधना में जो समय लगता है, वह आत्मज्ञान को पाने में नहीं, बल्कि अवरोधों को गिराने में व्यतीत होता है।

03

सद्भावना में है स्वर्ग

मनातीत होने की बात सदगुरु ओशो सिखाते हैं लेकिन महेश योगी की तरह भावातीत होने की बात क्यों नहीं?

मन यानि धूर्तता, शोषण करने की कुशलता, धोखा देने में निपुणता। निश्चित ही इसका अतिक्रमण करना है। इस रोग से मुक्त होना है। भावनाओं का केन्द्र है हृदय, अनाहत चक्र, उसे विकसित करना है। प्रकृति से जैसा बीजरूपी हृदय हमें मिला है, हमारी समाज व्यवस्था ने, शिक्षा पद्धति ने उसे खिलने का अवसर नहीं दिया। दुर्भावों को तो भड़काया गया है, जिंदगी नरक हो गई है। सदभावों को बिन्कुल कुचल दिया गया है, उन्हें संवारना होगा; जीवन उन्हीं सदभावों से स्वर्ग बनेगा। विकसित हृदय ही विवेकपूर्ण होता है।

सुनो- अकबर और बीरबल के अनेक किस्से मशहूर हैं। वे दोनों ही बहुत नेक दिल इंसान थे, और गैर-गंभीर भी।

बीरबल सैदव प्रेमभाव में जीते थे। इतना ही नहीं, बादशाह से मिलने वाले इनाम को भी ज्यादातर गरीबों और दीन-दुःखियों में बांट देते थे, परन्तु इसके बावजूद भी उनके पास धन की कोई कमी न थी। दान देने के साथ-साथ बीरबल इस बात से भी चौकन्ने रहते थे कि कपटी व्यक्ति उन्हें अपनी दीनता दिखाकर ठग न लें।

ऐसे ही अकबर बादशाह ने दरबारियों के साथ मिलकर एक योजना बनाई कि देखें कि सच्चे दीन दुःखियों की पहचान बीरबल को हो पाती है या नहीं? बादशाह ने अपने एक सैनिक को वेश बदलवाकर दीन-हीन अवस्था में बीरबल के पास भेजा कि अगर वह आर्थिक सहायता के रूप में बीरबल से कुछ ले आएगा, तो अकबर की ओर से उसे इनाम मिलेगा।

एक दिन जब बीरबल पूजा-पाठ करके मंदिर से आ रहे थे तो भेष बदले हुए सैनिक ने बीरबल के सामने आकर कहा, 'हुजूर दीवान! मैं और मेरे आठ छोटे बच्चे हैं, जो आठ दिनों से भूखे हैं.. आप जैसे भगवान के भक्तों के लिए, भूखों को खाना खिलाना बहुत पुण्य का कार्य है, मुझे आशा है कि आप मुझे कुछ धन देकर अवश्य ही पुण्य कमाएंगे।'

बीरबल ने उस आदमी को सिर से पांव तक देखा और एक क्षण में ही पहचान लिया कि वह ऐसा नहीं है, जैसा वह दिखावा कर रहा है।

बीरबल मन ही मन मुस्कराए और बिना कुछ बोले ही उस रास्ते पर चल पड़े जहां से होकर एक नदी पार करनी पड़ती थी। वह व्यक्ति भी बीरबल के पीछे-पीछे चलता रहा। बीरबल ने नदी पार करने के लिए जूती उतारकर हाथ में ले ली। उस व्यक्ति ने भी अपने पैर की फटी-पुरानी जूती हाथ में लेने का प्रयास किया।

बीरबल नदी पार कर कंकरीले मार्ग आते ही बीस कदम चलने के बाद अपनी जूती पहन लिए। बीरबल यह बात भी गौर कर चुके थे कि नदी पार करते समय उसका पैर धुलने के कारण वह व्यक्ति और भी साफ-सुथरा, चिकना, मुलायम गोरी चमड़ी का दिखने लगा था इसलिए वह मुलायम पैरों से कंकरीले मार्ग पर नहीं चल सकता था।

'दीवानजी! दीन-हीन की पुकार आपने सुनी नहीं?' पीछे आ रहे व्यक्ति ने कहा।

बीरबल बोले, 'जो मुझे पापी बनाए मैं उसकी पुकार कैसे सुन सकता हूँ?'

'क्या कहा? क्या आप मेरी सहायता करके पापी बन जांएगे?'

'हां, वह इसलिए कि शास्त्रों में लिखा है कि बच्चे का जन्म होने से पहले ही भगवान उसके भोजन का प्रबन्ध करते हुए उसकी मां के स्तनों में दूध दे देता है, उसके लिए भोजन की व्यवस्था भी कर देता है। यह भी कहा जाता है कि भगवान इन्सान को भूखा उठाता है पर भूखा सुलाता नहीं है। इन सब बातों के बाद भी तुम अपने आप को आठ दिन से भूखा कह रहे हो। इन सब स्थितियों को देखते हुए यहीं समझना चाहिये कि भगवान तुमसे रुष्ट हैं और वह तुम्हें और तुम्हारे परिवार को भूखा रखना चाहते हैं। लेकिन मैं प्रभु का सेवक हूँ, अगर मैं तुम्हारा पेट भर दूं तो ईश्वर मुझ पर नराज होगा। मैं ईश्वर के विरुद्ध नहीं जा सकता। न बाबा ना! मैं तुम्हें भोजन नहीं करा सकता, क्योंकि ऐसा कार्य कोई पापी ही कर सकता है।'

बीरबल का यह जबाब सुनकर वह चला गया। उसने इस बात की बादशाह और दरबारियों को सूचना दी। बादशाह अब यह समझ गए कि बीरबल ने उसकी चालाकी पकड़ ली है। अगले दिन बादशाह ने बीरबल से पूछा, 'बीरबल तुम्हारे धर्म-कर्म की बड़ी चर्चा है पर तुमने कल एक भूखे को निराश ही लौटा दिया, क्यों?'

'आलमपनाह! मैंने किसी भूखे को नहीं, बल्कि एक ढोंगी को लौटा दिया था और मैं यह बात भी जान गया हूँ कि वह ढोंगी आपके कहने पर मुझे बेवकूफ बनाने आया था।'

अकबर ने कहा, 'बीरबल! तुमनें कैसे जाना कि यह वाकई भूखा न होकर, ढोंगी है?'

'उसके पैरों और पैरों की चप्पल देखकर। यह सच है कि उसने अच्छा भेष बनाया था, मगर उसके पैरों की चप्पल कीमती थी।' बीरबल ने आगे कहा, 'माना कि चप्पल उसे भीख में मिल सकती थी, पर उसके कोमल, मुलायम पैर तो भीख में नहीं मिले थे, इसलिए कंकड़-पत्थरों की गड़न सहन न कर सके।'

इतना कहकर बीरबल ने बताया कि किस प्रकार उसने उस मनुष्य की परीक्षा लेकर जान लिया कि उसे नंगे पैर चलने की भी आदत नहीं, वह दरिद्र नहीं बल्कि किसी अच्छे कुल का खाता-कमाता पुरुष है।

बादशाह बोले, 'क्यों न हो, वह मेरा खास सैनिक है।' फिर बहुत प्रसन्न होकर बोले, 'सचमुच बीरबल! माबदौलत तुमसे बहुत खुश हुए! तुम्हें धोखा देना आसान काम नहीं है।' बादशाह के साथ साजिश में शामिल हुए सभी दरबारियों के चेहरे बुझ गए।

प्रेम एवं सेवा

प्रेम और सेवा में क्या भेद है? दोनों में कौन श्रेष्ठ माना जाए?

यदि प्रेम आत्मा है तो सेवा उसका शरीर है। प्रेम है अदृश्य, सेवा है दृश्य। प्रेम है भाव, सेवा है कर्म। प्रेम है अप्रगट, सेवा है उसी का प्रगट रूप। जैसे देह के बिना आत्मा, भूत-प्रेत हो जाती है, और आत्मा के बिना शरीर लाश हो जाता है; वैसे ही प्रेम और सेवा को समझो। किसे श्रेष्ठ और किसे निकृष्ट कहोगे? दोनों के मिलन से ही जीवन, वास्तव में जीवंत होता है।

मैंने सुना है कि सिखों के पांचवें गुरु अर्जुनदेव जी जब चौथे गुरु के अखाड़े में शामिल हुए तो उन्हें छोटे-छोटे काम करने को दिए गए। उन्हें ढेरों जूठे बर्तन भी साफ करना होता था। जो भी काम बताया जाता, अर्जुनदेव जी उसे बड़ी लगन से पूरा करते थे। छोटे-से-छोटा काम करने में भी उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। वे सभी कामों को जरूरी और महत्वपूर्ण समझते थे। किसी भी काम को करने में उन्हें हीन भावना अनुभव नहीं हुई।

दिनभर सत्संग का आनंद लेने के बाद जब दूसरे शिष्य रात में विश्राम करते थे तब अर्जुनदेवजी आधी रात तक अखाड़े के जरूरी कामों में लगे रहते थे और अगली सुबह जल्दी उठकर पुनः कामों में लग जाते थे।

दूसरे शिष्यों में यह बात फैल गई थी कि गुरूजी, अर्जुनदेव को तुच्छ समझते हैं। परन्तु वे यह नहीं जानते थे कि गुरु में शिष्यों की सच्ची परख है और वे मानव सेवा को सबसे महान कार्य समझते हैं। गुरूजी ने काफी सोच-विचार के बाद समाधि लेने के पूर्व अपने शिष्यों में से एक को अपना उत्तराधिकारी चुन लिया और उसके नाम का अधिकार पत्र लिखकर बक्से में बंद कर दिया। चौथे गुरु के चोला छोड़ने के बाद वह अधिकार पत्र सबके सामने खोलकर पढ़ा गया तो पता चला कि दिवंगत गुरूजी ने अपना उत्तराधिकारी अर्जुनदेव जी को चुना था।

गुरु अर्जुनदेव जी ने सभी की आशाओं के अनुरूप कार्य करके बड़ी ख्याति अर्जित की और गुरु नानकदेव जी के 'एक ओंकार सतनाम' के संदेश को दूर-दूर तक पहुँचाया। अन्य शिष्यों ने तब सेवा के महत्त्व को समझा। बर्तन धोना भी प्रेम का एक ढंग है, और धर्म का ज्ञान देकर लोगों के हृदय की कलुषता धोना भी सफाई का ही एक कार्य है।

प्रेम है आंतरिक अनुभूति, सेवा है उसकी बाहरी अभिव्यक्ति। दोनों का मणि-कांचन संयोग होने पर ही पूर्णता है। दो में से केवल एक अपने-आप में अपूर्ण है। बिना प्रेम की सेवा, मात्र औपचारिकता है। वह प्रेम का झूठा दिखावा है, अभिनय है। बिना सेवा का प्रेम, कोरी बातचीत है, पाखंड है, धोखा है। अतः कौन अधिक महत्त्वपूर्ण है, यह सवाल उचित नहीं। वे जब भी होंगे, संग-साथ ही होंगे- एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह।

05

खतरा नास्तिक होने का

महावीर, बुद्ध, पतंजलि ने वास्तविक धर्म का मूल ध्यान बताया; लेकिन हजारों साल बाद आज तक भी प्रार्थनावाले मिथ्या धर्म प्रचलित क्यों हैं?

इस घटना में आपके सवाल का जवाब मिल जाएगा। रेबेका स्मिथ नामक किसी महिला पत्रकार को यह पता चला कि एक बहुत वृद्ध यहूदी सज्जन लंबे समय से जेरुशलम की पश्चिमी दीवार पर रोजाना बिना नागा के प्रार्थना करते आ रहे हैं तो उसने उनसे मिलने का तय किया।

वह जेरुशलम की पश्चिमी प्रार्थना दीवार पर गयी और उसने वृद्ध सज्जन को प्रार्थना करते देखा। लगभग ४५ मिनट तक प्रार्थना करने के बाद वे अपनी छड़ी के सहारे धीरे-धीरे चलकर वापस जाने लगे। महिला पत्रकार उनके पास गयी और अभिवादन करके बोली, नमस्ते, मैं एक प्रसिद्ध अखबार की पत्रकार रेबेका स्मिथ हूँ। आपका नाम क्या है?

बेटी, मेरा नाम है- मौरिस फिशिबिएन, वृद्ध ने कहा।

मैंने सुना है कि आप बहुत लंबे समय से यहाँ रोज प्रार्थना करते रहे हैं। आप ऐसा कब से कर रहे हैं?

लगभग ६० साल से।

६० साल! यह तो वाकई बहुत लम्बा अरसा है! तो, आप यहाँ किसलिए प्रार्थना करते हैं?

बेटी, मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि ईसाइयों, यहूदियों, और मुसलमानों के बीच शांति स्थापित हो। मैं युद्ध और नफरत के खात्मे के लिए प्रार्थना करता हूँ। मैं यह भी प्रार्थना करता हूँ कि बच्चे बड़े होकर जिम्मेदार इंसान बनें और सब लोग प्रेम से एकजुट रहें।

यह तो बहुत अच्छी बात है। कृपया बताइए कि आपको यह प्रार्थना करने से कैसी अनुभूति होती है?

बेटी, न पूछो तो अच्छा होगा! मुझे यह लगता है कि मैं ६० सालों से सिर्फ एक दीवार से ही बातें कर रहा हूँ। बचपन में कहावत सुनी थी कि दीवारों के भी कान होते हैं। वह कहावत गलत निकली।

रेबेका स्मिथ ने पूछा- फिर आप क्यों प्रतिदिन प्रार्थना किए जाते हैं?

बूढ़े ने कहा- आदतवश किए जाता हूं। अरे, वृद्धावस्था में और करूं भी तो क्या करूं! फुरसत ही फुरसत है। और भगवान नहीं सुनता, छोड़ो, मगर इंसान भी कहां सुनते हैं? उनके तो दो-दो कान दिखाई देते हैं, लेकिन एक कान से आवाज भीतर जाती है, दूसरे से बाहर निकल जाती है। यदि प्रार्थना छोड़ दूं तो समय कैसे कटेगा? अब नियमित प्रार्थना करने वालों में मेरा नाम भी धार्मिक के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है, वह सामाजिक मान-सम्मान भी खो जाएगा। कम से कम आज इसी बहाने तुम इंटरव्यू लेने तो आईं न! फिर डर भी लगता है, यह क्रियाकांड छोड़ दूं तो कहीं ईश्वर नाराज न हो जाए। शायद वह बहरा है, किंतु क्या पता अंधा न हो! कम से कम देखता तो होगा कि मै रोजाना इस पवित्र स्थल पर आता हूं। बुढ़ापे में अब खतरा नहीं उठा सकता नास्तिक होने का, वैसे अनुभव से तो बात समझ में आ गई कि ईश्वर नहीं है; मगर... !

06

आश्चर्य बोध

किस विशेष गुण की वजह से कोई व्यक्ति दार्शनिक, वैज्ञानिक या आध्यात्मिक हो जाता हैं?

वह विशेष गुण है- आश्चर्य-बोध!

अपने चारों तरफ हो रही घटनाओं का अवलोकन करके जब कोई चकित होता है तो दो संभावनाएं बनती हैं। यदि वह केवल चिंतन-मनन में लग गया, बौद्धिक ऊहापोह में फंस गया तो दार्शनिक हो जाएगा। यदि तार्किक सोच-विचार के संग उसने प्रयोग जोड़ दिये, तो वैज्ञानिक हो जाएगा। फिलॉसफी मां है, साइंस बेटी है। दोनों बहिर्मुखी हैं।

यदि आश्चर्य-बोध अंतमुर्खी हो गया, स्वयं के प्रति जाग गया तो वह आध्यात्मिक हो जाएगा। प्रयोग से वस्तुगत विज्ञान की तथा योग से आत्मज्ञान की खोज होती है। आंतरिक आश्चर्य को विस्मय-बोध कहा जाता है।

सुनो यह वृतांत- सात साल के बालक अल्बर्ट आइंस्टीन को जर्मनी के म्यूनिख शहर के सबसे अच्छे स्कूल में भरती किया गया। इन स्कूलों को उन दिनों जिम्नेजियम कहा जाता था और उनकी पढ़ाई दस वर्षों में पूरी होती थी।

इस बालक के शिक्षक उससे बहुत परेशान थे। वे उसकी एक आदत के कारण हमेशा उससे नाराज रहते थे- प्रश्न पूछने की आदत के कारण। घर हो या स्कूल, अल्बर्ट इतने ज्यादा सवाल पूछता था कि सामने वाला व्यक्ति अपना सर पकड़ लेता था। एक दिन उसके पिता उसके लिए, एक दिशासूचक यन्त्र खरीद कर लाये तो अल्बर्ट ने उनसे उसके बारे में इतने सवाल पूछे कि वे हैरान हो गए। आज भी स्कूलों के बहुत सारे शिक्षक बहुत ज्यादा सवाल पूछने वाले बच्चे को हतोत्साहित कर देते हैं, आज से लगभग डेढ़ सौ साल पहले तो हालात बहुत बुरे थे।

अल्बर्ट इतनी तरह के प्रश्न पूछता था कि उनके जवाब देना तो दूर, शिक्षक यह भी नहीं समझ पाते थे कि अल्बर्ट ने वह प्रश्न कैसे बूझ लिया। नतीजतन, वे किसी तरह टालमटोल करके उससे अपना पिंड छुड़ा लेते। जब अल्बर्ट दस साल का हुआ तो उसके पिता अपना कारोबार समेटकर इटली के मिलान शहर में जा बसे। अल्बर्ट को अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए म्यूनिख में ही रुकना पड़ा।

परिवार से अलग हो जाने के कारण अल्बर्ट दुखी था। दूसरी ओर, उसके सवालों से तंग आकर उसके स्कूल के शिक्षक चाहते थे कि वह किसी और स्कूल में चला जाए। हेडमास्टर भी यही चाहता था। उसके अल्बर्ट को बुलाकर कहा- 'यहाँ का मौसम तुम्हारे लिए ठीक नहीं है। इसीलिए हम तुम्हें लम्बी छुट्टी दे रहे हैं। तबीयत ठीक हो जाने पर तुम किसी और स्कूल में दाखिल हो जाना।'

अपनी पढ़ाई में अल्बर्ट हमेशा औसत विद्यार्थी ही रहे। प्रश्न पूछना और उनके जवाब ढूँढने की आदत ने अल्बर्ट को विश्व का महानतम वैज्ञानिक बनने में सहायता की। सच मानें, आज भी विश्व में उनके सापेक्षता के सिद्धांत को पूरी तरह से समझनेवालों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है। उन्होंने पाठशाला के शिक्षकों पर ही नहीं, तीन सौ साल से प्रचलित फिजिक्स के सिद्धांतों पर भी प्रश्न उठा दिए। उनके भीतर अदम्य जिज्ञासा थी।

जर्मनी में जहां तीन-चार साल में बच्चे पढ़ाई आरंभ कर देते थे, वहां सात साल की उम्र में आइंस्टीन स्कूल में दाखिला लिए। आइंस्टीन से कोई उम्मीद नहीं करता था कि वे जिंदगी में कुछ बुद्धिमानी का काम कर पाएंगे। ठीक इसी तरह, मुझे स्मरण आता है कि दस साल की उम्र में परमगुरु ओशो ने पाठशाला में प्रवेश किया। ओशो के शिक्षक भी उनके सवालों से तंग आकर उन्हें उपद्रवी, विद्रोही, अश्रद्धालु और नास्तिक समझा करते थे।

जिज्ञासा जब खुद के प्रति उत्पन्न होती है तो वह मुमुक्षा बन जाती है। समस्त धर्मशास्त्रों पर संदेह पैदा हो जाता है, तब असली आत्म-श्रद्धा जन्मने की संभावना खुलती है। स्मरण रहे कि दर्शनशास्त्र से ही विज्ञान की शाखा पैदा हुई है इसलिए आज भी विज्ञान के क्षेत्र में शोधकार्य करने वाले को पी.एच.डी. की उपाधि दी जाती है- डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी। इसलिए मैंने कहा कि फिलॉसफी मां है, साइंस बेटी है।

आंतरिक, आत्म-गत जिज्ञासा का संबंध दर्शनशास्त्र से नहीं, आत्म-दर्शन से है। उसका फिलॉसफी से कोई नाता नहीं है। वह बिल्कुल ही भिन्न आयाम में गति है- ध्यान की दिशा में अंतर्यात्रा। प्रायः लोग दर्शनशास्त्र से विज्ञान को नहीं, बल्कि अध्यात्म को जोड़कर देखते हैं, वह एक भ्रामक बात है।

विज्ञान का साधन विश्लेषण है, प्रयोग है; परिणाम सूक्ष्मतम परमाणु पर, सब-एटॉमिक पार्टिकल पर पहुंचना है। अध्यात्म का साधन संश्लेषण है, योग है; परिणाम विराटतम परमात्मा पर पहुंचना है। विज्ञान का उपाय विचारपूर्ण मनन है। अध्यात्म का उपाय निर्विचार ध्यान है। ये दोनों सार्थक हैं। दर्शनशास्त्र निरर्थक मानसिक परिश्रम है।

07

व्यवहार की स्वतंत्रता

लोगों के व्यवहार को देखकर मुझे खिन्नता पकड़ लेती है। खुश रहने के लिए क्या करना चाहिए?

आपके सवाल में ही जवाब छिपा हुआ है। वह देखना बंद करो जिससे अप्रसन्नता उत्पन्न होती है। यह पौराणिक कथा सुनो। ईश्वर ने जब मनुष्य की रचना की तो उसे अपनी अन्य सभी कृतियों से श्रेष्ठ बनाया। सुघड़ और सुन्दर बनाने के साथ उसे बुद्धि भी दी। जब मनुष्य इस पृथ्वी पर पहुंचा तो ब्रह्मा ने उससे पूछा, अब यहां आकर तुम क्या चाहते हो? मनुष्य ने कहा, प्रभु मैं तीन बातें चाहता हूं। एक, मैं सदा प्रसन्न रहूं। दूसरा, मेरी मन की शांति कभी भंग न हो। और तीसरा, मैं सदा उन्नति के पथ पर चलता रहूं।

मनुष्य की यह इच्छाएं जानकर ब्रह्मा जी ने उसे दो थैले दिए और कहा, एक थैले में तुम अपनी सभी कमजोरियां डाल दो, और दूसरे थैले में दूसरे लोगों की कमियां डालते रहो। साथ ही यह भी कहा कि इन दोनों थैलों को हमेशा अपने कंधों पर लेकर चलना। लेकिन हां, एक बात का ध्यान और रखना कि जिस थैले में तुम्हारी अपनी खामियां हैं, उसे तो अगली तरफ रखना। और जिस थैले में दूसरों की कमजोरियां रखी हैं उन्हें पीछे की तरफ पीठ पर रखना। समय-समय पर सामने वाला थैला खोलकर निरीक्षण भी करते रहना, ताकि अपनी त्रुटियां दूर कर सको। परन्तु दूसरे लोगों के अवगुणों का थैला, जो पीठ पर डाला होगा उसे कभी न खोलना और न ही दूसरों के ऐब देखना या कहना। यदि तुम इस परामर्श पर ठीक से आचरण करोगे, तो तुम्हारी तीनों इच्छाएं पूरी होंगी- तुम सदा प्रसन्न रहोगे, सबसे सम्मान पाओगे और सदा उन्नति करोगे।

मनुष्य ने ब्रह्मा जी को नमस्कार किया और दुनिया के कामकाज में लग गया। लेकिन इस बीच उसे थैलों की पहचान भूल गई। जो थैला पीछे डालना था उसे तो आगे टांग लिया और जिस थैले को आगे रख कर देखते रहने को कहा था, वह पीछे की तरफ कर दिया। तब से मनुष्य दूसरों के अवगुण ही देखता है, अपनी कमजोरियों पर ध्यान नहीं देता। इसी वजह से उसे तीनों फल भी उलटे ही मिलते हैं- अप्रसन्नता, अशांति और अवगति।

आप पूछते हो कि खुश रहने के लिए क्या करना चाहिए? 'पर-केन्द्रित' होने के स्थान पर 'स्व-केन्द्रित' बनो। लोगों की स्वतंत्रता है कि वे कैसा व्यवहार करें। यह आपकी चिंता का विषय नहीं होना चाहिए। आपको क्या करना है, आपको कहां दृष्टि रखनी है, आप इसके लिए स्वतंत्र हो। अपना ख्याल रखो। प्रसन्नता, शांति और आत्मिक प्रगति आपकी उपलब्धि बनेंगी।

08

चैतन्य जल

आदमी पागल क्यों होता है, और स्वस्थ कैसे हो?

पागल आदमी को एक व्यक्ति के रूप में देखना बंद करो। वह एक बड़े समुदाय का हिस्सा है। समाज विक्षिप्त है, इसलिए इसमें रहने वाले संवेदनशील व्यक्ति को विक्षिप्त हो जाना पड़ता है। अगर हम एक-एक पागल की चिकित्सा करते रहे, जैसा कि करते आ रहे हैं, तो कभी भी मनुष्यता को पागलपन से मुक्त न कर पाएंगे। सामूहिक मानसिक स्वास्थ्य की दशा विकसित हो, पूरा समाज शांत होना, प्रेमपूर्ण होना, भाईचारे में जीना सीख पाए तो ही व्यक्तिगत विक्षिप्तता से छुटकारा संभव होगा।

मैंने सुनी है सूफी कथा कि एक बार हजरत मूसा के गुरु खिद्र ने मानव जाति को यह चेतावनी दी कि भविष्य में एक निश्चित दिन दुनिया का सारा जल गायब हो जायेगा और सिर्फ वही जल बच पायेगा जिसे उस दिन के बाद के लिए संभालकर रख लिया जायेगा। गायब हुआ जल फिर ऐसे जल में बदल जायेगा जिसे पीने पर लोग पागल हो जायेंगे।

सिर्फ एक आदमी को छोड़कर किसी ने भी खिद्र की चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। उसने जितना भी हो सकता था उतना जल इकठ्ठा करके एक गुप्त स्थान में सुरक्षित रख दिया और फिर जल के बदलने का इंतजार करने लगा। तय दिन पर सारी जलधाराएँ थम गईं, कुँए सूख गए... और जिस आदमी ने जल को जमा करके रख लिया था वह उस सुरक्षित स्थान पर गया और उसने छककर अपना शुद्ध जल पिया।

उस स्थान से जब उसने चोरी छिपे बाहर झाँककर देखा तो पाया कि समस्त जलधाराएँ फिर से शुरू हो गईं थीं और कुओं में जल भर आया था। तब वह दूसरे मनुष्यों के बीच वापस आ गया। उसने पाया कि अपना स्वभाव बदल चुके जल को पीने के बाद वे सभी पहले के विपरीत सोचने और बोलने लगे थे और उन्हें अतीत का कुछ भी याद नहीं रह गया था। उन्हें न तो किसी चेतावनी के बारे में ज्ञात था न ही जल के बदलने के बारे में वे कुछ जानते थे। जब आदमी ने उनसे बात करने का प्रयास किया तो सभी ने पागल समझकर उसे दुत्कार दिया।

उनके साथ रहते हुए आदमी ने पहले तो नया जल जरा भी नहीं पिया और हमेशा अपना छुपाया हुआ जल पीने के लिए सुरक्षित स्थान पर प्रतिदिन जाता रहा। लेकिन एक दिन उसने विवश होकर नया जल पीने का निश्चय कर लिया क्योंकि वह अकेलेपन और दूसरों के विपरीत व्यवहार करने और सोचने से तंग आ चुका था। उसने नया जल पी लिया और वह भी दूसरों जैसा हो गया। फिर वह अपने बचाकर रखे शुद्ध जल के बारे में

सब कुछ भूल गया और सभी लोग उसे पागलपन से ठीक हो चुके आदमी के रूप में देखकर, प्रसन्न रहने लगे। कवियों ने उसकी प्रशंसा में गीत लिखे, विद्वान वक्ताओं ने भाषण दिए। उसके स्वस्थ हो जाने की खुशी में उत्सव मनाए गए। राज्य के प्रधान पंडित की मृत्यु के पश्चात् जनता ने उसे अपना राज-पुरोहित चुन लिया।

यह सूफी कथा कहती है कि उसका बचाकर रखा हुआ शुद्ध जल अभी भी किसी स्थान में सुरक्षित रखा हुआ है। अपनी विक्षिप्तता जिसे समझ आ जाए, और समाज की नजरों में दीवाने बनने की हिम्मत जिसकी हो, वही साहसी उस जल की खोज में निकलता है। ऐसा सदियों में कभी-कभार ही होता आया है।

वह पानी चैतन्य-जल है। सुरक्षित स्थान अपनी ही अंतर्आत्मा है। पीने की विधि का नाम ध्यान है। परिणाम प्रज्ञा है, विवेक है। ओशो कहते हैं कि यदि दस हजार लोग आत्मज्ञान की स्थिति को प्राप्त कर लें, तो धरती का पागलपन खत्म हो जाएगा। आपने पूछा है कि आदमी पागल क्यों होता है, और स्वस्थ कैसे हो? पागल होता है भीड़ के रंग में रंग जाने से। परंतु भीड़ स्वस्थ हो सकती है अगर दस हजार लोगों की एक जमात स्वास्थ्य उपलब्ध कर ले। व्यक्तिगत स्व-बोध जगाने के प्रयास, एक परिमाण तक पहुंचने के पश्चात् गुणात्मक परिणाम ला सकते हैं। सामूहिक अवचेतन मन स्वस्थ हो सकता है।

09

सदा सत्यतर को चुनो

कहावत है कि कम और अधिक बुराई में से कम को चुन लेना चाहिए। मैं ऐसा ही करता हू् किंतु कभी–कभी मुझे अपराध–बोध महसूस होता है। उससे मुक्ति का उपाय बताइए।

अपराध-बोध इस बात की खबर है कि आप भलाई को नहीं चुनते हैं। इस कहावत का उद्धरण देकर स्वयं को न्यायसंगत साबित करने की कोशिश कर रहे हैं।

पाउलो कोएलो ने कथा लिखी है कि निक्सिवान नामक एक सुशील व्यक्ति ने अपने मित्रों को रात्रिभोज पर बुलाया था और वह स्वयं रसोई में उनके लिए बेहतरीन भोजन बना रहा था। थोड़ा चखने पर उसे लगा कि उसमें नमक कम था।

रसोई में नमक खत्म हो गया था इसलिए उसने अपने बेटे को पुकारा और उससे कहा, गाँव तक जाओ और जल्दी से थोड़ा नमक खरीद लाओ, लेकिन उसकी सही-सही कीमत चुकाना, न तो बहुत ज्यादा देना और न ही बहुत कम देना।

निक्सिवान का लड़का हैरान होकर बोला, मैं जानता हूँ कि मुझे किसी चीज का ज्यादा दाम नहीं चुकाना चाहिए, लेकिन अगर मैं मोलभाव करके कुछ पैसा बचा सकता हूँ तो उसमें क्या हर्ज है?

निक्सिवान ने कहा, किसी बड़े शहर में तो यह करना ठीक होगा लेकिन यहाँ ऐसा करने से हमारा यह छोटा सा गाँव बर्बाद हो सकता है।

निक्सिवान के मित्र पिता-पुत्र के बीच हो रही यह बात सुन रहे थे। उन्होंने निक्सिवान से पूछा, यदि मोलभाव करने पर नमक कम कीमत पर मिल रहा हो तो उसे लेने में क्या बुराई है?

निक्सिवान ने कहा, कोई भी दुकानदार सामान्य से काफी कम कीमत पर नमक तभी बेचेगा जब उसे पैसे की बड़ी सख्त जरुरत हो। ऐसी स्थिति में उससे नमक वही आदमी खरीदेगा जिसके हृदय में उस नमक को तैयार करने और उपलब्ध कराने वाले व्यक्ति के श्रम तथा संघर्ष के प्रति कोई संवेदना न हो।

लेकिन इतनी छोटी सी बात से कोई गाँव कैसे बर्बाद हो सकता है? -एक मित्र ने पूछा।

निक्सिवान ने कहा, तुम्हें शायद इसका पता न हो लेकिन आदिकाल में संसार में बुराई की मात्रा अत्यल्प थी। कालांतर में आनेवाली पीढ़ियों के लोग उसमें अपनी

थोड़ी-थोड़ी बुराई मिलाते गए। उन्हें हमेशा यही लगता रहा कि आटे में नमक के बराबर बुराई से जग का कुछ न बिगड़ेगा, लेकिन देखो इस प्रकार हम आज कहाँ तक आ गए हैं!

पाषाण युग के अस्त्र-शस्त्र बढ़ते-बढ़ते परमाणु बम बन गए हैं। तीर-कमान से आरंभ हुए हथियार मिसाइल्स में परिवर्तित हो गए हैं। 'जरा सी बुराई' 'कम बुराई' 'मजबूरी' आदि तर्कसंगत बातों का सहारा लेकर हम गलत कार्य करते जाते हैं। यदि वास्तव में अपराध-बोध से मुक्त होना है, तो मन की अशुभ प्रवृत्तियों को सहयोग देना बंद करो। इस कहावत को बदल डालो कि कम और अधिक बुराई में से कम बुराई को चुन लेना चाहिए। नई कहावत बनाओ कि कम और अधिक अच्छाई में से अधिक अच्छाई को चुन लेना चाहिए। जिंदगी की बुनियाद सकारात्मक होनी चाहिए, नकारात्मक नहीं।

कोई व्यक्ति अपनी पत्नी से बोला कि तुमसे इसलिए विवाह किया है कि अन्य रिश्ते जो आए थे, उन सभी लड़कियों की तुलना में तुम्हीं कम बदसूरत थीं। वे तो तुमसे भी ज्यादा भयानक थीं। तुम्हें देखकर उतना डर नहीं लगता, जितना उन्हें देखकर कंप जाता था। पत्नी कहने लगी कि ऐसा ही मेरे संग भी हुआ। जितने पुरुषों के संपर्क में आई, सबसे कम वृद्ध तुम्हीं थे। सबसे कम दुष्ट और हिंसक तुम्हीं थे। सबसे कम नालायक और बेवकूफ भी तुम्हीं थे। सबसे कम नाते-रिश्तेदारों की गिनती भी तुम्हारी ही थी। अच्छा हुआ तुम्हारे माता-पिता गुजर गए, भाई-भाभी और भतीजे कार दुर्घटना में चल बसे, बहन को उसकी सुसराल वालों ने कम दहेज मिलने पर जला दिया। वरना मैं किसी और को पति चुन लेती।

सोचो, क्या इस तरह जिंदगी चलेगी? आधार सकारात्मक होनी चाहिए, नकारात्मक नहीं। सत्यं-शिवं-सुंदरं पर दृष्टि रखो। सदा सत्यतर को, ज्यादा शुभ को, अधिक सुंदर को, श्रेष्ठतर को, बेहतर को चुनो।

10

सत्य एवं उपयोगी

परमात्मा के आदेश प्राचीन धर्मग्रंथों में लिखे हैं, ऐसी मान्यता कितनी सच है? यदि सच है तो फिर नए धर्म की क्या जरूरत है? नया धर्म पुराने धर्मों के खिलाफ क्यों होता है?

सौ प्रतिशत सच कि है यह मान्यता कि परमात्मा के आदेश प्राचीन धर्मग्रंथों में लिखे हैं। लेकिन नए धर्म की सदा जरूरत पड़ती है क्योंकि वे प्राचीन आदेश तिथि बाह्य हो जाते हैं- आउट ऑफ डेट। सुनो यह सूफी व्यंग्य कथा- मरू-प्रदेश की भूमि में बहुत कम फल उपजते थे। अतः ईश्वर ने अपने पैगंबर को पृथ्वी पर यह नियम पहुंचाने के लिए कहा, प्रत्येक व्यक्ति दिन में केवल एक ही फल खाए।

लोगों ने मसीहा की बात मानी और दिन में केवल एक ही फल खाना प्रारंभ कर दिया। यह प्रथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रही। दिन में एक ही फल खाने के कारण इलाके में फलों की कमी नहीं पड़ी। जो फल खाने से बच रहते थे उनके बीजों से और भी कई वृक्ष पनपे। जल्द ही प्रदेश की भूमि उर्वर हो गयी और अन्य प्रदेशों के लोग वहां बसने की चाह करने लगे। लेकिन लोग दिन में एक ही फल खाने की प्रथा पर कायम रहे क्योंकि उनके पूर्वजों के अनुसार मसीहा ने उन्हें ऐसा करने के लिए कहा था। दूसरे प्रदेश से वहां आने वाले लोगों को भी उन्होंने फलों की बहुतायत का लाभ नहीं उठाने दिया।

इसका परिणाम यह हुआ कि अधिशेष फल धरती पर गिरकर सड़ने लगे। भोज्य पदार्थ का घोर तिरस्कार हो रहा था। सड़े हुए फलों से बदबू फैलती और बीमारियां भी। ईश्वर को यह देखकर दुःख पहुंचा। उसने पुनः पैगंबर को बुलाकर कहा, उन्हें जाकर कहो कि वे जितने चाहें उतने फल खा सकते हैं। उन्हें फल अपने पड़ोसियों और अन्य शहरों के लोगों से बांटने के लिए कहो। मसीहा ने प्रदेश के लोगों को ईश्वर का नया नियम बताया। लेकिन नगरवासियों ने उसकी एक न सुनी और उस पर पत्थर फेंके। ईश्वर का बताया पुराना नियम शताब्दियों से उनके मन और हृदय दोनों पर ही उत्कीर्ण हो चुका था।

समय गुजरता गया। धीरे-धीरे नगर के युवक इस पुरानी बर्बर और बेतुकी प्रथा पर प्रश्नचिह्न लगाने लगे। जब उन्होंने देखा कि उनके बड़े-बुजुर्ग टस-से-मस होने के लिए तैयार नहीं हैं तो उन्होंने धर्म का ही तिरस्कार कर दिया। अब वे नास्तिक होकर मनचाही मात्रा में फल खा सकते थे और उन्हें भी खाने को दे सकते थे जो उनसे वंचित थे।

रूढ़िवादी लोगों ने उन विद्राहियों को अधार्मिक, पापी और नरक जाने वाला घोषित कर दिया।

कालांतर में केवल स्थानीय देवालयों में ही कुछ ऐसे लोग बच गए थे जो स्वयं को ईश्वर के अधिक समीप मानते थे और पुरानी प्रथाओं का त्याग नहीं करना चाहते थे। सच तो यह है कि वे यह देख ही नहीं पा रहे थे कि दुनिया कितनी बदल गयी थी और परिवर्तन सबके लिए अनिवार्य हो गया था।

दुर्भाग्यवश, इस कहानी के समान ही दुनिया चलती रही है। चल रही है।

आप पूछते हैं कि नया धर्म पुराने धर्मों के खिलाफ क्यों होता है? मजबूरी में होना पड़ता है। लोगों की नासमझी की वजह से। विज्ञान की किताब का नया संस्करण आने पर पुराना संस्करण प्रचलन के बाहर हो जाता है। मेडिकल साइंस की पुरानी पुस्तकें कचरे में फेंक दी जाती हैं, हर बार बेहतर, नूतन, ज्यादा प्रभावशाली, कम दुष्प्रभाव वाली औषधियां खोज ली जाती हैं। मगर धर्म के संग ऐसा नहीं हो पाता। धर्म के संग जुड़ गई चीज के साथ भी ऐसा नहीं हो पाता। आयुर्वेद पांच हजार साल पुराना चिकित्सा शास्त्र है, लेकिन उसमें कोई परिवर्तन संभव नहीं। बीमार बदल गए, बीमारियां बदल गईं, मगर दवाई वही है और रहेगी। बीमार मरे तो मर जाए, हम दवा से मोह न छोड़ेंगे। ऐसे जिद्दी, परंपरा का आग्रह करने वाले लोग ही विद्रोहियों को जन्माते हैं।

सौभाग्य होगा, जिस दिन उपरोक्त कहानी के समान दुनिया नहीं चलेगी। फिर न रूढ़िवादी बचेंगे, न विद्रोही। ज्यादा स्वस्थ चिंतन, परिस्थितियों का अवलोकन, बुद्धिमत्तापूर्ण निष्कर्ष, नए सुझावों के प्रति खुलापन, प्रयोग के लिए तैयारी, आंतरिक अनुभूतियों में डुबकी हेतु लोग राजी होंगे।

सवाल नवीन या प्राचीन का नहीं, सवाल सत्य एवं उपयोगी का होना चाहिए।

11

अहंकार का गणित

मेरे दुखों के दो मुख्य कारण हैं– मेरी द्वन्द्वग्रस्त चित्तवृत्ति और लोगों में बुराई देखने की आदत। इनसे छुटकारा पाने के लिए कहां जाऊं?

सदगुरु ओशो के द्वारा कही एक मधुर कहानी सुनाता हूं। उस कहानी में आपकी जिज्ञासा का संदेह-निवारण भी हो जाएगा। एक सम्राट संसार से विरागी हो गया; संन्यास का भाव उठा। घर छोड़ा, राज्य छोड़ा, दूर पहाड़ों में एकांतवास करने के मन से स्थान खोजने निकला- कहां ठहरूं, कहां बसूं। नदी में एक नाव पर उसने यात्रा की। दोनों तट सुंदर थे, अलौकिक थे, मन-लुभावने थे। चुनाव करना कठिन था, इस तट पर बसूं या उस तट पर। सोचा, लोगों से पूछ लूं।

बाएं तट पर बसे लोगों से पूछा। उन्होंने कहा, चुनाव का सवाल ही नहीं है। बसना हो, यहीं बसना है। स्वागत है आपका! क्योंकि इस हिस्से को स्वर्ग कहते हैं। और उस तरफ, नदी का जो दूसरा किनारा है, वह नरक है। वहां भूल कर मत जाना। वहां दुख पाओगे, सड़ोगे। वहां बड़े दुष्ट प्रकृति के लोग हैं।

सम्राट को किनारा तो स्वर्ग जैसा लगा, लेकिन स्वर्ग में रहने वाले लोगों के मन में दूसरे किनारे बसे लोगों के प्रति ऐसी दुर्भावना होगी, यह बात न जंची।

वह दूसरे किनारे भी गया। दूसरा किनारा भी अति सुंदर था। एक से दूसरा किनारा ज्यादा सुंदर था। उसने लोगों से पूछा कि मैं बसने का सोचता हूं, किस किनारे को चुनूं?

उन्होंने कहा, चुनाव का कोई सवाल ही नहीं है। बसना हो तो यहीं बसो। इस तरफ देवता बसते हैं, उस तरफ दानव। भूल कर भी उस तरफ मत बस जाना, अन्यथा सदा पछताओगे। फंस गए तो निकलना भी मुश्किल हो जाएगा। महाक्रूर प्रकृति के लोग हैं। उन दुष्टों से तो परमात्मा बचाए। उनकी तो छाया भी पड़ जाती है तो आदमी भटक जाता है। उस किनारे तो भूल कर भी उतरना भी मत; नाव भी मत लगाना।

सम्राट बड़ी दुविधा में पड़ गया। दोनों किनारे सुंदर थे, लेकिन दोनों तरफ रहने वाले लोग असुंदर थे। दोनों तरफ स्वर्ग था, लेकिन रहने वाले लोग वंचित हो गए थे। क्योंकि जब तक दूसरे की बुराई दिखाई पड़ती रहे, तब तक अपने भीतर छिपी भलाई को भोगने का अवसर नहीं आता। और जब तक दूसरे के कांटे गिनने की आदत बनी रहे, तब तक अपने भीतर खिले फूल की सुगंध नहीं मिलती। कांटों को गिनने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे फूल की गंध लेने की कला ही भूल जाता है। नरक पर जिसकी आंखें लगी हों, उसकी आंखों की क्षमता ही खो जाती है स्वर्ग को देखने की। खुरदरे पत्थरों के साथ ही जो दिन-रात अपने हाथों को लगाए रहा हो, वह फिर हीरों को नहीं पहचान पाता। हीरे भी पत्थरों जैसे ही लगते हैं।

इससे उलटी बात भी सच है कि जिसने अपने भीतर खिला हुआ फूल देखा हो, उसे

सब तरफ फूल दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। क्योंकि व्यक्ति अंततः अपने को ही सब तरफ झलकता हुआ पाता है। सारा अस्तित्व दर्पण है। उसमें हम विभिन्न रूपों में अपने ही चेहरे देखते हैं। उस किनारे जो दिखाई पड़ता है वह अपना ही चेहरा है। दुश्मन में जो दिखाई पड़ता है वह अपना ही चेहरा है। नरक में जलती हुई जो लपटें दिखाई पड़ती हैं वह अपना ही चेहरा है।

सम्राट ने कहा, इन्हीं उपद्रवों से तो बच कर भागना चाहा है साम्राज्य से। वह इस शांत पहाड़ की झील में बसे हुए लोगों में, इस घाटी में बसे हुए लोगों में भी वही का वही द्वंद्व है।

तो नाव को बढ़ाता आगे चला गया। उसने कहा, अब तो वहीं रुकूंगा जहां आदमी न हो। क्योंकि जहां तक आदमी है वहां तक मन रहेगा। और जहां तक मन है वहां तक संसार से बाहर जाने का कोई उपाय नहीं। मन ही तो संसार है। जहां तक मन है वहां तक द्वैत रहेगा, द्वंद्व रहेगा, विरोध रहेगा, पक्षपात रहेगा, अपना-पराया रहेगा, मैं-तू रहेगा। नदी दिखाई न पड़ेगी, किनारे महत्वपूर्ण रहेंगे- अपना किनारा, पराया किनारा। वह दूर का किनारा, दुश्मन का किनारा। वह बढ़ता गया। ऐसा समय आया, कोई लोग न मिले, बस्ती समाप्त हो गई। अब वह बस सकता था। लेकिन उसने कहा, अब भी मैं बसूंगा तो किसी एक किनारे पर बसूंगा। मैं भी आदमी हूं। अभी छूट नहीं गया हूं, छूटने की कोशिश कर रहा हूं। बंधन तोड़ रहा हूं, थोड़े ढीले हुए हैं, लेकिन जंजीरें खुल नहीं गई हैं। अगर एक किनारे पर बसूंगा, कौन जाने दूसरा किनारा मुझे भी बुरा दिखाई पड़ने लगे!

मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलताएं हैं। तुम जहां हो, उसे महिमावान सिद्ध करने के लिए अनिवार्यरूपेण तुम्हें, तुम जहां नहीं हो, वहां की निंदा करनी पड़ती है। तुम जो हो, उस अहंकार की तृप्ति के लिए दूसरों का खंडन करना होता है।

अहंकार को एक ही रास्ता पता है अपने को बड़ा करने का, वह है दूसरों को छोटा करना। आत्मा का रास्ता अहंकार को पता नहीं है। आत्मा का रास्ता है अपने को बड़ा करना। और मजा यह है कि जब कोई अपनी आत्मा को बड़ा करता है, तो दूसरे भी उसके साथ बड़े होते चले जाते हैं।

और जब अहंकार अपने को बड़ा करना चाहता है तो उसे एक ही गणित मालूम है, दूसरे को छोटा करना। और दूसरी बात भी समझ लेने जैसी है, जितने दूसरे छोटे होते जाते हैं, उतने ही छोटे तुम भी होते चले जाते हो। क्योंकि छोटे के साथ बड़े होने का उपाय नहीं है। छोटे के साथ जीना हो तो तुम्हें भी छोटा होना पड़ेगा। बुरे आदमी के साथ जीना हो तो तुम्हें भी बुरा होना पड़ेगा। और अगर तुमने सब में बुराई ही देखी है तो तुम भले कैसे रह सकोगे? रहना तो बुरे लोगों के साथ होगा, जिनमें तुमने बुराई देखी है। तुम भी बुरे हो जाओगे।

शायद गहरे में तुम बुरे होने के लिए सुविधा चाहते हो इसीलिए दूसरे में बुराई देखते हो। तुम दूसरे को छोटा बताते हो ताकि तुम्हें अपना छोटापन अखरे न। तुम दूसरे को छोटा करते हो ताकि कम से कम छोटों में तो बड़े दिखाई पड़ सको। जितने दूसरे छोटे हो जाएंगे उतना तुम्हें ऐसा लगता है, मैं थोड़ा बड़ा हूं।

12

नाम-रटन से नरक

कल आपने कहा कि प्रभु के नाम का मंत्र–जाप करोगे तो प्रभु नरक भेज देगा। यह बात आपने हमें हंसाने के लिए मजाक में कहीं थीं न?

हंसाने के लिए जो जरूर कही थी मगर मजाक में नहीं। मजाक वाली बात तो मैं एकदम गंभीर होकर कहता हूं। मैंने सुना है कि कोरिया में एक धर्मावलम्बी महिला अमिताभ बुद्ध की नियमित आराधना करती थी। दिन में तीन बार घंटी बजाकर 'नमो अमिताभ बुद्ध' मन्त्र का एक घंटा जप करना उसकी दिनचर्या में शामिल था। मन्त्र का एक हजार जप करने पर वह पुनः घंटी बजाती। यह आराधना करते उसे दस वर्ष हो रहे थे पर उसके व्यक्तित्व में कोई परिवर्तन नहीं आया। उसके भीतर क्रोध और अहंकार भरपूर था और वह लोगों पर चिल्लाती रहती थी।

उस महिला का मित्र उसे सबक सिखाना चाहता था। एक दिन महिला जब अगरबत्तियां जलाकर और तीन बार घंटी बजाकर 'नमो अमिताभ बुद्ध' मन्त्र का जप करने के लिए तैयार हुई तब उसके मित्र ने दरवाजे पर आकर कहा, 'श्रीमती नगुयेन, श्रीमती नगुयेन!'। यह सुनकर महिला को बहुत गुस्सा आया क्योंकि वह जप करनेवाली ही थी। वह मित्र दरवाजे पर खड़ा रहा और उसका नाम पुकारता रहा। महिला ने सोचा, 'मुझे अपने क्रोध पर विजय पानी है, मैं उसके पुकारने पर ध्यान ही नहीं दूंगी। वह 'नमो अमिताभ बुद्ध' का जप करने लगी।

वह व्यक्ति दरवाजे पर खड़ा था और बार-बार उसे पुकार रहा था, दूसरी ओर महिला का क्रोध बढ़ता जा रहा था। वह क्रोध से लड़ रही थी। उसके मन में आया, 'क्या मुझे जप रोककर उठ जाना चाहिए?' लेकिन उसने जप करना जारी रखा। भीतर क्रोध की आग धधकती जा रही थी और बाहर जप चल रहा था, 'नमो अमिताभ बुद्ध'। उसका मित्र उसकी दशा भांप रहा था इसलिए वह दरवाजे पर खड़ा पुकारता रहा, 'श्रीमती नगुयेन, श्रीमती नगुयेन!'

महिला और अधिक बर्दाश्त नहीं कर सकी। उसने अपने घंटी और आसनी फेंक दी, धड़ाम से दरवाजा खोला और मित्र से चीखती हुई बोली, 'तुम ऐसा क्यों कर रहे हो? बार-बार मेरा नाम लेने की क्या जरुरत आन पड़ी है? उसका मित्र मुस्कुराता हुआ बोला, 'मैंने सिर्फ दस मिनट ही तुम्हारा नाम लिया और तुम इतना क्रोधित हो गयीं! जरा सोचो, दस साल से तुम बुद्ध का नाम ले रही हो, वे कितना क्रोधित हो गए होंगे?'

मैंने कहा था कि प्रभु के नाम का मंत्र-जाप करोगे तो प्रभु नरक भेज देगा। आप जरा खुद साचो, आप प्रभु की जगह होते तो ऐसे लोगों को अपने पास स्वर्ग में रखने तैयार होते? ये नाम-रटन करने वाले दिमाग खा जाते। कोई भिखारी जब आपके पीछे पड़ जाता है, तो कैसा लगता है? निश्चित ही परमात्मा पसंद करेगा शांत, सुखी लोगों के बीच रहना। जो उससे प्रार्थना न करें, कुछ मांगें न। वह मौन में, एकांत-रस लेने वालों को निकट रखना चाहेगा।

अब मैं एकदम गंभीर बात बताने जा रहा हूं, गौर से सुनना। जैसा आप सोचते हो वैसा कोई व्यक्तिवाची भगवान है नहीं, और जो है, उसका कोई नाम नहीं। आप कौन सा नाम जपोगे? सब नाम मनुष्यों के द्वारा दिए गए हैं, आदमी के द्वारा निर्मित भाषाओं के शब्द हैं। खोजना है तो उस नाम को खोजो जो किसी भाषा का शब्द नहीं, आदमी का बनाया नहीं, जिसे कंठ से बोला नहीं जा सकता, और मन में विचारा भी नहीं जा सकता।

13

आंतरिक विपन्नता

एक बार राजा विक्रमादित्य के राज्य में किसी शिष्य ने अध्ययन समाप्ति पर अपने गुरु से पूछा कि वह उससे कैसी दक्षिणा चाहेंगे? गुरु ने कहा कि उन्हें उसकी कृतज्ञता के अतिरिक्त उससे अन्य कोई दक्षिणा नहीं चाहिए। उन्होंने कहा कि यदि वह उनके द्वारा दी गई शिक्षा के अनुरूप आचरण करके गुरु को सम्मान दिलवाए, तो वही पर्याप्त दक्षिणा है। किंतु शिष्य आग्रह करने लगा कि वह उससे गुरु दक्षिणा अवश्य लें। अपनी किसी भी इच्छा या आवश्यकता का संकेत दें या जो भी भेंट स्वीकार करना चाहते हों, वह बताएं।

उसके ऐसे बारंबार आग्रह से गुरु को लगा कि शिष्य को शायद अभिमान हो गया है। इसलिए उसे अहंकार से छुटकारा दिलाने के लिए उन्होंने एक असंभव धनराशि बताई। गुरु ने कहा, 'तुमने मुझसे सोलह विद्याएं सीखी हैं, तो मेरे लिए सोलह लाख स्वर्ण मुद्राएं लाओ।'

गुरु की बात समझकर शिष्य धन संग्रह के लिए निकल पड़ा। सबसे पहले वह राजा विक्रमादित्य के पास ही गया और उनसे वचन लिया कि वह उसकी सभी इच्छाएं पूर्ण करेंगे। फिर उसने राजा के समक्ष सोलह लाख स्वर्ण मुद्राओं की मांग रखी। इतनी बड़ी मांग सुनकर विक्रमादित्य व्याकुल हो गए। यद्यपि राजा थे, किंतु उस समय इतनी स्वर्ण मुद्राएं उनके पास भी नहीं थीं। किंतु अपने वचन पर दृढ़ रहने के लिए वे धन के देवता कुबेर के पास गए और वहां से अपरिमित स्वर्ण मुद्राएं उधार लेकर आए।

उन्होंने याचना करने आए उस शिष्य से कहा कि यह सब ले जाओ और अपने गुरु को दे दो। जो शेष बचे उसे अपने पास रख लेना। किंतु शिष्य ने उस अपरिमित ढेर में से उतनी ही स्वर्ण मुद्राएं उठाईं, जितनी उसे दक्षिणा के रूप में देनी थीं, उसने एक भी मुद्रा अधिक नहीं ली। विक्रमादित्य ने उससे बहुत बार कहा कि शेष मुद्राएं भी ले जाओ, मैं तुम्हारे ही लिए लाया हूं। किंतु उस युवक ने अपनी लालसा बढ़ने नहीं दी, वह अपनी बात पर अटल रहा। उसने कहा कि मेरे गुरुदेव ने महत्त्वाकांक्षा के गर्त में न गिरने की शिक्षा दी है। जब वह धनराशि लेकर विनम्रतापूर्वक गुरु के चरणों में अर्पित करने गया तो गुरुदेव मुस्कुराकर बोले- इन्हें वापस दे आओ, जहां से लाए हो। मैंने तो केवल तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए कहा था। तुम उत्तीर्ण हुए, क्योंकि मेरे चरणों में धन रखते वक्त भी तुम्हारे चेहरे पर जीत की भावना या अभिमान के लक्षण नहीं आए।

जब शिष्य ने जाकर राजा को स्वर्ण-मुद्राएं लौटाते हुए पूरी कहानी बताई तो विक्रमादित्य ने भी सारी धनराशि कुबेर को सधन्यवाद वापिस कर दी। उधारी प्राप्तकर कुबेर बहुत प्रसन्न हुआ।

महत्त्वाकांक्षा का बुखार आत्मिक दरिद्रता नामक बीमारी का लक्षण है। भीतर से दीन-हीन महसूस करने वाले लोग बाहर की संपत्ति एकत्रित करके दूसरों को धोका देना चाहते हैं कि वे सम्पन्न हैं। मगर आत्म-प्रवंचना कैसे करेंगे? बाह्य संपदा इकट्ठी करने में गंवाई जीवन शक्ति और समयाविधि अंततः विपदा ही साबित होती है। भला भौतिक सामानों से आत्मिक खालीपन कैसे भरा जा सकता है?

भौतिक सम्पन्नता की अपनी उपयोगिता है। अवश्य उसका उपयोग करना। बस, इतना स्मरण रखना कि उससे आंतरिक विपन्नता नहीं मिटती। कुबेर की भी नहीं मिटती।

भीतर का धन ध्यान है, उसे पाकर ही कोई सचमुच में सम्राट बनता है।

14

इन्वेंशन और डिस्कवरी

सद्‌गुरु ओशो के प्रवचन सुनकर मुझे हैरानी होती है कि कितने कठिन सवालों के वे कितने सरल जवाब देते हैं! गंभीर, जटिल, दार्शनिक गुत्थियों को छोटे से लतीफे से सुलझा देते हैं।

यही प्रतिभा का लक्षण है। जहां हमें कठिनाई नजर आती है उन्हें वहां सुगम मार्ग दिखाई देता है। बाधाओं और अवरोधों को सीढ़ी में रूपांतरित कर लेना ही जीनियस का काम है। समस्या में समाधान खोज लेना ही बुद्धिमत्ता की पहचान है।

मैंने सुना है थॉमस अल्वा एडिसन (१८४७-१९३१) के बारे में, वे महानतम अमेरिकी आविष्कारक हुए। किशोरावस्था में एक दुर्घटना का शिकार होने के कारण वे अपनी श्रवण शक्ति लगभग खो चुके थे- लेकिन उन्होंने फोनोग्राम का आविष्कार किया- जिसे हम बाद में ग्रामोफोन या रिकार्ड प्लेयर के नाम से जानने लगे। ऑडियो कैसेट कुछ सालों तक चले, सीडी और डीवीडी भी ज्यादा समय नहीं चलेंगे, उनसे भी बेहतर चीजें आएंगी, लेकिन रिकार्ड प्लेयर सौ सालों से भी ज्यादा समय तक हमें संगीत सुनाता रहा।

और बिजली का बल्ब? क्या आप सोच सकते हैं कि मामूली सा प्रतीत होने वाले बल्ब की खोज ने एडिसन को कितना तपाया? उसके जलनेवाले फिलामेंट के लिए उपयुक्त पदार्थ की खोज में एडिसन ने हजार से भी ज्यादा वस्तुओं पर प्रयोग कर डाले- घास के तिनके से लेकर सूअर के बाल तक पर। किसी ने एडिसन से कहा- 'हजार चीजों का प्रयोग करने के बाद भी आप अच्छा फिलामेंट बनाने में असफल हो गये।' एडिसन ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया- 'ऐसा नहीं है, मुझे ऐसी हजार चीजों का ज्ञान पाने में सफलता प्राप्त हो चुकी है जो फिलामेंट बनने के लिए उपयुक्त नहीं हैं। अब तो कम ही चीजें बचीं, जिन पर प्रयोग करना बाकी रह गया।'

सिनेमा कैमरे का आविष्कार भी एडिसन ने ही किया था। जब लोगों ने पहली बार सिनेमाघर में रेलगाड़ी को परदे पर आते देखा तो वे जान बचाने के लिए भाग खड़े हुए।

एक और घटना- एडिसन ने अपनी प्रयोगशाला में प्रिंसटन यूनिवर्सिटी के एक स्नातक को काम पर रखा। उसका नाम उप्टन था। उप्टन ने जर्मनी में महान वैज्ञानिक हेल्म्होल्त्ज के साथ भी काम किया था। एक दिन एडिसन ने उप्टन से कहा कि वह पता लगाये कि कांच के एक बल्ब के भीतर कितनी जगह है। उप्टन अपने औजार ले आया और उनकी मदद से नाप लेकर वह एक ग्राफ पेपर पर चार्ट बनाकर बड़ी कुशलतापूर्वक बल्ब के भीतर की जगह की गणना करने लगा। कुछ देर यह सब देखने पर एडिसन ने उप्टन से कुछ पूछना चाहा लेकिन उप्टन जोर से बोला- 'मुझे थोड़ा समय और लगेगा'- और उसने एडिसन को अपना चार्ट दिखाया। चार्ट में अत्यंत कठिन गणितीय सूत्रों में हल निकालने की कोशिश दिखी। एडिसन उसके पास आए और हंसकर बोले- 'मैं इतना

गुणा-भाग नहीं जानता मगर तुम्हें दिखाता हूँ कि मैं इस प्रकार के काम कैसे करता हूँ'- यह कहकर उन्होंने बल्ब में पानी भरकर उप्टन से कहा- 'इस पानी को बीकर में नाप लेने पर तुम्हें फौरन उत्तर मिल जाएगा'।

एडिसन ने अपने अविष्कारों के लिए एक हजार से भी ज्यादा पेटेंट प्राप्त किए। उनकी मृत्यु से कुछ समय पहले एक पत्रकार ने उनसे पूछा कि कौन सी बात किसी व्यक्ति को जीनियस बनाती है। एडिसन ने कहा- कोई भी व्यक्ति दस प्रतिशत प्रेरणा और ९० प्रतिशत परिश्रम से जीनियस बनता है। यह विश्व में सबसे प्रसिद्ध उक्तियों में से एक हो गई।

बाहर के जगत में, विज्ञान की खोज में जो बात सच है; वही भीतर के लोक में, आत्मज्ञानी के लिए भी लागू होती है। थोड़ा सा अंतर है। चेतना में सत्य पहले से ही मौजूद है, केवल अनावरण करना होता है। पदार्थलोक में आविष्कार करना होता है, इसलिए ९० प्रतिशत परिश्रम की जरूरत पड़ती है। इन्वेंशन और डिस्कवरी का फर्क है। विद्युत बल्ब पहले से बना नहीं रखा था, बनाना पड़ा। आत्मा का आलोक उपस्थित है, शांत होकर देखना भर है, वहां दृष्टि ले जानी है, बस! ध्यानस्थ होने की प्रेरणा पर्याप्त है।

धर्म बिल्कुल सरल है। जहां कठिनाई नजर आए, जानना वहां पंडित है, आत्मज्ञानी नहीं। ध्यानी गंभीर नहीं होता, परमानंद में निमग्न जीता है। विद्वान गंभीर गुत्थियों में फंसे होते हैं। वे पहेलियां अहंकार के जाल हैं। सुनो कुछ चुटकुले-

एक बार आदमी ने भगवान से कहा- आपने औरत को इतना खूबसूरत क्यों बनाया है?
भगवान बोले ताकि तुम उनसे प्यार कर सको।
आदमी बोला- तो फिर उन्हें इतना बेवकूफ क्यों बनाया है?
भगवान ने जवाब दिया- ताकि वो तुमसे प्यार कर सके।

मुल्ला नसरुद्दीन पर अदालत में मुकदमा था कि उसने दो शादियां कर लीं, जो कानून के खिलाफ है। उसके वकील ने सिद्ध किया कि यह बात गलत है। और मुल्ला ने कहा कि नहीं, मैंने दो शादी नहीं की, मेरी तो एक ही पत्नी है। वकील होशियार था, झूठ चल गया। उसने कानून की बड़ी बारीकियां निकालीं और सिद्ध हो गयी बात, और मजिस्ट्रेट ने कहा कि ठीक है नसरुद्दीन, यह सिद्ध हो गया कि तुम्हारी एक ही पत्नी है, तुम जुर्म से बरी किए जाते हो; अब तुम घर जा सकते हो।

नसरुद्दीन ने कहाः हुजूर, एक बात और बता दीजिए। मैं किस घर जाऊं? क्योंकि दोनों पत्नियां राह देख रही होंगी।

नसरुद्दीन प्रतिदिन अपने गधे को सरहद के पार ले जाता था। उस पर घास लदी होती थी। सरहद के सिपाहियों के सामने वह स्वीकार करता था कि वह तस्कर है, इसलिए वे लोग उसकी रोज तलाशी लेते थे। उसकी घास उछालते, कभी जला देते तो

कभी पानी में डालते। इधर नसरुद्दीन धनी से धनी होता जा रहा था।

फिर वह वहां से दूसरे देश में रहने गया। वर्षों बाद उसे सरहद की रक्षा करने वाले पुराने अफसरों में से एक मिला। उसने कुतूहलवश पुछा, 'नसरुद्दीन, तुम ऐसी कौन सी चीज की तस्करी करते थे कि तुम्हें कभी पकड़ नहीं सके?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'गधों की।'

एक मुशायरा चल रहा था और एक शायर ने गजल पढ़ी, जिसकी पहली लाइन थीः मैं ताज बना देता, मगर मुमताज नहीं मिलती।' जैसे ही उसने यह पंक्ति पढ़ी, मुल्ला नसरुद्दीन एकदम खड़ा हो गया और गुस्से में बोलाः 'मियां, खुशकिस्मत हो कि कुछ लेट हो गए, अगर कुछ दिन पहले आप तशरीफ ले आते तो मुमताज मिल सकती थी। लेकिन अब तो दुर्भाग्यवश मेरी उससे शादी हो चुकी है'।

ज्योतिषी-तुम्हारी जन्म तिथि क्या है?

चंदूलाल-दो अक्टूबर।

ज्योतिषी-कौन सा साल?

चंदूलाल-जी, प्रत्येक साल मेरा जन्म दिन आता है।

विदेशी पर्यटक ने पूछा- आपके देश में कौन-कौन से बड़े आदमी पैदा हुए हैं?

मुल्ला नसरुद्दीन- एक भी नहीं। इस मुल्क में सदा छोटे-छोटे बच्चे ही जन्मते हैं।

शिक्षक- गांधी-जयंति के बारे में मालूम है?

विद्यार्थी- सर, गांधीजी तो एक महापुरुष थे, जिन्होंने देश को आजाद कराया। लेकिन जयंति के साथ उनका क्या लफड़ा था, पता नहीं। वैसे लैला-मजनूं और शीरी-फरिहाद की तरह इनका नाम भी सदा जोड़ी में आता है।

चंदूलाल- भाईजान, कल्पना करो कि आप किसी बिल्डिंग की पांचवीं मंजिल पर हो और मकान में नीचे से आग लग गई। धू-धूकर लपटें ऊपर तक आने लगीं। सीढ़ियों से उतरना संभव नहीं। बिजली के तार जल जाने से लिफ्ट काम नहीं कर रही। छलांग लगाई तो मारे जाओगे। बोलो, ऐसी स्थिति में क्या करोगे?

मुल्ला नसरुद्दीन- भाईजान, ऐसी स्थिति में, मैं कल्पना करना बंद कर दूंगा।

देखा नसरुद्दीन का सीधा-सरल जवाब!

15

एक ही मापदंड

जीवन के सत्य को अध्ययन–मनन से जाना जाता है या पूजा–प्रार्थना से, अथवा व्रत–उपवास–यज्ञ–तपादि क्रिया–कांडों से?

जवाब सुनकर शायद आपको निराशा हो, लेकिन सत्य के विषय में पूछा है तो सत्य सुनने की तैयारी दिखानी ही होगी। सोच-विचार, अध्ययन-मनन, चिंतन, पूजा-प्रार्थना, व्रत-उपवास, यज्ञ-तप या अन्य किसी क्रिया-कांडों से सत्य प्राप्ति का कोई भी नाता नहीं है। अगर कोई संबंध है तो वह दुश्मनी का रिश्ता है। इन सारी बातों में उलझा हुआ व्यक्ति कभी भी सत्य को न जान सकेगा। सत्य के दर्शन हेतु निर्विचार, अव्यस्त चेतना चाहिए। न ग्रंथों का बोझ, न भक्ति का भावावेश, न साधना के नाम पर प्रचलित कर्मों का उपद्रव... इन सबसे थोड़ी देर को छुटकारा मिले तो जीवन का सौंदर्य दिखाई पड़े!

'नेति-नेति' नामक प्रवचनमाला में सदगुरु ओशो द्वारा सुनाई एक प्रीतिकर कथा स्मरण आ रही है। कोई डेढ़ हजार वर्ष पहले चीन के सम्राट ने सारे राज्य के चित्रकारों को खबर की कि वह राज्य की मुहर बनाना चाहता है। मुहर पर एक बांग देता हुआ, बोलता हुआ मुर्गा, उसका चित्र बनाना चाहता है। जो चित्रकार सबसे जीवंत चित्र बनाकर ला सकेगा, वह पुरस्कृत भी होगा, राज्य का कलागुरु भी नियुक्त हो जायेगा। और बड़े पुरस्कार की घोषणा की गयी।

देश के दूर-दूर कोनों से श्रेष्ठतम चित्रकार बोलते हुए मुर्गे के चित्र बनाकर राजधानी में उपस्थित हुए। लेकिन कौन तय करेगा कि कौन-सा चित्र सुन्दर है। हजारों चित्र आये थे। राजधानी में एक बूढ़ा कलाकार था। सम्राट ने उसे बुलाया कि वह चुनाव करे, कौन-सा चित्र श्रेष्ठतम बना है। वही राज्य की मुहर पर जायेगा।

उस चित्रकार ने उन हजारों चित्रों को एक बड़े भवन में बंद कर लिया और स्वयं भी उस भवन के भीतर बंद हो गया! सांझ होते-होते उसने खबर दी कि एक भी चित्र ठीक नहीं बना है! सभी चित्र गड़बड़ हैं! एक से एक सुन्दर चित्र आये थे। सम्राट स्वयं देखकर दंग रह गया था। लेकिन उस बूढ़े चित्रकार ने कहा, कोई भी चित्र योग्य नहीं है!

राजा हैरान हुआ। उसने कहा, 'तुम्हारे मापदंड क्या हैं, तुमने किस भांति जांचा कि चित्र ठीक नहीं हैं।'

उसने कहा, मापदंड एक ही हो सकता था और वह यह कि मैं चित्रों के पास एक जिंदा मुर्गे को ले गया और उस मुर्गे ने उन चित्रों के मुर्गों को पहचाना भी नहीं, फिक्र भी नहीं की, चिंता भी नहीं की! अगर वे मुर्गे जीवंत होते चित्रों में तो वह मुर्गा घबराता या बांग देता, या भागता, लड़ने को तैयार हो जाता! लेकिन उसने बिलकुल उपेक्षा की, उसने चित्रों की तरफ देखा भी नहीं! बस एक ही क्राइटेरियन, एक ही मापदंड हो सकता था। वह मैंने प्रयोग किया। कोई भी चित्र मुर्गे स्वीकार नहीं करते हैं कि चित्र मुर्गों के हैं।

सम्राट ने कहा, यह तो बड़ी मुसीबत हो गयी। यह मैंने सोचा भी नहीं था कि मुर्गों की परीक्षा

करवायी जायेगी चित्रों की! लेकिन उस बूढ़े कलागुरु ने कहा कि मुर्गों के सिवाय कौन पहचान सकता है कि चित्र मुर्गे का है या नहीं?

राजा ने कहा, 'फिर अब तुम्हीं चित्र बनाओ।'

उस बूढ़े ने कहा, 'बड़ी कठिन बात है। इस बुढ़ापे में मुर्गे का चित्र बनाना बहुत कठिन बात है।'

सम्राट ने कहा, 'तुम इतने बड़े कलाकार, एक मुर्गे का चित्र नहीं बना सकोगे?'

उस बूढ़े ने कहा, 'मुर्गे का चित्र तो बहुत जल्दी बन जाये, लेकिन मुझे मुर्गा होना पड़ेगा। उसके पहले चित्र बनाना बहुत कठिन है।'

राजा ने कहा, 'कुछ भी करो।'

उस बूढ़े ने कहा, 'कम से कम तीन वर्ष लग जायें, पता नहीं मैं जीवित बचूं या न बचूं।'

उसे तीन वर्ष के लिए राजधानी की तरफ से व्यवस्था कर दी गयी और वह बूढ़ा जंगल में चला गया। छह महीने बाद राजा ने लोगों को भेजा कि पता लगाओ, उस पागल का क्या हुआ? वह क्या कर रहा है?

लोग गये। वह बूढ़ा जंगली मुर्गों के पास बैठा हुआ था!

एक वर्ष बीत गया। फिर लोग भेजे गये। पहली बार जब लोग गये थे, तब तो उस बूढ़े चित्रकार ने उन्हें पहचान भी लिया था कि वे उसके मित्र हैं और राजधानी से आये हैं। जब दोबारा वे लोग गये तो वह बूढ़ा करीब-करीब मुर्गा हो चुका था। उसने फिक्र भी नहीं की और उनकी तरफ देखा भी नहीं, वह मुर्गों के पास ही बैठा रहा!

दो वर्ष बीत गये। तीन वर्ष पूरे हो गये। राजा ने लोग भेजे कि अब उस चित्रकार को बुला लाओ, चित्र बन गया हो तो। जब वे गये तो उन्होंने देखा कि वह बूढ़ा तो एक मुर्गा हो चुका है, वह मुर्गे जैसी आवाज कर रहा है, वह मुर्गों के बीच बैठा हुआ है, मुर्गे उसके आसपास बैठे हुए हैं। वे उस बूढ़े को उठाकर लाये। राजधानी में पहुंचा, दरबार में पहुंचा।

राजा ने कहा, 'चित्र कहां है?' उसने मुर्गे की आवाज की! राजा ने कहा, 'पागल, मुझे मुर्गा नहीं चाहिए, मुझे मुर्गे का चित्र चाहिए। तुम मुर्गे होकर आ गये हो। चित्र कहां है?'

उस बूढ़े ने कहा, 'चित्र तो अभी बन जायेगा। सामान बुला लें, मैं चित्र बना दूं।' और उसने घड़ी भर में चित्र बना दिया। और जब मुर्गे कमरे के भीतर लाये गये तो उस चित्र को देखकर मुर्गे डर गये और कमरे के बाहर भागे।

राजा ने कहा, 'क्या जादू किया है इस चित्र में तुमने?' उस बूढ़े ने कहा, 'पहले मुझे मुर्गा हो जाना जरूरी था, तभी मैं मुर्गे को निर्मित कर सकता था। मुझे मुर्गे को भीतर से जानना पड़ा कि वह क्या होता है। और जब तक मैं आत्मसात न हो जांऊ, मुर्गे के साथ एक न हो जांऊ तब तक कैसे जान सकता हूं कि मुर्गा भीतर से क्या है, उसकी आत्मा क्या है?'

यह कहानी सुनाकर ओशो कहते हैं– 'आत्म-एक्य के बिना, जीवन के साथ एक हुए बिना, जीवन के प्राण को, जीवन की आत्मा को भी नहीं जाना जा सकता। जीवन का प्राण ही प्रभु है। वही सत्य है। जीवन के साथ एक हुए बिना कोई रास्ता नहीं है कि कोई जीवन को जान सके।'

16

बस एक कदम

मेरी उम्र सत्रह साल है। जब मैं हिसाब लगाता हूं कि सत्तर–अस्सी वर्ष की जिंदगी कैसे जिऊंगा, तो बड़ी उलझन खड़ी हो जाती है। मुझे सुलझने का मार्ग दिखाएं।

इतना लंबा-चौड़ा हिसाब न लगाओ। आज का दिन तुम्हारे हाथ में है, बस उसी का ख्याल करो। वस्तुतः एक दिन भी कहां, केवल वर्तमान का क्षण ही हाथ में है।

सुनो यह घटना। रात्रि हो चली थी। अंधकार अपना साम्राज्य फैला चुका था। एक तीर्थयात्री चाहता था कि वह रात्रि में ही पहाड़ी स्थित मंदिर का दर्शन कर लौट आए, तो सुबह वह वापस अपने गांव जाने वाली एकमात्र रेलगाड़ी को समय पर पकड़ पाएगा। उसने पास ही एक कुटिया में रह रहे बुजुर्गवार से पूछा कि रौशनी की कोई व्यवस्था हो सकती है क्या?

बुजुर्गवार ने अपना टिमटिमाता लालटेन उसे थमा दिया। लालटेन की लौ बेहद धीमी थी और बमुश्किल दस फुट तक अंधेरा छंट रहा था। तीर्थयात्री बोला- बाबा, इस छोटी सी लालटेन की रोशनी तो सिर्फ चार कदम तक ही जाती है। आगे अंधेरा छाया रहता है, ज्यादा दूर तक कुछ दिखता नहीं। इस मद्धिम प्रकाश के सहारे इतना बड़ा पर्वत कैसे चढ़ पाऊंगा?

वृद्ध सज्जन ने तीर्थयात्री की ओर एक गहन दृष्टि डाली और मुस्कुराकर कहा- बेटे, मुझे तो नहीं लगता कि तुम एक बार में एक से ज्यादा कदम भर पाते होगे! जब तुम एक कदम चलोगे तो तुम्हारे संग प्रकाश भी एक कदम आगे खिसक जाएगा। लंबी दूर तक कुछ देखने की जरूरत भी नहीं। पूरी पहाड़ी को प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है।

ओशो की एक किताब का शीर्षक है- 'एक-एक कदम'। उसमें वे कहते हैं कि 'जिंदगी में, अगर कोई पूरा हिसाब पहले लगा ले तो वहीं बैठ जाएगा, वहीं डर जाएगा और खत्म हो जाएगा। जिंदगी में एक-एक कदम का हिसाब लगाने वाले लोग हजारों मील चल जाते हैं और हजारों मील का हिसाब लगाने वाले लोग एक कदम भी नहीं उठाते, डर के मारे वहीं बैठे रह जाते हैं।'

गुणा-भाग छोड़ो और चलना आरंभ करो। दूरी से अधिक महत्त्वपूर्ण है- दिशा। बस इतना ख्याल रखना कि तुम्हारे कदम सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की ओर, सत्-चित्-आनंद की ओर, शांति-प्रीति-मुक्ति की ओर उठ रहे हैं या नहीं? और भूल-चूक से न घबराना। सीखने का अन्य कोई उपाय भी नहीं है।

होशपूर्वक जीना, निरीक्षण और पुनर्विचार करते रहना। अपनी आंतरिक प्रकृति की सुनना। आवश्यकता पड़ने पर निर्णय बदलने का साहस मत खोना। संक्षेप में यही मेरा मार्गदर्शन है।

भाव का भाव

एक दिन एक सेठ ने सूफी संत शेख फरीद से कहा, मैं घंटों पूजा-पाठ करता हूं, लाखों रुपये दान-पुण्य में खर्च करता हूं। गरीबों को खाना खिलाता हूँ, फिर भी मुझे भगवान के दर्शन नहीं होते। आप मेरा मार्ग दर्शन कीजिए।

फरीद ने कहा, यह तो बहुत आसान है। आओ मेरे साथ। मौका मिला तो आज ही भगवान के दर्शन करा दूंगा।

शेख फरीद उस सेठ को नदी तट पर ले गए, फिर उन्होंने सेठ को जल में डुबकी लगाने को कहा। जैसे ही सेठ ने जल में डुबकी लगाई फरीद सेठ के ऊपर सवार हो गए। संत फरीद काफी तंदुरुस्त थे। उनका वजन सेठ संभाल नहीं पा रहा था। वह बाहर निकलने की कोशिश करता लेकिन और अधिक डूब जाता था। सेठ तड़पने लगा। उसने सोचा कि अब जान नहीं बचेगी। चले थे भगवान के दर्शन करने अब यह जिंदगी भी गई। सेठ था तो कमजोर, लेकिन मौत नजदीक देख कर अंततः उसने गजब का जोर लगाया और एक झटके में ही ऊपर आ गया। उसने फरीद से कहा, 'तू फकीर नहीं, कसाई है। तू मुझे भगवान के दर्शन कराने लाया था या मारने?'

फरीद ने पूछा, 'यह बताओ कि जब मैं तुम्हें पानी में दबा रहा था तो क्या हुआ?' सेठ बोला, 'होना क्या था। जान निकलने लगी थी। पहले बहुत विचार उठे मन में कि हे भगवान! कैसे बचूं, कैसे निकलूं बाहर। जब प्रयत्न सफल नहीं हुए तो धीरे-धीरे विचार भी खो गए। फिर तो एक ही सवाल आया किसी तरह बाहर निकल जाऊं। विचार खो जाने के बाद बस, बाहर निकलने का ही भाव रह गया।

फरीद ने कहा, 'परमात्मा तक पहुंचने का यह अंतिम मार्ग ही सबसे सरल है। जिस दिन केवल परमात्मा को पाने का भाव बचा रह जाएगा और विचार तथा प्रयास खत्म हो जाएंगे, उसी दिन ईश्वर तुम्हें दर्शन देंगे। आदमी केवल सोचता है, विचार करता है, सवाल करता है। लेकिन उसके भीतर भाव उत्पन्न नहीं होता, इसलिए उसे संपूर्ण सफलता नहीं मिलती।' सेठ ने फरीद का भाव अच्छी तरह समझ लिया।

भगवान के लिए केवल भाव का ही भाव (मूल्य, दाम) है। शेष सारे क्रिया-कांड, दान-पुण्य, तीर्थ-स्नान आदि निमूर्ल्य हैं। लेकिन आश्चर्य कि अधिकांश लोग व्यर्थ की चीजों की इतनी कीमत मानते हैं, और सार्थक को भाव ही नहीं देते! तभी तो परमात्मा से वंचित रह जाते हैं। यदा-कदा कोई समग्र भाव से भरा खोजी उसके मंदिर के द्वार तक पहुंच पाता है। आप क्या साधना करते हैं, कितने सालों से करते हैं- ये बातें अर्थहीन हैं। आप कैसे करते हैं- भावसहित, समग्रता से, प्राणों में गहन प्यास से, अभीप्सा से- सिर्फ यही बात मायने रखती है।

18

चेतना के प्रति चैतन्य

क्या बिना ध्यान किए आत्मज्ञान नहीं होता?

ध्यान है आत्मज्ञान की शुरुआत, आत्मज्ञान है ध्यान का समापन. वे दो अलग-अलग घटनाएं नहीं, एक ही डंडे के दो छोर हैं. मार्ग है मंजिल का आरंभ, मंजिल है मार्ग का अंत. वे जुड़े हुए हैं, अविभाज्य हैं.

मैंने सुनी है एक प्राचीन कथा कि भारद्वाज ऋषि के पुत्र यवक्रीत को विद्यार्जन में रूचि नहीं थी. इसलिए वह बाल्यकाल एवं युवावस्था में अध्ययन से दूर रहे; पर बाद में उन्हें एहसास हुआ कि अशिक्षित होने और शास्त्रों का ज्ञान नहीं होने के कारण समाज में उनका सम्मान नहीं होता. लेकिन चूँकि उनकी उम्र ज्यादा हो चुकी थी, विधिवत शिक्षा ग्रहण करने का समय निकल चुका था, इसलिए उन्होंने सोचा कि क्यों न देवताओं की तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया जाए और वरदान मांग कर सारी विद्याएं प्राप्त कर ली जाएं. वह गंगा किनारे भगवान को खुश करने के लिए ध्यानमग्न हो गए. भगवान इन्द्र उनके मन की बात समझ गए. एक दिन वह साधु का वेश धारण करके वहां आए और दोनो हाथों से रेत उठाकर पानी में डालने लगे.

थोड़ी देर में यवक्रीत की आंखें खुली उन्होंने साधु को पानी में बालु डालते देख कर पूछा, 'आप यह क्या कर रहे हैं?' साधु ने कहा, 'गंगा के ऊपर पुल बना रहा हूं.' यवक्रीत ने कहा, 'आप तो बड़े ज्ञानी लगते हैं लेकिन यह मूर्खता वाला काम क्यों कर रहे हैं? कहीं बालु से पुल बनता है!' यह सुनकर साधु ने कहा, 'यदि बिना पढ़े-लिखे ज्ञान मिल सकता है तो बालु से पुल क्यों नहीं बन सकता. अगर तपस्या करने से ही ज्ञान मिलता तो फिर पढ़ने-लिखने का कष्ट कौन उठाता. सभी आप की तरह तपस्या करके भगवान को खुश करके ज्ञान का वर मांग लेते.'

यह सुन कर यवक्रीत सोच में पड़ गए. उन्होंने कहा, 'पर इतनी ज्यादा उम्र में पढ़ाई कौन करता है.' साधु ने कहा, 'वत्स! ज्ञान प्राप्त करने की कोई सीमा नहीं होती. यदि आप संकल्प कर लोगे तो अब भी अपने पिता के समान महान ज्ञानी बन सकते हो.' यवक्रीत ने कहा, 'आप ठीक कह रहे हैं. अब मैं अध्ययन करूंगा.' बाद में यवक्रीत महान विद्वान बने और तपोदित के नाम से जाने गए.

भविष्य में संभवतः बाहरी जगत के ज्ञान को पाने का कोई शार्टकट विज्ञान खोज लेगा, परंतु आत्मज्ञान पाने का एक ही रास्ता संभव है- ध्यान. इसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता. यह सरलतम, सुगमतम, शार्टकट ही है, इससे और कम मुमकिन नहीं.

मस्तिष्क की स्मृति शायद आने वाले समय में, अध्ययन के अलावा अन्य उपायों से भी बढ़ाई जा सकेगी, क्योंकि वह यांत्रिक घटना है. यह प्राचीन कथा तब आउट ऑफ डेट हो जाएगी. मस्तिष्क का ट्रांसप्लान्टेशन संभव है. छोटे बच्चे की खोपड़ी में किसी मरते हुए अनुभवी बुजुर्ग की स्मृतियां डाली जा सकती हैं. बगैर सर्जरी के भी शायद संभव हो जाए- स्मृतियां दिमाग में विद्युतीय रूप में संग्रहीत हैं. जैसे कम्प्यूटर द्वारा एक सी.डी. की कॉपी करके कई सी.डी. बनाई जा सकती हैं, ठीक वैसे ही ज्ञानी लोगों की विद्युत तरंगों का पैटर्न दूसरों में इन्ड्यूस किया जा सकेगा. वह एक मैकेनिकल, इलेक्ट्रिकल घटना है.

आत्मज्ञान, भौतिक मस्तिष्क के परे स्वयं के स्वरूप की अनुभूति है. वह आत्मा का ज्ञान है, जो केवल आत्मा ही कर सकती है. आत्मा बिल्कुल निजी घटना है, वहां किसी अन्य का प्रवेश असंभव है. वह चेतना के प्रति चैतन्य होना है. ध्यान इसी प्रक्रिया का आरंभ है.

मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि आप इससे बचना क्यों चाहते हो? आपके प्रश्न से लगता है कि बचने की इच्छा है. ध्यान की जगह आत्मज्ञान की शुरुआत, और आत्मज्ञान के स्थान पर ध्यान का समापन; इन दो शब्दों को रखकर सवाल पूछो. तब आपको प्रश्न की निरर्थकता का पता लग जाएगा. आप पूछ रहे हो कि क्या बिना ध्यान किए आत्मज्ञान नहीं होता? अर्थात् क्या बिना आत्मज्ञान की शुरुआत किए आत्मज्ञान का समापन नहीं होता?

19

प्रेम या प्रतियोगिता?

आधुनिक शिक्षा पद्धति में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दोष क्या है?

वर्तमान शिक्षा प्रणाली प्रतिस्पर्धा सिखाती है, प्रेमभाव को नष्ट करती है। दूसरे शब्दों में महत्त्वाकांक्षा का तेल डालकर, अहंकार की अग्नि को भड़काती है, जीवन को जलाती है। इसीलिए तो ईर्ष्या को जलन भी कहते हैं। शेष समस्त दोष इसी एक मूल-भूल की शाखाएं हैं।

सुनो यह कहानी- एक किसान बहुत ही उच्च कोटि की फसल उगाया करता था। हर साल वह राज्य की एक बड़ी प्रदर्शनी में अपनी फसल को दिखाने ले जाता जहां उसे बहुत ही सम्मान एवं पुरस्कार तक भी मिलता था। एक बार एक समाचार पत्र के संवाददाता ने उस किसान से साक्षात्कार किया, जिस दौरान ऐसी बढ़िया फसल पैदा करने हेतु बड़ी ही रोमांचकारी बातें ज्ञात हुईं। संवाददाता को पता चला कि वह किसान अपने पड़ोसी किसानों के साथ अपनी फसल के बीजों को बांटा करता है।

संवाददाता ने पूछा, जब आपके पड़ोसी लोग प्रतिवर्ष आपके साथ प्रतियोगिता में आने वाले हैं तो आप अपनी बेहतरीन फसल के बीज उनमें कैसे बांट सकते हो?

'क्यों नहीं,' वह किसान बोला 'क्या आपको मालूम नहीं कि तेज़ हवाएं पक रही फसल से परागकणों को उड़ा ले जाती हैं और फिर घूमती हुई उन्हें आसपास के खेतों में बिखेर देती हैं। यदि मेरे पड़ोसी किसान निम्न स्तर के बीज़ बोएंगे तो परागकणों के परस्पर आदान-प्रदान से मेरी फसल की गुणवत्ता मे गिरावट आ जाएगी। इसलिए यदि मुझे अच्छी फसल उगानी है तो मुझे अपने पड़ोसियों की भी अच्छी फसल उगाने में मदद करनी होगी।'

उस किसान ने जीवन में संयोजन के बारे में एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया। उसने बताया कि पड़ोसी किसानों के बीजों को बेहतर बनाए बगैर उसके अपने बीज़ नहीं संवरेंगे। जीवन के दूसरे आयामों में भी ऐसा ही होता है। जीवन मे जो लोग परस्पर सामंजस्य में जीना चाहते हैं उन्हें अपने पड़ोसियों एवं सहकर्मियों की सभी भांति रहने में मदद करनी होगी।

जो जीवन को बढ़िया ढंग से व्यतीत करना चाहते हैं उन्हें दूसरें की भी ऐसा करने में मदद करनी होगी क्योंकि जीवन का मूल्यांकन इस बात से होता है कि कितने लोगों के जीवन को आपने सुखद स्पर्श दिया। और जो प्रसन्न रहना चाहते हैं उन्हें दूसरों की प्रसन्नता में मददगार होना होगा क्योंकि हमारा व्यक्तिगत हित समस्त लोगों के हित से जुड़ा हुआ है। यदि हमें अच्छी किस्म के बीज़ पैदा करने हैं तो हमें अपने पड़ोसियों की भी ऐसा करने में मदद करनी होगी।

किसी संगठन अथवा मुल्क के विकसित होने का एक ही तरीका है कि हम दूसरों के साथ-साथ विकसित हों न कि दूसरों की कीमत पर! प्रेम से जिएं ना कि प्रतियोगिता के आधार पर। अपने स्वगुणों को विकसित करें, अपनी छिपी हुई प्रतिभा को उघाड़ें, ना कि दूसरों की नकल करें अथवा उनके विकास में अवरोध बनें।

धारणाओं के रंगीन चश्मे

ओशो कहते हैं कि विश्वविद्यालय से अपनी बुद्धिमत्ता बचाकर निकल आना अति–दुर्लभ है। ऐसा क्यों?

विश्वविद्यालय हमारी स्मृति को भरते हैं। बुद्धिमत्ता बिल्कुल भिन्न तत्त्व है। स्मृति, बुद्धिमत्ता की सब्स्टीट्यूट है। जितनी स्मृति बढ़ती जाती है, बुद्धिमत्ता कम होने की संभावना बनती जाती है। स्मृति के पार, निर्विचार होने पर बुद्धिमत्ता विकसित होती है। मन की शून्यता में से अंतः प्रेरणाएं जन्मती हैं। विज्ञान की महानतम खोजें, सृजनात्मक कलाओं की सूझ–बूझ, अध्यात्म की अनुभूतियां आदि आंतरिक शून्य से उपजती हैं।

बीसवीं शताब्दी के महान भौतिकविद वर्नर हाइजेनबर्ग (१९०१– १९७६) जर्मन सैद्धांतिक भौतिकशास्त्री थे। उन्होंने क्वांटम मैकेनिक्स के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया। क्वांटम भौतिकी में प्रयुक्त किया जाने वाला अनिश्चितता का सिद्धांत उन्होंने ही प्रतिपादित किया था। नाभिकीय भौतिकी, क्वांटम फील्ड थ्योरी और पार्टिकल थ्योरी के क्षेत्र में भी उन्होंने अनेक नियमों, संकल्पनाओं, और सिद्धांतों को अन्वेषित किया।

वर्नर हाइजेनबर्ग उन्नीस साल की उम्र तक एक स्कूल में गेटकीपर की नौकरी करते थे। स्कूल की लाइब्रेरी में एक बार उन्हें प्राचीन यूनानी दार्शनिक प्लेटो की पुस्तक 'तिमैयस' मिल गई जिसमें प्लेटो ने परमाणुओं और पदार्थ से सम्बंधित अपने सिद्धांत प्रस्तुत किये थे। मामूली शिक्षा प्राप्त वर्नर हाइजेनबर्ग को यह किताब पढ़कर, परंपरागत विज्ञान से हटकर एकदम नए आइडिया सूझे। उन्हें भौतिकी में इतनी रुचि हो गई कि उन्होंने इसका विधिवत अध्ययन करने की ठान ली। चूंकि उन्हें पहले से ज्ञान नहीं था, स्मृति खाली थी, मन ताजा था; अतः प्रचलित धारणाओं के सम्मोहन से वे मुक्त थे। तीन सदियों से प्रतिष्ठित न्यूटन की फिजिक्स के खिलाफ वे सोच सके।

इसके बाद जो हुआ वह शिक्षा और प्रतिभा के क्षेत्र में अनुपम उदहारण के रूप में हमेशा याद रखा जायेगा। वर्नर हाइजेनबर्ग ने भौतिकी का इतना विषद अध्ययन किया कि मात्र २३ वर्ष की उम्र में वे गौतिन्जेन में महान भौतिकशास्त्री मैक्स प्लांक के सहायक के रूप में नियुक्त हो गए। २४ वर्ष की उम्र में उन्हें कोपेनहेगन के विश्वविद्यालय में अध्यापक का पद मिल गया। २६ वर्ष की उम्र में वे लीप्जिग में भौतिकी के प्रोफेसर बन गए। ३२ वर्ष की उम्र में उन्हें पिछले कुछ सालों में भौतिकी के क्षेत्र में किये गए उल्लेखनीय कार्यों के लिए नोबल पुरस्कार मिल गया। बाद में अनेक सालों तक वे एक दूसरे महान अणुविज्ञानी नील्स बोर की संस्था के अध्यक्षपद पर कार्य किए।

एक गेटकीपर से नोबल पुरस्कार विजेता बनने तक का १३ साल का छोटा सा सफर तय करने की मिसाल दुनिया में और कोई नहीं है। अपनी आंतरिक प्रेरणा पाकर एक साधारण नवयुवक कितनी ऊंचाइयों तक पहुँच सकता है, वर्नर हाइजेनबर्ग की यह कहानी हमें यही बताती है। तथाकथित ज्ञान यानि स्मृति–भंडार से वे रिक्त थे, तरोताजा चेतना के मालिक थे;

प्रतिष्ठित धारणाओं के सम्मोहन से मुक्त थे। इसीलिए क्लासिकल फिजिक्स के ठीक विपरीत तथ्यों को देख सके और क्वांटम फिजिक्स के जन्मदाता बन सके।

हमारी जानकारी, खासकर बचपन से जो मन में ठूंस दी गई है, वह हमें बुरी तरह हिप्नोटाइज कर देती है। आंखों पर धारणाओं के रंगीन ऐनक लग जाते हैं। फिर उसी रंग में रंगा हुआ सब नजर आने लगता है और हम सत्य के दर्शन से चूक जाते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर, थॉमस अल्बा एडिसन, माइकेल फैराडे आदि ऐसे ही ज्वलंत उदाहरण है, जिनकी अनूठी प्रतिभा कम पढ़े-लिखे होने का सद्परिणाम थी। ज्ञान मौलिकता को नष्ट कर देता है।

हजारों साल से बौद्धिक ज्ञान अर्जित करने में संलग्न रहा ब्राह्मण वर्ग, अध्यात्म के क्षेत्र में प्रगति न कर सका। आश्चर्य नहीं कि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र; इन सभी वर्गों ने हजारों संतों को पैदा किया। ब्राह्मणों में अपवाद स्वरूप ही आत्मज्ञानी जन्मे। अपवाद से नियम ही सिद्ध होता है। ओशो का यह कथन महत्त्वपूर्ण है कि विश्वविद्यालय से अपनी बुद्धिमत्ता बचाकर निकल आना अति-दुर्लभ है। विश्वविद्यालयों में इतनी रिसर्च चलती हैं, शोध-कार्यों में कितना धन और वक्त बर्बाद होता है; कभी आपने सुना कि कोई सार्थक आविष्कार वहां हुआ हो? अधिकतम जीवन-उपयोगी खोजें विश्वविद्यालयों के बाहर ही होती हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन ने बड़ी रिसर्च करने के बाद कहा है–

सफलता कदम चूमे, इसके लिए सही निर्णय लेना जरूरी है।
सही निर्णय लेने के लिए अपना खुद का अनुभव जरूरी है।
अनुभव प्राप्ति के लिए गलत निर्णयों से गुजरना जरूरी है।
शार्ट-कट खोजने के लिए बहुत लंबा चक्कर जरूरी है।
किताबी ज्ञान अनुभव करने के पहले ही अनुभवी बना देता है।

मैंने सुना है कि एक शाम मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी को फोन किया- 'बेगम, आज शाम एक दोस्त को डिनर पर घर ला रहा हूं। उससे मिलकर तुम्हें खुशी होगी। वह रिसर्च स्कालर है, चार दिन पहले ही उसने पी.एच.डी.की डिग्री हासिल की है।'

पत्नी फोन पर ही चीखने-चिल्लाने लगी- 'मियां, तुम्हारी अक्ल खो गई है? आंखें फूट गई हैं? दो महीने से तनख्वाह न मिलने पर नौकरानी छोड़कर चली गई है, रसोइया भी गायब है। एक बच्चे के दांत निकल रहे हैं। दूसरा शैतान स्कूल में मारपीट करके आया है। उसी की मरहम पट्टी कर रही हूं। मैं खुद तीन दिन से बुखार में हूं। अनाज घर में समाप्त हो गया है। दुकानदार ने आगे देने से मना किया है, जब तक हम पिछले पैसे न चुका दें। तुम्हारा दिमाग तो ठीक है? बेटी कालेज से अभी तक लौटी नहीं। शक हो रहा है उस लफंगे प्रेमी के साथ भाग न गई हो!'

मुल्ला ने कहा कि इसीलिए तो पी.एच.डी. दोस्त को घर ला रहा हूं। यह नालायक शादी करके सुखी दाम्पत्य जीवन जीना चाहता है। इसको तमाशा दिखाने ही घर ला रहा हूं कि देख ले भाई, कैसा आनंद का साम्राज्य छाया हुआ है... शायद इस गधे को अक्ल आ जाए!

पत्नी बोली- 'मियां, खबरदार जो उसे घर लाए। गधा होता तो शायद अक्ल आ जाती! मगर तुम तो कह रहे हो कि वह पी.एच.डी. है!'

अखंड होने की कीमत

परमगुरु ओशो पाखंड के घनघोर विरोधी तथा प्रामाणिकता के इतने पक्षधर रहे कि जगत के समस्त धर्मगुरुओं एवं राजनेताओं की शत्रुता झेलनी पड़ी। ऐसा ही अतीत के बुद्धों के संग हुआ। आत्मज्ञानी कोई समझौता क्यों नहीं करते? थोड़ा-सा मुखौटा क्यों नहीं ओढ़ लेते?

एक अधेड़ महिला को हार्ट अटैक आया और अस्पताल ले जाया गया। जब वह ऑपरेशन टेबल पर थी, भगवान उससे मिलने आये। भगवान को देखकर उसने पूछा- क्या मेरा समय पूरा हो गया?

नहीं- भगवान ने कहा- अभी तो तुम्हें ३६ साल ८ महीने १२ दिन और जीना है। ऐसा कहकर भगवान गायब हो गये।

ऑपरेशन सफल रहा और महिला ठीक हो गयी।

भगवान के कहे अनुसार अभी उसके पास बहुत जिन्दगी बाकी थी इसलिये उसने ठाठ से रहने का सोचा। अस्पताल से छुट्टी लेने के पहले उसने ब्यूटीशियन को बुलवाकर अपने बालों को रंगवाया तथा चेहरे को आकर्षक व कम उम्र का दिखने के जतन किये। फिर युवतियों जैसा लिबास पहनकर अस्पताल से घर जाने के लिये निकली। चूंकि भगवान ने उससे कहा था कि उसकी जिन्दगी के अभी बहुत दिन बाकी है इसलिये उसने सड़क पार करने में थोड़ी लापरवाही दिखाई और नतीजतन एक कार से जा टकराई। घटनास्थल पर ही उसकी मौत हो गई।

भगवान के सामने पहुंचने पर उसने पूछा- तुमने तो कहा था मेरी जिन्दगी के अभी और ३६ साल से अधिक बाकी हैं फिर तुमने मुझे कार के सामने आने से क्यों नहीं बचाया?

दरअसल, मैं तुम्हें पहचान ही नहीं सका- भगवान ने जवाब दिया।

मनुष्य दूसरों को ही नहीं, स्वयं को भी धोका देने में अति-कुशल है। उसकी यह चतुराई बड़ी मंहगी पड़ती है। आत्म-ज्ञान के आनंद की जगह वह आत्म-प्रवंचना के विषाद में जिंदगी गुजारता है। पाखंड मन को खंड-खंड कर देता है- भीतर कुछ, बाहर कुछ और। भीतर भी एक नहीं, अनेक खंड। सबमें अंतर्द्वन्द्व छिड़ा रहता है। यह द्वन्द्व ही सब तनावों का मूल है। जिसे तनावमुक्त होकर जीना है, उसे अखंड होने की कीमत चुकानी होगी। प्रामाणिक होना साधक के लिए एक अनिवार्यता है। प्रामाणिक होना सिद्ध का सहज स्वभाव है।

22

आख़िरी सत्य

धर्म के जगत में सब सनातन सत्य है, तो क्या नया कुछ भी नहीं?

सनातन का पर्यायवाची है नित-नूतन। पदार्थ के बारे में पच्चीसों बार यह घोषणा की जा चुकी है कि अब कुछ खोजने को शेष नहीं रह गया। उन्नीसवीं सदी में अमेरिका के पेटेन्ट विभाग के अध्यक्षों ने अनेक दफे कहा कि अब यह कार्यालय बंद कर देना चाहिए, क्योंकि अब कुछ नया नहीं संभव। किंतु हर बार वे गलत साबित हुए।

महान भौतिकशास्त्री मैक्स प्लांक (१८५८-१९४७) के बारे में सुनो जिन्होंने क्वांटम फिजिक्स की नींव रखी। वे बीसवीं शताब्दी के महानतम वैज्ञानिकों में से एक थे और उन्हें १९१८ में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उन्होंने अपने जीवन के पश्च भाग में बहुत से कष्ट झेले और जर्मनी में नाजी हुकूमत के दौरान उनका पूरा परिवार तबाह हो गया। आइंस्टीन की भांति बड़े वैज्ञानिक उनके लिए भी यही कहते हैं कि आज भी उनके सिद्धांतों को पूरी तरह से समझनेवाले लोग बहुत कम हैं।

पंद्रह वर्ष की उम्र में मैक्स प्लांक ने अपने विद्यालय के भौतिकी के विभागाध्यक्ष से कहा कि वे भौतिकशास्त्री बनना चाहते हैं। विभागाध्यक्ष ने प्लांक से कहा- 'भौतिकी विज्ञान की वह शाखा है जिसमें अब नया करने को कुछ नहीं रह गया है। जितनी चीजें खोजी जा सकती थीं उन्हें ढूँढ लिया गया है और भौतिकी का भविष्य धूमिल है। ऐसे में तुम्हें भौतिकी को छोड़कर कोई दूसरा विषय पढ़ना चाहिए।' -वास्तव में यह मत केवल प्लांक के विभागाध्यक्ष का ही नहीं थे। उस काल के कुछ बड़े वैज्ञानिक भी ऐसा ही सोचते थे।

लेकिन प्लांक ने किसी की न सुनी। लगभग २५ साल बाद क्वांटम फिजिक्स का आविर्भाव हुआ और प्लांक ने इसमें बहुत बड़ी भूमिका निभाई। क्वांटम फिजिक्स के आते ही क्लासिकल फिजिक्स औंधे मुंह गिर गई।

१८७९ में प्लांक ने इक्कीस वर्ष की उम्र में भौतिकी में पी।एच।डी। कर ली और बहुत कम उम्र में ही वे बर्लिन विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्रोफेसर बन गए। एक दिन वे यह भूल गए कि उन्हें किस कमरे में लेक्चर देना था। वे बिल्डिंग में यहां-वहां घूमते रहे और उन्होंने एक बुजुर्ग कर्मचारी से पूछा- 'क्या आप मुझे बता सकते हैं कि प्रोफेसर प्लांक का लेक्चर आज किस कमरे में है?'

बुजुर्ग कर्मचारी ने प्लांक का कन्धा थपथपाते हुए कहा- 'वहां मत जाओ, बच्चे। अभी तुम हमारे बुद्धिमान प्रोफेसर प्लांक का लेक्चर समझने के लिए बहुत छोटे हो।'

कहते हैं कि प्लांक के आने-जाने से लोग घड़ियाँ मिलाते थे। एक युवा भौतिकविद को इसपर विश्वास नहीं था इसलिए एक दिन वह उनके कमरे के बाहर खड़े होकर घड़ी के घंटे बजने की प्रतीक्षा करने लगा। जैसे ही घड़ी का घंटा बजा, प्लांक कमरे से बाहर निकले और गलियारे में से होते हुए चले गए। वह युवक उस कमरे तक गया जहां वे पढाने के लिए गए थे।

जैसे ही प्लांक पढाकर चलने लगे, घड़ी ने अपने घंटे बजाए। गौरतलब है कि प्लांक अपने पास कोई भी घड़ी नहीं रखते थे।

जिस कार्य की नींव प्लांक ने रखी, उसे अलबर्ट आइंस्टीन ने आगे बढाया। आइंस्टीन ने एक बार प्लांक के बारे में चुटकी लेते हुए कहा- 'मैं जितने भी भौतिकशास्त्रियों से मिला हूं उनमें वे सर्वाधिक बुद्धिमान हैं। लेकिन भौतिकी संबंधी उनकी सोच मुझसे मेल नहीं खाती क्योंकि १६१६ के ग्रहणों के दौरान वे रात-रात भर जागकर यह देखने का प्रयास रहे हैं कि प्रकाश पर गुरुत्वाकर्षण बल का क्या प्रभाव पड़ता है। यदि उनमें सापेक्षता के सिद्धांत की समझ होती तो वे मेरी तरह आराम से सोया करते।'

विभागाध्यक्ष का वचन याद रखना- 'भौतिकी विज्ञान की वह शाखा है जिसमें अब नया करने को कुछ नहीं रह गया है। जितनी चीजें खोजी जा सकती थीं उन्हें ढूँढ लिया गया है और भौतिकी का भविष्य धूमिल है।' अलबर्ट आइंस्टीन का उपरोक्त वचन भी कालांतर में गलत सिद्ध हो चुका है।

परमगुरु ओशो सत्य को तीन हिस्सों में बांटते हैं- ज्ञात, अज्ञात और अज्ञेय। नोन, अननोन एंड अननोएबिल। वैज्ञानिक तो केवल प्रथम दो हिस्सों को ही स्वीकारते हैं- ज्ञात तथा अज्ञात। कुछ जान लिया गया है, शेष जान लिया जाएगा। वैज्ञानिकों की सोच निरंतर भ्रम साबित हुई। कम से कम इक्कीसवीं सदी आते-आते उन्हें भी स्पष्ट हो गया, और अब कोई इस तरह की घोषणा नहीं करता कि आखिरी सत्य उद्घाटित हो गया। आधुनिक वैज्ञानिकों की किताबें अब निष्कर्ष पर समाप्त नहीं होतीं।

पदार्थ को जानना भी इतना मुश्किल है, जो कि स्थूल है, सीमित है, परिभाष्य है, दृश्य है! तो फिर सूक्ष्मातिसूक्ष्म, अदृश्य, अगोचर, असीम, अनादि, अनंत परमात्मा को भला कैसे जाना जा सकता है? वह रहस्य था, है और सदा रहेगा। धार्मिक व्यक्ति का ज्ञान, विस्मय को नष्ट करने वाला नहीं होता। सत्य की रहस्यमयता को स्वीकार करके वह रहस्य में जीने लगता है। उघाड़ने का प्रयास बंद कर देता है। इसीलिए तो हम ऋषियों को रहस्यविद कहते हैं- मिस्टिक, जो मिस्ट्री में जीने लगे और स्वयं भी मिस्टीरियस हो गए। अज्ञेय के संग एकात्म हो गए। सनातन का ऐसा अर्थ जानो- नित-नूतन। जिसका रहस्य कभी खुलता ही नहीं।

धर्म है चेतना का विज्ञान। स्वयं के चैतन्यमय, सदैव-नवीन सत्य को जानकर, आनंद घटता है, और घटता ही चला जाता है। धर्म के जगत में विकास की प्रक्रिया समाप्त नहीं होती। इसी का प्रतीक है सहस्रार चक्र- सहस्त्र दल कमल। आज की भाषा में अनुवाद होगा- हजार पंखुड़ियों वाला कमल। परंतु स्मरण रहे- इसका मौलिक अर्थ होता था- अनंत पंखुड़ियों वाला कमल- अंतहीन खिलावट। पंखुड़ियां खुलती ही चली जाएंगी।

अंत में यह भी कहना चाहता हूं कि पदार्थ का विज्ञान भी कहीं खत्म नहीं होगा, क्योंकि पदार्थ परमात्मा का ही प्रगट रूप है।

ऋषियों ने कहा है- कण-कण में भगवान, जो अंड में, वही ब्रह्मांड में।

अस्तित्व की निरंतर प्रेरणाएं

क्या रात्रि देखे गए स्वप्नों में अस्तित्व की ओर से प्रेरणाएं मिलती हैं?

अस्तित्व की ओर से निरंतर प्रेरणाएं प्राप्त होती रहती हैं, दिन में भी, रात में भी। हमारी ग्राहकता पर निर्भर है कि हम कितना ले पाएंगे, क्या ग्रहण कर पाएंगे। दिन के होशो-हवास में तक हम लेने तैयार नहीं, फिर रात की बेहोशी में तो बहुत मुश्किल बात है! यदा-कदा ही हम रिसेप्टिव होते हैं, संवेदनशील होते हैं। मैंने सुना है कि एक राजा को शिकार का नशा था। वह राजकाज छोड़कर हर समय शिकार में लगा रहता था। वह जिससे मिलता उससे शिकार के किसी प्रसंग पर ही बात करता। एक बार जब वह शिकार करने पहुंचा तो एक हिरन उसके सामने आ खड़ा हुआ। राजा उसे देखकर चकित रह गया।

तभी कोमल वाणी में हिरन ने कहा, 'राजन, आप प्रतिदिन वन में जाकर जीवों का शिकार करते हैं। कुछ जीव आपके हाथी-घोड़ों द्वारा कुचल दिए जाते हैं। मेरे शरीर के भीतर कस्तुरी का भंडार है। आप इस भंडार को लेकर वन के प्राणियों का शिकार करना छोड़ दें।'

हिरन की बात सुनकर राजा विस्मय से बोला, 'क्या तुम उन्हें बचाने के लिए अपने प्राण देना चाहते हो? तुम जानते हो कस्तूरी पाने के लिए मुझे तुम्हारा वध करना होगा।'

हिरन बोला, 'राजन, आप मुझे मारकर कस्तूरी का भंडार ले लीजिए, पर निरापराध जीवों को मारना छोड़ दीजिए।'

राजा ने पुनः कहा, 'तुम्हारा शरीर बहुत सुन्दर है। तुम्हारे भीतर कस्तूरी का भंडार है।'

हिरन ने जवाब दिया, 'राजन यह शरीर तो नश्वर है। मैं दूसरों के प्राण बचाने के लिए मर जाऊं इससे अच्छी बात क्या हो सकती है।'

मृग की ज्ञान भरी मृदुवाणी ने राजा के मन में प्रकाश पैदा कर दिया। वह सोचने लगा, यह जानवर होकर दूसरों के लिए, अपने प्राण दे रहा है और मैं मनुष्य होकर रोज जीवों को मारता हूं। धिक्कार है मुझ पर। तभी उसकी नींद टूट गई। साधारण नींद ही नहीं, आत्मिक नींद भी टूट गई। इस सपने ने उसकी आंखें खोल दी थी। उस दिन से राजा की हिंसा छूट गई। वह सबसे प्रेम करने लगा, और करुणामय हो गया। वह प्रायः लोगों से कहता कि सामान्यतः सपने नींद को गहराने के लिए आते हैं, किंतु मुझे एक सपने ने जगा दिया।

परमात्मा सब ओर से, भांति-भांति से संदेश भेज रहा है। अपने हृदय-द्वार खोलकर रखो। रात सपनों में हमारा अवचेतन मन सक्रिय रहता है, जो अच्छी तरह से जानता है कि भला क्या, बुरा क्या? चेतन मन को खबर पहुंचाने की कोशिश करता है। कभी कुछ करने की प्रेरणा देता है। कभी कुछ करने से रोकने का प्रयास करता है। जब चेतन मन लंबे समय तक सुनता ही नहीं, तो फिर अवचेतन की आवाज धीमी पड़ जाती है। ठीक वैसे ही, जैसे कोई व्यक्ति आपकी बात कभी न माने; तो क्रमशः आप कहना बंद कर दोगे।

खतरनाक कामना

क्या सेवा के द्वारा प्रभु को पाया जा सकता है?

यदि सेवा; प्रेम से जन्मी है, हृदय से उठी है, भाव से भरी है, तो निश्चित ही वह परमात्मा से जोड़ देगी। लेकिन यदि सेवा; अहंकार की चाल है, दूसरों को दयनीय हालत में रखने की इच्छा से भरी है, खुद को श्रेष्ठ बताने और बदले में कुछ पाने की चाहत से ओत-प्रोत है तो वह परमात्मा से तोड़ देगी। सेवा के बदले में परमात्मा को पाने की चाहत है तो भी, वह परमात्मा से तोड़ देगी।

मैंने सुना है कि हजरत खलील बहुत दयालु और दानी थे। जब तक वह किसी भूखे को खाना नहीं खिला देते थे तब तक वह स्वयं कुछ नहीं खाते थे। एक बार दो-तीन दिनों तक कोई याचक उनके घर नहीं आया। वह बड़े परेशान हुए और किसी भूखे व्यक्ति की तलाश में घर से निकले। कुछ दूर जाने पर उन्हें एक दुबला-पतला बूढ़ा व्यक्ति मिल गया। वह बड़े प्रेम से उसे अपने घर ले आये। आदर-सत्कार करके उसे अपने साथ बिठाया और नौकरों से उसके लिए भोजन लाने को कहा।

खाने की थाली आ गई लेकिन खाने से पहले बूढ़े ने खुदा का नाम नहीं लिया। हजरत खलील ने कहा- 'यह क्या, बूढे मियां! आपने तो खुदा का नाम लिया ही नहीं!'

बूढ़ा बोला- 'मैं अग्नि की उपासना करता हूं। हमारे संप्रदाय में खुदा को नहीं पूजा जाता।' यह सुनकर खलील को बहुत बुरा लगा। उन्होंने उस वृद्ध को भला-बुरा कहा और बेईज्जत करके घर से निकाल दिया।

बूढ़ा उदास होकर चला गया। तभी हजरत खलील को खुदा की आवाज सुनाई दी- 'खलील, तूने यह क्या किया! मैंने इस बूढे को बचपन से लेकर बुढ़ापे तक जिन्दगी दी और खाना दिया और तू कुछ देर के लिए भी उसे आसरा नहीं दे सका! वह अग्नि की पूजा करता है तो क्या हुआ, वह इंसान तो है! लोगों के यकीन जुदा हो सकते हैं पर इंसानियत तो हमेशा से एक ही है! खलील, तूने उससे मोहब्बत का हाथ खींचकर अच्छा नहीं किया!'

हजरत खलील को अपनी भूल पता चल गई और उन्होंने बूढ़े को ढूंढकर अपनी गलती की माफी मांगी और उसे प्रेम से भोजन कराया।

दयालु और दानी व्यक्ति भी अगर यह चाहता है कि अन्य लोग इस दशा में रहें कि उन्हें दान की जरूरत पड़े, उन पर दया की जा सके, तो फिर यह कामना खतरनाक है। दो-तीन दिनों तक कोई याचक खलील के घर नहीं आया। वह बड़े परेशान हुए। अगर सच में लोगों से प्यार था, तो खलील को प्रसन्न होना चाहिए था कि बहुत अच्छी बात है, किसी को मांगने की आवश्यकता नहीं है।

यदि सेवा को स्वर्ग पहुंचने का सोपान समझा, तब बड़ी जटिलता, बड़ी मुश्किल हो जाएगी। दयनीय लोगों के कंधों पर पैर रखता हुआ सेवक स्वर्ग जाने की कामना से भरा है। वह कभी न चाहेगा कि यह सीढ़ी फिसल जाए। एक ईसाई मिशनरी से जब ओशो ने यह बात कही तो वह बहुत चौंका। ओशो ने पूछा- अगर तुम्हारी सेवा से सारी दुनिया सुखी, स्वस्थ, शिक्षित, सम्पन्न हो जाए तो फिर सेवा किसकी करोगे? फिर स्वर्ग कैसे जाओगे? तुम कहते हो कि बिना सेवा के स्वर्ग नहीं मिलता!

उस मिशनरी ने स्वीकारा कि मेरे अवचेतन में यह बात बैठी है कि दुनिया के हालात कहीं वाकई अच्छे न हो जाएं। जैसे डॉक्टर नहीं चाहते कि सारे लोग स्वस्थ हो जाएं। डॉक्टर भूखे मर जाएंगे! यद्यपि ऐसा लगता है कि बेचारे कितनी मेहनत कर रहे हैं लोगों को स्वस्थ बनाने की, किंतु उनकी आंतरिक इच्छा कुछ और ही है। पुलिस वाले, वकील और न्यायाधीश नहीं चाहते कि जनता न्यायपूर्ण हो जाए, अपराध बंद हो जाएं। इन लोगों की आजीविका का क्या होगा? इनकी जिंदगी और प्रतिष्ठा अपराधियों पर टिकी है। ऊपर से दिखाई देता है कि ये लोग न्याय स्थापित करने में, अपराध रोकने में संलग्न हैं। शायद उन्होंने खुद कभी इस पर विचार न किया हो!

आप पूछते हो कि क्या सेवा के द्वारा प्रभु पाया जा सकता है? हां, अगर प्रभु पाने के ख्याल से ऐसा न किया जाए, तो संभव है। यह सेवा व्यवसाय न हो, प्रभु को रिझाने का, तो संभव है। सेवा शुद्ध प्रेम से उपजी हो, तो संभव है। सेवा से मिलेगा मेवा, इस कारण से सेवा की, तो असंभव है। यदि पक्का हो जाए कि प्रभु नहीं मिलेंगे, जीते-जी बेइज्जती होगी, अनेक कष्ट मिलेंगे, और मरने के बाद नरक में पड़ोगे; तब भी सेवा करते रहो तो वह हृदय से जन्मी बात होगी।

25

मन स्वयं ही एक रोग

एक आदमी मनोचिकित्सक के पास गया। बोला– डॉक्टर साहब मैं बहुत परेशान हूं। जब भी मैं बिस्तर पर लेटता हूं, मुझे लगता है कि बिस्तर के नीचे कोई है। जब मैं बिस्तर के नीचे देखने जाता हूं तो लगता है कि बिस्तर के ऊपर कोई है। नीचे, ऊपर, नीचे, ऊपर यही करता रहता हूं। सो नहीं पाता। कृपा कर मेरा इलाज कीजिये नहीं तो मैं पागल हो जाऊंगा।

डॉक्टर ने कहा– तुम्हारा इलाज लगभग दो साल तक चलेगा। तुम्हें सप्ताह में तीन बार आना पड़ेगा। अगर तुमने मेरा इलाज मेरे बताये अनुसार लिया तो तुम बिलकुल ठीक हो जाओगे।

मरीज– पर डॉक्टर साहब, आपकी फीस कितनी होगी?

डॉक्टर– सौ रुपये प्रति मुलाकात।

गरीब आदमी था। फिर आने को कहकर चला गया। लगभग छः महीने बाद वही आदमी डॉक्टर को सड़क पर घूमते हुये मिला।

क्यों भाई, तुम फिर अपना इलाज कराने क्यों नहीं आये? मनोचिकित्सक ने पूछा।

सौ रुपये प्रति मुलाकात में इलाज करवाऊं? मेरे पड़ोसी ने मेरा इलाज सिर्फ बीस रुपये में कर दिया –आदमी ने जवाब दिया।

अच्छा! वो कैसे?

दरअसल वह एक बढ़ई है। उसने मेरे पलंग के चारों पाए सिर्फ पांच रुपये प्रति पाए के हिसाब से काट दिये।

मनोचिकित्सा इस वक्त सर्वाधिक मंहगा व्यवसाय है, और किसी उपयोग का भी नहीं। पुराने जमाने में धर्मगुरु जो भूमिका निभा रहे थे, वही चालाकीपूर्ण नाटक आज मनोचिकित्सक कर रहे हैं।

वास्तव में 'मन' स्वयं ही एक रोग है, उसका इलाज संभव नहीं। हां, मन के पार जाया जा सकता है; उसका नाम ध्यान है। ध्यान यानी आत्म–विज्ञान, चेतना का विज्ञान। मन यानी मूर्च्छा और ध्यान यानी जागरूकता। कितनी ही कोशिश करो, मन की समस्याओं को सुलझाया नहीं जा सकता। लेकिन उसका अतिक्रमण किया जा सकता है, साक्षी बना जा सकता है। और तब सारी समस्याओं का समाधान मिल जाता है समाधि में।

आंतरिक मौन

मेरी पत्नी दिन-रात कान में मोबाइल फोन चिपकाए सहेलियों से बातचीत करती रहती है, उसकी इस बकवासी आदत से मैं तंग आ चुका हूं. बताइए क्या करूं? जिस आदमी ने फोन का आविष्कार किया, अगर मुझे मिल जाए तो मैं उसकी गर्दन दबा दूंगा.

उसकी गर्दन दबाने की जरूरत नहीं पड़ेगी, वे सज्जन १९२२ में आपके और आपकी श्रीमती जी के जन्मने के पहले ही दुनिया छोड़ गए. शायद इनको पता लग गया होगा कि आपके मन में ऐसी दुर्भावनाएं जन्मेंगी! यद्यपि उन्हें यह नहीं पता था कि फोन का कोई व्यावहारिक उपयोग संभव है. उन्होंने तो खेल-खेल में बनाया था.

अलेक्जेंडर ग्राहम बेल बचपन से ही कुशाग्र थे और छोटी उम्र में ही सरल यंत्रों को अपने-आप बनाने लगे थे. अपने युग के अन्य बहुत सारे वैज्ञानिकों के विपरीत उन्हें बहुत अच्छी शिक्षा और आर्थिक पृष्ठभूमि मिली हुई थी. उन्होंने मूक-बधिरों के लिए बहुत काम किया और विमानों के विकास में भी काफी योगदान दिया. बोस्टन विश्वविद्यालय में बेल बधिर लोगों को पढ़ाने का काम करते थे. सुप्रसिद्ध हेलन केलर और उनकी भावी पत्नी मेबेल हब्बार्ड भी उनकी छात्राएं थीं. मेबेल के साथ उनका ४५ साल लम्बा सुखी वैवाहिक जीवन रहा. विकलांगों की सेवा को बेल ने अपना ध्येय बना रखा था. वे पूरी जिन्दगी अपने रोगी भाई के लिए कृत्रिम फेफड़ा बनाने का प्रयास करते रहे, यद्यपि इसमें सफलता न मिल सकी.

बेल ने १८७६ में टेलीफोन का आविष्कार किया था. उनसे पहले भी इस यंत्र की खोज करने के कई असफल प्रयास अन्य वैज्ञानिक कर चुके थे लेकिन सफलता बेल को मिली. इतनी महान खोज करने के बाद भी सालों तक बेल अपनी खोज का महत्त्व नहीं समझ पाए. उनके अनुसार टेलीफोन आम आदमी के उपयोग की वस्तु कभी नहीं बन सकता था. नेशनल जिओग्राफिक सोसायटी के संस्थापक और अपने भावी ससुर गार्डिनर ग्रीन हब्बार्ड को जब बेल ने अपना टेलीफोन यंत्र दिखाया तो हब्बार्ड ने उनसे अन्य कोई उपयोगी वस्तु बनाने के लिए कहा क्योंकि हब्बार्ड के अनुसार 'ऐसे खिलौने में लोग भला क्यों रुचि लेंगे?'

'वॉट्सन, यहां आओ, मुझे तुम्हारी जरुरत है'- ये शब्द विश्व में किसी ने पहली बार टेलीफोन पर कहे थे. उस दिन १० मार्च १८७६ को बेल अपने कमरे में और उनका सहायक वॉट्सन बिल्डिंग के ऊपरी तल पर अपने कमरे में यंत्रों पर काम कर रहे थे. बहुत दिनों से लगातार यंत्रों को जोड़ने पर भी उन्हें ध्वनि के संचारण में सहायता नहीं मिल रही थी.

उस दिन पता नहीं तारों का कैसा संयोग बन गया. वे दोनों इससे अनभिज्ञ थे. काम

करते-करते बेल की पैंट पर अम्ल गिर गया और उन्होंने वॉट्सन को मदद के लिए पुकारा. वॉट्सन ने उनकी आवाज को अपने पास रखे यंत्र से आते हुए सुना और... बाकी इतिहास तो आप जानते ही होंगे.

१६१५ में अंतरमहाद्वीपीय टेलीफोन लाइन बिछ गई और उसके उद्घाटन के लिए बेल को बुलाया गया. बेल पूर्वी तट पर थे और उन्हें कहा गया कि वे कुछ कहकर लाइन का औपचारिक उद्घाटन करें. दूसरे छोर पर वॉट्सन थे. जानते हैं बेल ने फोन पर क्या कहा!? 'वॉट्सन, यहां आओ, मुझे तुम्हारी जरुरत है'. वॉट्सन का जवाब था- 'सर, मैं आपसे ३००० किलोमीटर दूर हूँ और मुझे वहां आने में कई दिन लग जायेंगे!'

और 'हैलो' शब्द किसने गढ़ा? थॉमस एडिसन ने. बेल चाहते थे कि फोन उठाने या सुनने वाला व्यक्ति 'अहोय' कहे लेकिन थॉमस एडिसन का 'हैलो' लोगों की जुबां पर चढ़ गया. १६१६ में ७२ साल की उम्र में बेल ने पानी पर चलने वाला एक यान हाइड्रोफोइल बनाया जिसने उस समय पानी पर रफ्तार का विश्व रिकॉर्ड बनाया. ४ अगस्त १६२२ को जब बेल की मृत्यु हुई तो उत्तरी अमेरिका के लाखों फोन बेल के सम्मान में एक मिनट के लिए बंद कर दिए गए.

वे तो बेचारे अंधों-बहरों के बीच में अधिक जिये, तो उन्हें अनुमान नहीं था कि आपकी आंख-कान वाली पत्नी दिन-रात फोन से चिपकी रहेगी. आप बेल से या पत्नी से नाराज मत होइए. वह देवी तो केवल नारी जाति की प्रतिनिधि हैं. सारी दुनिया की महिलाओं की रिप्रजेन्टेटिव हैं. मैंने सुना है कि दो स्त्रियों को बीस साल की सजा मिली थी. एक ही कोठरी में दोनों बंद रहीं. जब उन्हें जेल से रिहा किया गया तो अपने-अपने घर जाते हुए उन्होंने एक-दूसरे से कहा- 'अच्छा बहन, अब शेष बातें घर जाकर फोन से कर लेंगे.'

आपने पूछा है कि 'बताइए क्या करूं?' अपनी पत्नी से निवेदन करो कि वे ध्यान सीखें. ध्यान अर्थात् निर्विचार जागरूकता. आंतरिक मौन उसका परिणाम है. जब मन शांत हो जाता है तो बकवास-वृत्ति भी समाप्त हो जाती है. इस रोग का अन्य कोई इलाज नहीं है. जब भीतर चुप्पी में आनंद आने लगता है तब बोलने की आदत से छुटकारा मिलता है. बेहतर को पाने का प्रयास करो, बदतर खुद छूट जाता है. विराट आनंद को खोजो, क्षुद्र सुख स्वयंमेव छूट जाएंगे. मैं नहीं कहूंगा अभी बाहरी मौन साधने को. भीतर ही भीतर दमित बकवास चलेगी तो दिमाग खराब हो जाएगा. क्या आप जानते हैं कि पुरुषों की तुलना में महिलाएं कम पागल होती हैं. बेल को धन्यवाद दो. जब फोन नहीं था, सहेलियों से चर्चा नहीं हो पाती थी, उस जमाने में महिलाएं यह सारी बातचीत अपने पति परमेश्वर से करती थीं.

27

मिथ्या धर्म से मुक्ति

एक ८० वर्षीय वृद्ध डॉक्टर के पास चेकअप कराने के लिये गये। डॉक्टर ने उनकी पूरी जांच की और कहा- शारीरिक दृष्टि से सब ठीक-ठाक है! लेकिन आपकी मानसिक हालत कैसी है यह देखना पड़ेगा। भजन-पूजन में ध्यान लगाते हो? भगवान के साथ आपका संबंध कैसा है, बताइये?

वृद्ध सज्जन बोले- भगवान? करुणानिधि भगवान तो सदा मेरे साथ ही रहते हैं! उनकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा है। यहां तक कि हर रात को जब मैं पेशाब करने के लिये जाता हूं तो वे बाथरूम की लाइट जला देते हैं और जैसे ही मैं वापस आता हूं बन्द कर देते हैं। सचमुच भगवान मेरे ऊपर बड़े दयालु हैं।

यह सुनकर डॉक्टर को चक्कर आ गया। उसने वृद्ध की पत्नी को बुलाया और उसे सब कुछ बताया जो कुछ वृद्ध सज्जन ने कहा और पूछा- ये क्या मामला है?

पत्नी ने सिर पकड़कर कहा- अब क्या बताऊं डॉक्टर साहब! बुढ़ऊ रोज रात को रेफ्रिजरेटर का दरवाजा खोलकर उसमें पेशाब कर देते हैं।

धर्म और ईश्वर में भरोसा करने वालों की बातें सुनकर समझदार आदमी को धर्म से चिढ़ उत्पन्न होने लगती है। दुनिया में बढ़ रही नास्तिकता की वजह अधर्म नहीं है। तथाकथित धार्मिक लोग ही इसके लिए उत्तरदायी हैं। आस्तिकों की बचकानी दलीलें और कट्टरपंथी हरकतें इसके लिए जिम्मेदार हैं। भगवान के नाम पर इतना खून-खराबा हुआ है कि अब तक भगवान पर बहुत धब्बे लग चुके हैं। स्वर्ग-नरक के नाम पर प्रलोभन एवं भय द्वारा मानवता का खूब शोषण हुआ है। इस प्रकार के धर्म विदा हो जाने चाहिए।

किंतु वास्तविक धर्म कुछ अलग ही बात है, वह तो विवेक एवं प्रेम से जीवन जीने की कला का नाम है। ध्यान उसकी विधि है तथा शांति व आनंद उसका परिणाम है।

मिथ्या धर्म से मुक्त हों, ताकि सच्चे धर्म की ओर अग्रसर हो सकें।

28

कृष्ण का जागरण

गुस्से पर विजय प्राप्त करने की बहुत कोशिश करता हूं, लेकिन हार–हार जाता हूं। क्या करूं?

गुस्से पर विजय प्राप्त करने की कोशिश भी गुस्से से भरी होती है। वास्तव में आप क्रोध पर क्रोधित हैं। ऐसा करने से गुस्सा खत्म नहीं होता, वरन् और बढ़ जाता है, मामला जटिल हो जाता है। 'क्रोध पर क्रोध' सामान्य बात नहीं है। अकेले क्रोध में एक सरलता, सहजता थी। अब बीमारी दोगुनी हो गई। पराजय सुनिश्चित है।

प्रीतिकर कथा है कि एक बार कृष्ण, बलराम और सात्यकि एक घने जंगल में पहुंचे। वहां रात हो गई इसलिए तीनों ने जंगल में ही रात बिताने का निर्णय लिया। जंगल बहुत घना और खतरनाक था। उसमें अनेक हिंसक जानवर रहते थे। इसलिए तय किया गया कि सब मिल कर बारी–बारी से पहरा देंगे। सबसे पहले सात्यकि की बारी आई, वे दिन भर के थके–मांदे थे अतः नींद के झोंके उन्हें आने लगे। फिर भी किसी प्रकार रात के पहले पहर में वे जागकर निगरानी करते रहे। कृष्ण और बलराम सोने चले गए। उसी समय एक भयानक राक्षस आया ओर सात्यकि पर आक्रमण कर दिया। सात्यकि बहुत बलवान थे। राक्षस के आक्रमण से उन्हें बड़ा गुस्सा आया। क्रोध में आ कर उन्होंने भी पूरे बल के साथ उस राक्षस पर आक्रमण कर दिया। मगर सात्यकि को जितना अधिक क्रोध आता, उस राक्षस का आकार उतना ही बड़ा हो जाता। कुछ देर के बाद राक्षस अदृश्य हो गया।

दूसरे पहर में अधनींदे बलराम उठकर पहरा देने उठे। कृष्ण सोते रहे और जब सात्यकि भी सो गए तो बलराम के साथ भी वैसा ही हुआ, जैसा सात्यकि के साथ हुआ था।

तीसरे पहर में कृष्ण के पहरा देने की बारी आई। तब तक उनकी नींद पूरी हो चुकी थी, थकान भी निकल चुकी थी। राक्षस फिर आया। कृष्ण हंसते–हंसते उसका मुकाबला करने लगे। उन्हें उस पर गुस्सा नहीं आया। राक्षस जितनी बार आक्रमण करता, कृष्ण उतनी बार मुस्कराते और उसके हमले का जवाब देते। फिर आश्चर्यजनक बात हुई। कृष्ण जितना मुस्कराते, राक्षस का आकार उतना ही छोटा हो जाता। धीरे–धीरे वह छोटा होकर मच्छर के बराबर हो गया। कृष्ण ने उसे पकड़ कर अपने दुपट्टे में बांध लिया।

सुबह हुई तो बलराम और सात्यकि को घायल देख कर कृष्ण ने पूछा, यह सब कैसे हुआ। तुम दोनों तो बहुत शक्तिशाली हो, तुम्हें किसने घायल कर दिया? दोनों ने रात की घटना बताई। कृष्ण ने दुपट्टे को खोल कर वह मच्छर दिखाते हुए कहा, यह रहा तुम्हारा राक्षस। बंधुओ, सत्य यह है कि क्रोध ही राक्षस है। जितना क्रोध करोगे, राक्षस उतना ही शक्तिशाली हाता जाएगा और तुम्हें नुकसान पहुँचाएगा। असल में गुस्सा, अपने आप में राक्षस नहीं है। असली राक्षस– मूर्च्छा है, प्रमाद है, सोए–सोए से होने की वृत्ति है। आप पूछ रहे हो– 'बहुत कोशिश करता हूं, लेकिन हार–हार जाता हूं। क्या करूं?' अब समझपूर्वक स्वयं के इस अनुभव से सीख लो। जागो। अधिक होशपूर्वक होने पर राक्षस पाया ही नहीं जाता। सात्यकि दिन भर के थके–मांदे थे, उन्हें नींद के झोंके आ रहे थे। बलराम अधनींदे थे। कृष्ण की नींद पूरी हो चुकी थी। वे जागे हुए थे। सात्यकि की शक्ति, और बलराम का बल काम नहीं आया। कृष्ण का जागरण काम आया।

विनम्र शिष्यत्व

राम के बाणों से घायल लंकापति रावण मौत के कगार पर था। उसके सगे-संबंधी उसके पास खड़े थे। तब राम ने लक्ष्मण से कहा, 'यह ठीक है कि रावण ने अधर्म का काम किया था, जिसकी सजा उसे मिली। लेकिन वह शास्त्रों और राजनीति का महान ज्ञाता है। तुम उसके पास जाकर उससे राजनीति के गुर सीख लो।'

लक्ष्मण बोले, 'भइया, क्या आप यह सोचते हैं कि इस समय, जब वह घायल होकर मृत्यु शैया पर पड़ा कराह रहा है, मुझे राजनीति का उपदेश देगा।' श्रीराम ने कहा, 'हां लक्ष्मण, रावण जैसा सत्यवादी कोई नहीं। अहंकार ने ही उसको आज इस दशा में पहुंचाया है। अब उसका अहंकार दूर हो गया। अब वह तुम्हें अपना शत्रु नहीं मित्र समझेगा।'

लक्ष्मण राम की आज्ञा का पालन करते हुए रावण के पास गए और उसके सिरहाने के पास खड़े होकर बोले, 'लंकाधिपति, मैं श्रीराम का छोटा भाई लक्ष्मण राजनीति का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आपके पास आया हूँ।'

रावण ने लक्ष्मण को एक क्षण देखा, फिर आँखें बंद कर लीं। कुछ देर खड़े रहने के बाद लक्ष्मण लौट आए और राम से कह, 'मैंने कहा था कि इस समय रावण कुछ नहीं बताएगा। उसने मुझे देखते ही आंखें बंद कर लीं।'

राम ने मुस्कुराते हुए पूछा, 'तुम यह बताओ कि तुम उसके पास किस ओर खड़े थे?' लक्ष्मण ने कहा, 'मैं उसके सिरहाने की ओर खड़ा था।' राम ने कहा, 'रावण लंकाधिपति है। फिर जिससे ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उसके चरणों की तरफ खड़े होकर प्रणाम करके अपनी बात कहनी चाहिए।'

लक्ष्मण फिर गए और उन्होंने रावण के चरणों का स्पर्श करके प्रणाम किया, फिर उपदेश की याचना की। इस बार रावण ने मुस्कुराते हुए लक्ष्मण को आशीर्वाद दिया और कहा, 'धर्म का कार्य करने में एक क्षण की भी देरी नहीं करनी चाहिए और अधर्म का कार्य करने से पहले सौ बार सोचना चाहिए।'

लक्ष्मण ने आज तक जो ज्ञान राम से भी नहीं सीखा था, उसे विनम्र होकर शत्रु से सीख लिया।

शिष्यत्व की घटना विरली है। अहंकार झुकने नहीं देता। 'मैं जानता हूं' का भाव सीखने नहीं देता। जो अज्ञानी होने को राजी है, उसने ज्ञान की ओर पहला कदम उठा लिया। जो अपने अज्ञान को जानता है, उसके जानने की शुरुआत हो गई। उपनिषद के ऋषि कहते हैं- 'अज्ञानी तो अंधकार में भटकते ही हैं, ज्ञानी महा-अंधकार में भटक जाते हैं।' अज्ञान-बोध प्रकाश की ओर गति करने का प्रस्थान-बिंदु है।

तीन छन्नियों का परीक्षण

मेरा पहला सवाल है कि मैं अति विचार की वजह से मन की चंचलता से पीड़ित हूं। बकवासी होने के कारण लोग मुझे पसंद नहीं करते। क्या करूं? दूसरा प्रश्न है कि मैंने सुना है कि आप अखबार नहीं पढ़ते, टी.वी. न्यूज भी नहीं देखते। ऐसा क्यों? मेरे मन में अनेक जिज्ञासाएं हैं, अभी केवल दो ही पूछी हैं।

आपने ठीक सुना है। मगर जो सवाल आपने मुझसे पूछा है कि ऐसा क्यों? वह सवाल तो मुझे आपसे पूछना चाहिए कि आप अखबार क्यों पढ़ते, और टी.वी. न्यूज क्यों देखते हैं? इतने सालों से देख रहे हैं, उसका ज्ञान का जिंदगी में कोई सदुपयोग हुआ? कितना वक्त आपने बरबाद किया, जरा हिसाब लगाइए। मैं करीब साढ़े पांच वर्ष मेडिकल कालेज की पढ़ाई के दौरान होस्टल में रहा। बहुत कम लोगों ने मेरी आवाज सुनी होगी! कोई मेरा मित्र नहीं बना, शत्रु भी नहीं बना। कुछ भी बनाने के लिए भाषा अनिवार्य है। अब वे मेरे प्रवचन सुनकर चकित होते होंगे कि क्या हो गया?

मेरी जनरल नालेज बिल्कुल नगण्य है। दुनिया के बारे में जानने की कोई उत्सुकता नहीं है। इस मामले में मैं अत्यंत आलसी हूं। जो अत्यंत जरूरी है, जिसके बिना काम न चलेगा, बस उतनी ही जानकारी रखता हूं। और, मैं बड़े मजे में हूं। सुनो यह घटना–

प्राचीन यूनान में सुकरात अपने ज्ञान और विद्वता के लिए बहुत प्रसिद्ध था। सुकरात के पास एक दिन उसका एक परिचित व्यक्ति आया और बोला, 'मैंने आपके एक मित्र के बारे में कुछ सुना है।'

'दो पल रुको', सुकरात ने कहा, 'मुझे कुछ बताने से पहले मैं चाहता हूँ कि हम एक छोटा सा परीक्षण कर लें जिसे मैं 'तीन छन्नियों का परीक्षण' कहता हूँ'।

'तीन छन्नियाँ? कैसी छन्नियाँ?', परिचित ने पूछा।

'हाँ', सुकरात ने कहा, 'मुझे मेरे मित्र के बारे में कुछ बताने से पहले हमें यह तय कर लेना चाहिए कि तुम कैसी बात कहने जा रहे हो। किसी भी बात को जानने से पहले मैं यह तीन छन्नियों का परीक्षण करता हूँ। इसमें पहली छन्नी सत्य की छन्नी है। क्या तुम सौ फीसदी दावे से यह कह सकते हो कि जो बात तुम मुझे बताने जा रहे हो वह पूर्णतः सत्य है?

'नहीं', परिचित ने कहा, 'दरअसल मैंने सुना है कि...'

'ठीक है', सुकरात ने कहा, 'इसका अर्थ यह है कि तुम आश्वस्त नहीं हो कि वह बात पूर्णतः सत्य है। चलो, अब दूसरी छन्नी का प्रयोग करते हैं जिसे मैं अच्छाई की छन्नी कहता हूँ। मेरे मित्र के बारे में तुम जो भी बताने जा रहे हो क्या उसमें कोई अच्छी बात है?

'नहीं, बल्कि वह तो...', परिचित ने कहा।

'अच्छा', सुकरात ने कहा, 'इसका मतलब यह है कि तुम मुझे जो कुछ सुनाने वाले थे उसमें कोई भलाई की बात नहीं है और तुम यह भी नहीं जानते कि वह सच है या झूठ। लेकिन

हमें अभी भी आस नहीं खोनी चाहिए क्योंकि छन्नी का एक परीक्षण अभी बचा हुआ है। और वह है उपयोगिता की छन्नी। जो बात तुम मुझे बतानेवाले थे, क्या वह मेरे किसी काम की है?'

'नहीं, ऐसा तो नहीं है', परिचित ने कहा। 'बस, हो गया', सुकरात ने कहा, 'जो बात तुम मुझे बतानेवाले थे वह न तो सत्य है, न ही भली है, और न ही मेरे काम की है, तो मैं उसे जानने में अपना कीमती समय क्यों नष्ट करूं?'

तुमने पूछा है कि अति विचार की वजह से मन की चंचलता से पीड़ित हो। विचारों की भीड़ को खुद निमंत्रण देते हो, फिर चित्त चंचल तो होगा ही। विचारों का असम्यक् आहार करोगे, तो फिर उल्टी होगी। उसी का नाम बकवास-वृत्ति है। षटरिपु के बाद सातवीं रिपु! आहार का अर्थ केवल भोजन ही नहीं होता। जो भी हम बाहर से भीतर ले जाते हैं, वह आहार है। कचरा-कूड़ा खाओगे तो वमन होगा। पूछते हो कि लोग मुझे पसंद क्यों नहीं करते? तुम्हारा दुर्गंधयुक्त वमन कौन पसंद करेगा! बेचारे लोग दूर भागते होंगे। राह में आते दिख जाओ तो लोग रास्ता बदल लेते होंगे। अपने चंचल विचारों से खुद परेशान हो, और तुम सोचते हो कि दूसरे लोग तल्लीनता से तुम्हें सुनें। बीमारी के कीटाणु फैला रहे हो, लोग अपना बचाव करेंगे ही! आंतरिक बकवास का नाम विचार है। प्रगट विचारों का नाम बकवास है। चंचलता से मुक्त होना है तो मौन साधो। बाहर भी, और भीतर भी।

एक यहूदी लोक कथा है कि एक बहुत ज्ञानी युवक रब्बाई के पास यह पूछने के लिए गया कि उसे अपने जीवन में क्या करना चाहिए। रब्बाई उसे कमरे की खिड़की तक ले गए और उससे पूछाः 'तुम्हें कांच के परे क्या दिख रहा है?'

'सड़क पर लोग आ-जा रहे हैं और एक बेचारा अँधा व्यक्ति भीख मांग रहा है'।

इसके बाद रब्बाई ने उसे एक बड़ा दर्पण दिखाया और पूछाः 'अब इस दर्पण में देखकर बताओ कि तुम क्या देखते हो'।

'इसमें मैं खुद को देख रहा हूँ'।

'ठीक है। दर्पण में तुम दूसरों को नहीं देख सकते। तुम जानते हो कि खिड़की में लगा कांच और यह दर्पण एक ही मूल पदार्थ से बने हैं।'

'तुम स्वयं की तुलना कांच के इन दोनों रूपों से करके देखो। जब यह साफ-सुथरा है तो तुम्हें सभी दिखते हैं और उन्हें देखकर तुम्हारे भीतर करुणा जागती है। और जब इस कांच पर विचार रूपी चांदी का लेप हो जाता है तो तुम केवल अहंकार की छबि देख पाते हो। अपनी ही मानसिक कारा में बंद होकर अस्तित्व से टूट जाते हो।'

'तुम्हारा जीवन भी तभी महत्वपूर्ण बनेगा जब तुम अपने मन से विचारों की भीड़ की परत को उतार दो। ऐसा करने के बाद ही तुम सत्य को देख पाओगे। शांत हो पाओगे। प्रेमपूर्ण हो पाओगे।'

मेरी बातों को भी मन में संग्रह करके भीड़ को बढ़ा मत लेना। मैंने जो भी कहा है, वह निर्विचार जागरण की दिशा में जाने के लिए है। ज्ञान की पकड़ छोड़ो, ध्यान में डूबो। चंचलता को सहारा न दो। तुम कहते हो कि मन में अनेक जिज्ञासाएं हैं, अभी केवल दो ही पूछी हैं। तुमने बड़ी कृपा की मुझ पर। धन्यवाद।

चूक मत जाना

सभी संतों ने सदगुरु की इतनी महिमा क्यों गाई है?

सदगुरु रोज-रोज नहीं होते! जिन्होंने स्वंय सत्य जाना और जो दूसरों को जना भी सकें ऐसे बुद्धों को होना विरल घटना है। इसलिए बारंबार सचेत किया जाता है कि चूक मत जाना। एक बार अवसर निकल गया तो पता नहीं फिर कब आएगा, आएगा भी कि नहीं आएगा!

दुनिया में और सब कुछ तो सदा ही उपलब्ध है, आज नहीं तो कल, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में मिल जाएगा। यद्यपि मिल-मिलकर भी सब खो जाएगा। किंतु भीतर, जो सदा ही उपलब्ध है, उस परमात्मा के प्रति जाग्रत कराने वाले यदा-कदा मिलेंगे। बाहर, जो सदा उपलब्ध नहीं है, उन सांसारिक वस्तुओं को प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा भड़काने वाले सात अरब लोगों की भीड़ चारों तरफ मौजूद है। माता-पिता, परिवारजन, रिश्तेदार, शिक्षक, समाज, राजनेता, धर्मगुरु, सभी वासनाओं की आग में घी डालने के महान कार्य में संलग्न हैं। निष्कामना, शांति, प्रेम और समाधि की दिशा में मार्गदर्शन देने वाला, अंतर्यात्रा की ओर संकेत करने वाला कभी-कभार होता है।

मध्य-पूर्व की लोक कथा है कि एक बहुत बड़े मुल्क का सुलतान कहीं दूर की यात्रा पर एक जंगली गाँव से गुजरा। रास्ते में वह एक बहुत मामूली चायघर में नाश्ता करने के लिए रुक गया। उसने खाने में आमलेट की फरमाइश की। चायघर के मालिक ने बहुत सलीके से उसे चायघर के मामूली बर्तनों में आमलेट परोसा। मालिक ने टूटे-फूटे टेबल कुर्सी और मैले बिछावन के लिए सुलतान से माफी मांगी और कहा- 'मुझे बेहद अफसोस है हुजूर-ए-आला कि यह मामूली चायघर आपकी इससे बेहतर खातिरदारी नहीं कर सकता'।

'कोई बात नहीं'- सुलतान ने उसे दिलासा दिया और पूछा- 'आमलेट के कितने पैसे हुए?'

'आपकी खातिर हुजूर, इसकी कीमत है सिर्फ सोने की हजार अशर्फियाँ'- चायघर के मालिक ने कहा।

'क्या?'- सुलतान ने हैरत से कहा- 'क्या इस ग्रामीण इलाके में अंडे इतने मंहगे मिलते हैं? या फिर यहाँ की जंगली मुर्गियां बहुत कम अंडे देती हैं क्या?'

'नहीं हुजूर-ए-आला, मुर्गियां रोज अंडे देती हैं। अंडे तो यहाँ खूब मिलते हैं' -चायघर के मालिक ने कहा- 'लेकिन आप जैसे सुलतान कभी नहीं मिलते। मिल गए हैं आज किस्मत से, तो मेरी किस्मत ही पलट दीजिए जहां-पनाह!'

आपका प्रश्न है कि सभी संतों ने सदगुरु की इतनी महिमा क्यों गाई है? क्योंकि सदगुरु गांव-गांव, गली-गली नहीं बैठे हैं! एक बार मौका चूक गए तो पता नहीं फिर कब सौभाग्य आएगा! संत पलटू साहब कहते हैं-'अजहूं चेत गंवार!' अपने भाग्य को पलटने की संभावना है। इसे वास्तविकता में रूपांतरित कर लो। पलटू जैसे पलट जाओ। प्रतिक्रमण, प्रत्याहार से गुजर जाओ। बहिर्मुखी से अंतर्मुखी हो जाओ।

आंतरिक अनुभूति की बाहरी अभिव्यक्ति

धर्म का मर्म क्या है? संक्षेप में बताने की अनुकंपा करें।

पहले एक घटना सुनो। यह उस समय की बात है जब स्वामी विवेकानंद १८९८ में पेरिस में थे। उन्हें वहां एक इटालियन डचेस ने कुछ समय के लिए निमंत्रित किया था। एक दिन डचेस स्वामीजी को शहर से बाहर घुमाने के लिए ले गयी। उन दिनों मोटर-गाड़ियां तो चलती नहीं थीं, उन्होंने एक घोड़ागाड़ी किराये पर ली हुई थी।

यहाँ यह बता देना जरूरी है की स्वामीजी चुटकियों में विदेशी भाषा सीख जाते थे। कुछ समय पेरिस में रहने पर वे कामचलाऊ फ्रेंच बोलना सीख गए। डचेस ने स्वामीजी को अंग्रेजी में बताया- 'यह घोड़ागाड़ी वाला बहुत अच्छी फ्रेंच बोलता है।' वे लोग जब बातचीत कर रहे थे तब सड़क पर एक बूढी नौकरानी एक लड़के-लड़की का हाथ पकड़ कर उन्हें सैर करा रही थी। गाड़ी वाले ने वहाँ गाड़ी रोकी, वह गाड़ी से उतरा और उसने बच्चों को प्यार किया। बच्चों से कुछ बात करने के बाद वह फिर से गाड़ी चलाने लगा।

डचेस को यह सब देखकर अजीब लगा। उन दिनों अमीर-गरीब के बीच कठोर वर्ग विभाजन था। वे बच्चे 'अभिजात्य' लग रहे थे और गाड़ी वाले का इस तरह उन्हें प्यार करना डचेस की आंखों में खटका। उसने गाड़ीवाले से पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया?

गाड़ीवाले ने डचेस से कहा- 'वे मेरे बच्चे हैं। क्या आपने पेरिस में 'अमुक' बैंक का नाम सुना है?' डचेस ने कहा- 'हां, यह तो बहुत बड़ा बैंक था लेकिन मंदी में घाटा होने के कारण वह बंद हो गया।'

गाड़ीवाले ने कहा- 'मैं उस बैंक का मैनेजर था। मैंने उसे बरबाद होते हुए देखा। मैंने इतना घाटा उठाया है कि उसे चुकाने में सालों लग जायेंगे। मैं गले तक कर्ज में डूबा हुआ हूँ। अपनी पत्नी और बच्चों को मैंने इस गाँव में किराये के मकान में रखा है। गाँव की यह औरत उनकी देखभाल करती है। कुछ रकम जुटाकर मैंने यह घोड़ागाड़ी ले ली और अब इसे चलाकर अपने परिवार का भरण-पोषण करता हूँ। कर्ज चुका देने के बाद मैं फिर से एक बैंक खोलूँगा और उसे विकसित करूँगा।'

उस व्यक्ति का आत्मविश्वास देखकर स्वामीजी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने डचेस से कहा- 'यह व्यक्ति वास्तव में धार्मिक होने की दिशा में अग्रसर हो रहा है। इसने धर्म का मर्म समझ लिया है। इतनी ऊंची सामाजिक स्थिति से नीचे गिरने के बाद भी अपने पर उसकी आस्था डिगी नहीं है। यह अपने प्रयोजनों में अवश्य सफल होगा। ऐसे लोग धन्य हैं।'

संक्षेप में धर्म के मर्म के दो पहलू समझो। एक है सत्य की आंतरिक अनुभूति- अपने चैतन्य की, आनंद की। दूसरी है बाहरी अभिव्यक्ति- कर्म में, वाणी में- प्रीति की, शांति की। उपनिषद के सूत्र 'सत्-चित्-आनंद' में एक शब्द और जोड़ दो। 'सत्-चित्-प्रेम-आनंद', बस इतना ही है धर्म का मर्म। बाहर जिसने सकारात्मक दृष्टिकोण से, उमंग में जीने की कला सीख ली, उसने भीतरी आनंद में डूबने की संभावना निर्मित कर ली। निगेटिव नजरिये में जीने वाले के लिए वह संभावना नहीं खुलती।

33

सच्चा त्याग

सजग होकर अपने जीवन को देखना एक कला है। इस प्रतिक्रिया में अपने आप समाधि लग जाती है। एक ऐसी समाधि जिसमें आदमी को स्वयं का बोध हो जाता है और संसार की व्यर्थ, फालतू बातें छूट जाती हैं। संसार का जो अनर्गल है वह हमें बहुत भारी बना देता है। जब हम दूर खड़े होकर तटस्थ भाव से अपने ही जीवन को देखने लगते हैं तो सब कुछ बहुत हल्का हो जाता है।

सुकरात के जीवन की एक कथा है। जब उनका अंतिम समय आया, शिष्य रोने लगे। तब सुकरात ने कहा, 'रोना बंद करें। मेरा शरीर शिथिल हो रहा है। लेकिन मैं लगातार प्रयास कर रहा हूं कि मैं अपनी इस मृत्यु को होशपूर्वक देखूं। अब सब कुछ छूट रहा है। जितना 'पर' छूटेगा उतना ही 'स्व' बच जाएगा। जगत का बोध समाप्त होगा और स्वयं का बोध जागने लगेगा। सुकरात ने कहा कि मैं आज मृत्यु को प्राप्त नहीं हो रहा, सिर्फ यह देख रहा हूँ कि मरना होता क्या है? यह मौका मुझे आज मिला है, इसलिए आप लोग रोते हुए मेरी समाधि में व्यवधान पैदा न करें।' और सचमुच वे बचते चले गए, मौत होती चली गई। वे संदेश दे गए कि मृत्यु प्रतिदिन निकट आ रही है और जिंदगी प्रतिदिन घट रही है। इसलिए मृत्यु का भय न करें, उसके स्वागत की तैयारी करें।

सूखा नारियल अपनी खोल के भीतर पक जाता है। खोलने पर वह पूरा बाहर आता है। किंतु जो गीला नारियल होता है उसक फोड़ने पर वह अपनी खोल से चिपका रहता है। कई बार तो उसको निकालने के लिए उसके टुकड़े हो जाते हैं। ऐसा ही शरीर और आत्मा के साथ हैं। स्वयं शरीर से अलग हो जाने का अर्थ है पका हुआ होना, अपने आत्मभाव में पहुंच जाना और शरीर से चिपकते हुए मृत्यु वरण का अर्थ है गीले खोल की तरह टुकड़े-टुकड़े होकर पिलपिले होना। इसलिए शांति से जीवन में इस बोध को लाना बड़ा उपयोगी होता है।

सजगतापूर्वक जीना, साक्षीभाव में जीना इसका सूत्र है। अपने तन-मन के क्रिया-कलापों को ऐसे देखें जैसे किसी और का निरीक्षण कर रहे हैं। धीरे-धीरे इस 'साइको-सोमेटिक कॉम्प्लैक्स' से दूरी निर्मित हो जाती है। कर्म, विचार, भाव; तीनों दृश्य बन जाते हैं, और स्वयं का होना द्रष्टा-स्वरूप हो जाता है। जीते-जी जो साधक इस प्रकार देह और मन से तादात्म्य तोड़ लेता है, वह मृत्यु के क्षण में अविचलित विदा होता है। मौत जो छीन सकती है, उसने वह पहले ही छोड़ दिया। यही सच्चा त्याग है।

34 रूपांतरणकारी ज्ञान

सभी जानते हैं कि गलत नहीं करना चाहिए, फिर भी दुनिया में इतनी बुराईयां क्यों हैं?

जानने और जानने में भेद होता है। एक जानना है- केवल बौद्धिक ज्ञान, एक जानकारी मात्र। दूसरा जानना होता है- स्वयं के जीवन से प्राप्त अनुभवगत ज्ञान। आग जलाती है, ऐसे अनुभव से जो गुजर गया, वह दोबारा आग में हाथ नहीं डालता। फिर क्या कारण है कि क्रोध और ईर्ष्या की लपटों में सैकड़ों बार जल-जलकर भी आदमी पुनः वही भूल करता है? कारण है कि वह ठीक से अनुभव ही नहीं कर पाता। जब किसी दुर्भावना की चपेट में वह आता है, तब इतना मूर्च्छित हो जाता है कि जानने की प्रक्रिया घटित ही नहीं होती। एक प्रकार के नशे में, बेहोशी की स्थिति में वह होता है। मैंने सुना है कि पो चीन के तांग राजवंश में उच्चाधिकारी और कवि था। एक दिन उसने एक पेड़ की शाखा पर बैठे बौद्ध भिक्षु को धर्मोपदेश देते हुए देखा। उनके मध्य यह वार्तालाप हुआ-

पे- महात्मा जी, आप इस पेड़ की शाखा पर बैठकर प्रवचन क्यों दे रहे हैं? जरा सी भी गड़बड़ होगी और आप नीचे गिरकर घायल हो जायेंगे! भिक्षु- मेरी चिंता करने के लिए आपका धन्यवाद, महामहिम। लेकिन आपकी स्थिति इससे भी अधिक गंभीर है। यदि मैं कोई गलती करूंगा तो मेरी ही मृत्यु होगी, लेकिन शासन के इतने ऊंचे पद पर बैठकर आप कोई गलती कर बैठेंगे तो सैंकड़ों-हजारों मनुष्यों का जीवन खतरे में पड़ जाएगा।

पो- शायद आप ठीक कहते हैं। अब मैं कुछ कहूं? यदि आप मुझे बुद्ध के धर्म का सार एक वाक्य में बता देंगे तो मैं आपका शिष्य बन जाउंगा, अन्यथा, मैं आपसे कभी मिलना नहीं चाहूंगा।

भिक्षु- यह तो बहुत सरल है! सुनिए। बुद्ध के धर्म का सार यह है, 'बुरा न करो, भला करो, और अपने मन को शुद्ध रखो'।

पो- बस इतना ही? यह तो एक तीन साल का बच्चा भी जानता है!

भिक्षु- आपने सही कहा। एक तीन साल के बच्चे को भी इसका ज्ञान होता है, लेकिन अस्सी साल के व्यक्ति के लिए भी इसे कर सकना कठिन है।

ख्याल रखना, जानने और जानने में बड़ा भेद है। मन को शुद्ध करना ही ध्यान है, जागरण की प्रक्रिया है। इसके बिना कोई वास्तविक ज्ञान नहीं घटता। कोई बौद्धिक ज्ञान काम नहीं आता। मन ही शुद्ध होकर चेतना बन जाता है। अशुद्ध चेतना यानि मन। शुद्ध मन यानि चेतना।

धर्म साधना का मुख्य बिंदु है- अधिक से अधिक होशपूर्ण होना, जागरूक होकर जीना। संवेदनशील होकर निरीक्षण करना। क्रमशः मन का शुद्धिकरण होने लगता है, मन निर्मल होने लगता है। तब केवल शुभ ही शेष बचता है, अशुभ विदा हो जाता है। यह जानना, सूचना से नहीं, साधना से निकलता है। ऐसा ज्ञान ही रूपांतरणकारी है।

आश्चर्यों का आश्चर्य

उपनिषद के ऋषियों, बुद्ध पुरुषों और संतों की वाणी में 'अहं ब्रह्मास्मि' एवं 'तत्वमसि' जैसे महान सत्य की घोषणा सुनकर भी हमारा संदेह क्यों नहीं मिटता?

हमारी झूठ की आदत इतनी गहरी हो गई है कि सच अविश्वसनीय हो गया है। केवल दूसरों से सत्य सुनकर ही नहीं, स्वयं जानकर भी भरोसा नहीं आता। हम दुख के ऐसे अभ्यस्त हो गए हैं कि आनंद घट जाए तो शक पैदा होता है! यहां इतने लोग साधना करने आते हैं। अक्सर कोई न कोई पूछता है कि आज ध्यान में बड़ी शांति लगी, कहीं कोई भ्रम तो नहीं हो गया? मैं सम्मोहित तो नहीं हो गया हूं? आज तक किसी ने चिंता, अशांति और क्रोध पर प्रश्न नहीं उठाया कि ये सब वास्तविक तो हैं न!

हम सभी ने ईसप की वह कहानी पढ़ी है जिसमें एक शरारती लड़का 'भेड़िया आया, भेड़िया आया' का शोर मचाकर हमेशा ही गांववालों को डरा देता है। गांव के बाहर जब भेड़ें चरती रहतीं हैं तब वह गांववालों को परेशान करने के लिए शोर मचाता है- 'बचाओ, बचाओ! भेड़िया आया, भेड़िया आया'।

शोर सुनकर गांववाले दौड़े-दौड़े वहां पहुंचते हैं पर उन्हें कोई भेड़िया नहीं मिलता। शरारती लड़का उनको परेशान देखकर हंसता है। ऐसा कई बार होता है। बेचारे गांववाले अपनी भेड़ें बचाने के लिए भागते हैं लेकिन हरबार बेवकूफ बन जाते हैं।

एक दिन ऐसा होता है कि वाकई एक भेड़िया वहां आकर भेड़ों के झुंड पर हमला बोल देता है। लड़का अत्यंत भयभीत होकर गांववालों को मदद के लिए पुकारता है- 'बचाओ, बचाओ भेड़िया आया, भेड़िया आया'। लेकिन गांववाले उसकी गुहार को शरारत मानकर अनसुना कर देते हैं। वे इसे हर बार की तरह उसकी शैतानी समझकर इस पर विश्वास नहीं करते। लड़के की भेड़ें भेड़िये का शिकार बन जाती हैं।

सामान्यतः इस कहानी से नैतिक शिक्षा मिलती है कि झूठ बोलने वाले अपनी विश्वसनीयता खो देते हैं। भरोसा खो देने के बाद वे कभी सच बोलें तो भी लोग उनका यकीन नहीं करते हैं।

ईसप की छोटी-छोटी कहानियां महान सत्यों से हमारा परिचय करातीं हैं। उन्हें केवल नीति, समाज व्यवस्था और न्याय आदि तक सीमित न समझना। लंबे समय तक खुद से असत्य बोलते रहने पर, हम स्वयं दिग्भ्रमित हो जाते हैं। द्रष्टारूपी चेतन ने दृश्यरूपी तन-मन को 'स्व' के रूप में माना, आत्म-प्रवंचना की। अब अचानक परम सत्य सुनकर विश्वास नहीं होता। आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि स्वयं अनुभव हो जाने पर भी संदेह खड़ा होता है!

साधारण में छिपा असाधारण

भक्त प्रहलाद और ध्रुव आदि की कहानी सुनकर, जगत के स्रष्टा को पाने के लिए मैंने भी कठोर श्रम किया, किंतु प्रभु–कृपा नहीं बरसी। भगवान क्यों मुझसे नाराज है?

आप कहानियों से प्रभावित होते हो, तो चलो मैं भी एक कथा सुनाता हूं, जिसमें आपके सवाल का जवाब भी मिल जाएगा।

अनेक सालों से ईश्वर को प्राप्त करने की इच्छा वाला एक तपस्वी साधक, अंततः असफलता से निराश हो गया। किसी के सुझाव से एक सुप्रसिद्ध झेन मठ की शरण में आया। शिष्य के रूप में उसे स्वीकार लिया गया, लेकिन गुरु ने भगवान आदि की कोई चर्चा ही नहीं की। वे तो बस जीवन की साधारण बातों को ही ध्यानपूर्वक करना सिखाते थे, बस! छः माह बीत गए, और वह उदास रहने लगा।

उस मठ के झेन सदगुरु बहुत कुशल धनुर्धर भी थे। एक सुबह उन्होंने अपने एक शिष्य को अपनी धनुर्विद्या देखने के लिए बुलाया। शिष्य यह सब पहले ही दसियों बार देख चुका था पर वह गुरु की आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकता था। वे समीप ही जंगल में एक विशाल वृक्ष के पास गए। सदगुरु के पास एक फूल था जिसे उन्होंने पेड़ की एक शाखा पर रख दिया। फिर उन्होंने अपने बस्ते से अपना नायाब धनुष, तीर और एक कढ़ाई किया हुआ सुंदर रूमाल निकाला। वह फूल से सौ कदम दूर आकर खड़े हो गए और उन्होंने शिष्य से कहा कि वह रूमाल से उनकी आँखें ढंककर भली-भांति बंद कर दे। शिष्य ने ऐसा ही किया

'तुमने मुझे धनुर्विद्या की महान कला का अभ्यास करते कितने बार देखा है?'– झेन सदगुरु ने शिष्य से पूछा।

'मैं तो विगत छः महीनों से यह सब रोज ही देखता हूं।' –शिष्य ने कहा– 'आप तो तीन सौ कदम दूर से ही फूल पर निशाना लगा सकते हैं। आपकी निपुणता बेमिसाल है।'

रूमाल से अपनी आँखें ढंके हुए झेन गुरु ने अपने पैरों को धरती पर जमाया। उन्होंने पूरी शक्ति से धनुष की प्रत्यंचा को खींचा और तीर छोड़ दिया। हवा को चीरता हुआ तीर फूल से बहुत दूर, यहाँ तक कि पेड़ से भी नहीं टकराया और लक्ष्य से बहुत दूर जा गिरा।

'तीर लक्ष्य पर लग गया न?'– अपनी आँखें खोलने के पूर्व गुरु ने पूछा।

'नहीं। वह तो लक्ष्य के पास भी नहीं गया'– शिष्य ने कहा– 'मुझे लगा कि आप इसके

द्वारा अपनी पराशक्ति का प्रदर्शन करनेवाले थे।'

'मैंने तुम्हें जीवन-शक्ति का सबसे महत्वपूर्ण पाठ ही तो पढ़ाया है।' -सदगुरु बोले- 'तुम जिस भी वस्तु की इच्छा करो, अपना पूरा ध्यान उसी पर लगाओ। लेकिन स्मरण रखो, कोई भी उस लक्ष्य को नहीं वेध सकता जो दिखाई ही न देता हो।'

ईश्वर का ध्यान करने वाले शिष्य को बात समझ आ गई कि उसने जिस प्रभु को देखा ही नहीं, उसे भला कैसे पा सकेगा! जिसके होने या न होने के बारे में भी संदेह है, उसे पाने की कोशिश व्यर्थ जाएगी ही! मान लो वह है और मिल भी जाए तो उसे पहचानोगे कैसे? उसके विषय में शास्त्रों और सिद्धांतों में इतने मतभेद हैं कि कुछ भी स्पष्ट नहीं होता। फूल के बारे में तो कम से कम पक्का है कि वह है, उसकी दिशा का अनुमान आंख बंद करने पर भी रहता है।

उस दिन के बाद शिष्य ने भगवान की चिंता छोड़कर, अपने सामान्य जीवन को होशपूर्वक और प्रेमपूर्वक जीने में संलग्न कर दिया। तपस्या का त्याग करके वह सहज स्वाभाविक ढंग से जीने लगा। कुछ ही दिनों के भीतर साधारण जीवन में छिपी असाधारण जीवन-शक्ति के प्रति उसकी संवेदनशीलता बहुत बढ़ गई। वह आनंदमग्न हो गया।

एक संध्या झेन सदगुरु ने उससे कहा- अब तुम्हें मठ में रहने की जरूरत नहीं। अपने गृह-नगर जाओ, और जीने की कला अन्य लोगों को भी सिखाओ।

जगत के स्रष्टा को पाने के लिए पहले धार्मिक लोग कठोर श्रम करते थे। आजकल आधुनिक भौतिक शास्त्री सृष्टि के आरंभ को जानने के लिए उनसे भी ज्यादा श्रम कर रहे हैं। बिग बैंग थ्योरी, और न जाने कितने जटिल सिद्धांत निकल आए। पहले फिलासफर पागल होते थे, आने वाले समय में फिजिसिस्ट विक्षिप्त होंगे। वे पता लगाने में संलग्न है कि खरबों-खरबों साल पहले अस्तित्व की शुरूआत कैसे हुई? वे धार्मिक भाषा का प्रयोग नहीं करते, मगर बेचारे भौतिकविद भी धार्मिकों की तरह ही नए प्रकार के तपस्वी हो गए हैं। उसी झंझट में फंस गए हैं। भारी श्रम में लगे हैं।

आप पूछते हो कि प्रभु-कृपा नहीं बरसी, भगवान क्यों मुझसे नाराज है?

मैं आपसे पूछता हूं कि क्या आप भगवान से नाराज हैं, क्यों उसे खोज रहे हैं? क्यों पीछे पड़े हैं? प्रभु पर कृपा करो। उसकी चिंता छोड़ो, अपनी जिंदगी ठीक से जियो।

37

ईश्वरीय करुणा

वह एक नेक इंसान था। ईश्वर का भक्त। एक बार उसकी समुद्री यात्रा में भीषण तूफान उठा और देखते ही देखते जहाज समुद्र की गहराई में लीन हो गया। सिवाय उसके सभी यात्री काल के मुँह में समा गये। वह अपने समय का अच्छा तैराक था। किसी तरह तैरते हुए वह पास ही एक निर्जन द्वीप के किनारे पहुँचा।

वह बुरी तरह थक चुका था। भूख प्यास के मारे उसका बुरा हाल था। पथरीली जमीन के उस द्वीप पर दूर-दूर तक कुछ जंगली झाड़ियाँ नजर आ रही थीं। वह घुटनों के बल बैठा। दोनों हाथ आकाश की ओर करके ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि वह किसी तरह उसे इस विपत्ति से छुटकारा दिलावे। लेकिन उसे खाने-पीने लायक वहाँ कुछ नहीं मिला। इधर ठंड भी असहय होने लगी थी। उसने किसी तरह कुछ लकड़ी, पत्ते आदि इकट्ठा कर एक छोटी सी झोपड़ी बना ली।

दो पत्थरों को आपस में टकराकर कुछ सूखी घासफूस से आग जलाकर उसने खुद को कुछ गर्म किया। दूसरे दिन सुबह वह खाने पीने के तलाश में द्वीप में दूर-दूर तक भटकता रहा। लेकिन उसे कहीं-कहीं जंगली वनस्पति के अलावा कुछ नहीं मिला। काफी भटकने के बाद जब हताश होकर वह लौटा तो यह देखकर उसका दिल बैठ गया कि झोपड़ी धूं धूं करके जल रही है। उसे लगा अब उसके प्राण नहीं बच पाएंगे। ईश्वर के प्रति उसकी आस्था डगमगाने लगी।

इतने में उसे दूर एक स्टीमर की आवाज सुनाई दी। वह कुछ सँभलने लगा। यह देख उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा जब स्टीमर तेजी से द्वीप के किनारे आ लगा। कुछ लाग उसकी सहायता के लिए उतरे। उसे भरपेट खाना खिलाया। पानी पिलाया।

'लेकिन आप लोग इधर आए कैसे?' उसने स्टीमर के कप्तान से कृतज्ञतापूर्वक पूछा।

'मैं जानता हूँ कि यह एक निर्जन द्वीप है। इस पर से धुआँ उठता देखकर मुझे लगा कि किसी को मदद की जरूरत है।' कप्तान बोला।

वह यह सोचकर रोमांचित हो उठा कि ईश्वरीय करुणा कब कैसे बरसती है, कोई नहीं कह सकता।

38

आधी-अधूरी सच्चाई

कर्मवाद और भाग्यवाद में किसे सही मानें?

किसी सिद्धांत को न मानो, आंख खोलकर अपने चारों ओर की सचाई को देखो और तथ्य को जानो। मानने की जरूरत क्या है? आपके जैसा सवाल ही एक बार हजरत अली से पूछा गया था। उन्होंने बड़े सरल तरीके से सत्य को उजागर किया। सुनो यह कथा-

एक साधक अली साहब के पास गया और उनसे बोला, क्या मनुष्य स्वतन्त्र है? यदि वह स्वतन्त्र है तो कितना स्वतन्त्र है? क्या उसकी स्वतंत्रता की कोई परिधि है? भाग्य, किस्मत, नियति, दैव आदि क्या है? क्या ईश्वर ने हमें किसी सीमा तक बंधन में रखा है?

लोगों के प्रश्नों के उत्तर देने की अली साहब की अपनी शैली थी। उन्होंने उस व्यक्ति से कहा, खड़े हो जाओ।

यह सुनकर उस व्यक्ति को बहुत अजीब लगा। उसने सोचा, मैंने एक छोटी सी बात पूछी है और ये मुझे खड़ा होने के लिए कह रहे हैं। अब देखें क्या होता है।

वह खड़ा हो गया। हजरत ने उससे कहा, अब अपना एक पैर ऊपर उठा लो।

यह सुनकर उस व्यक्ति को लगा कि वह किसी अहमक के पास चला आया है। मुक्ति और स्वतंत्रता से इसका क्या संबंध? लेकिन अब वह फंस तो गया ही था। वह उस जगह अकेला तो था नहीं। आसपास और लोग भी थे। हजरत का बड़ा यश था। उनकी बात न मानना उनका अनादर होता। और फिर उसमें कोई बुरी बात भी न थी। इसलिए उसने अपना एक पैर ऊपर उठा लिया। अब वह सिर्फ एक पैर के बल खड़ा था।

अली साहब ने कहा, बहुत बढ़िया। अब एक छोटा सा काम और करो। अपना दूसरा पैर भी ऊपर उठा लो। यह तो असंभव है, प्रश्नकर्ता बोला, ऐसा हो ही नहीं सकता। मैंने अपना दायाँ पैर ऊपर उठाया था। अब मैं अपना बायाँ पैर नहीं उठा सकता।

अली साहब ने कहा, लेकिन थोड़ी देर पहले तुम पूर्णतः स्वतन्त्र थे। तुम पहली बार अपना बायाँ पैर उठा सकते थे। ऐसा कोई बंधन नहीं था कि तुम्हें दायाँ पैर ही उठाना था। तुम यह तय कर सकते थे कि तुम्हें कौन सा पैर ऊपर उठाना है। मैंने तुम्हें ऐसा कोई निर्देश नहीं दिया। तुमने ही निर्णय लिया और अपना दायाँ पैर उठाया। तुम्हें यह भी आजादी थी कि मेरी बात मानो या न मानो। कोई मजबूरी न थी। किंतु अपने इस निर्णय में ही तुमने अपने बाएं पैर को उठाना असंभव बना दिया। यह तो बहुत छोटा सा ही निर्णय था। अब तुम स्वतंत्रता, भाग्य और ईश्वर की चिंता करना छोड़ो और जिंदगी की मामूली चीजों पर अपना ध्यान लगाओ। स्वतंत्रता का उपयोग करके ही हम परतंत्र हो जाते हैं। अर्थात् परतंत्र होना भी हमारी स्वतंत्रता का अंग है।

एक पैर उठाने को हम सदा आजाद हैं। मगर कदम उठाते ही दूसरी टांग उठाने की आजादी खत्म हो जाती है। पहली टांग वापस नीचे रखने को भी आजाद हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि हम पचास प्रतिशत स्वतंत्र हैं और पचास प्रतिशत परतंत्र। इसीलिए भाग्यवादी एवं कर्मवादी, दोनों के पास स्वयं के सिद्धांत के पक्ष में पर्याप्त तर्क और प्रमाण हैं। दोनों की बात में आधी-अधूरी सच्चाई है। परस्परतंत्रता की बात पूर्ण सत्य है।

अवमूल्यन

एक अध्यापक अक्सर अपने छात्रों को पढ़ाते समय आदिकाल की सम्मानजनक गुरु-शिष्य परम्रा को बड़े ही गर्व के साथ शिष्यों को बताया करते थे और लंबी साँस लेकर कहते- तब गुरु का सम्मान शिष्य करते थे और सही मायने में विद्या ग्रहण करते थे, उनके अंदर जिज्ञासा थी, गुरुओं के प्रति सम्मान था। आजकल के छात्र अध्यापक को गाली, धौंस, चाकू दिखाकर परीक्षा में नकल के लिए प्रतिदिन बेइज्जत करते हैं, अब यह कार्य सम्मान का नहीं रहा।

रोज-रोज के धाराप्रवाह भाषण से ऊबकर एक दिन एक छात्र ने उत्तर दिया कि तब से अब के इस लंबे अंतराल के बीच क्या आप गुरुजनों के अंदर परिवर्तन नहीं आया? तब शिक्षा देना आप अपना आदर्श, कर्त्तव्य, जीवन का ध्येय समझते थे और अब आपका ध्यान शिक्षा पर कम अपने वेतनमान और ट्यूशन पर अधिक रहता है।

अध्यापक महोदय सोचने लगे कि अवमूल्यन कहाँ से आरंभ हुआ है?

दूसरों पर अंगुली उठाना कितना सरल है, और स्वयं की बुराई देखना कितना कठिन! अपने अवगुण, गुण जैसे प्रतीत होते हैं। दूसरों के गुण भी अवगुण जैसे लगते हैं। यह पक्षपातपूर्ण नजरिया ही यथार्थ को देखने नहीं देता। तथ्य का ज्ञान जिसे हो जाए, उसके जीवन में रूपांतरण शुरु हो जाता है।

क्या स्वयं को बदलना है? तो अपने भीतर के तथ्यों पर दृष्टि डालो। उनके प्रति होश, उनका निरीक्षण ही परिवर्तन का प्रथम कदम है। ध्यान की अग्नि में कूड़ा–कर्कट दग्ध हो जाता और केवल वहीं शेष बचता है जो बचने योग्य है।

40
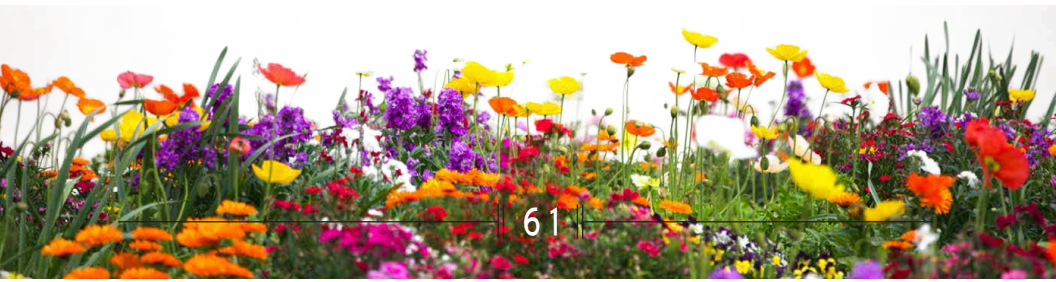
अमूल्य शिक्षा

ध्यान साधना में अपनी मंजिल प्राप्त करने में सफल कैसे हों, इसका कोई सूत्र दीजिए।

मंजिल की फिक्र छोड़ो, मार्ग का मजा लेना सीखो। मैंने सुनी है एक कथा कि कोई कवि एक प्रसिद्ध सूफी फकीर से मिलने गया, जो सफल मूर्तिकार भी था। उसकी कला वाटिका में उपस्थित शिल्प की सराहना करते हुए उसने मूर्तिकार से पूछा, आपकी अद्वितीय कला का रहस्य क्या है? वह कौन सा दर्शन है जो आपको ये अनूठे शिल्प और मूर्तियाँ बनाने के लिए प्रेरित करता है?

तुम वह रहस्य जानना चाहते हो? -सूफी फकीर ने कहा, मैं तुम्हें वह अवश्य बताऊँगा। कुछ दिन मेरे साथ रुको, लेकिन शर्त है कि चुपचाप रहना, कुछ पूछना मत। जो मैं कहूं, वह काम करते जाना, बस।

कवि कई सप्ताह तक वहां रहकर चुपचाप सारा घरेलू काम करता रहा। वह खाना बनाता, कपड़े धोता, साफ-सफाई करता रहा लेकिन उसने कुछ भी न कहा।

एक दिन, मूर्तिकार ने कवि से कहा, मैं तुम्हें जो कुछ भी सिखा सकता था वह तुम सीख गए हो।

ऐसा कैसे हो सकता है? -कवि ने अचंभे से कहा, इतने दिनों तक मैं आपके कहने पर यहाँ रुका रहा और एक शब्द भी कहे बिना आपका सारा घरेलू काम करता रहा लेकिन मुझे आपकी कला और शिल्प के बारे में कुछ भी जानने-सीखने को नहीं मिला।

तुमने वह सारा काम एक शब्द भी बोले बिना किया न? -सूफी फकीर ने कहा, वही मेरी सफलता का रहस्य है- सफलता की चिंता न करना। अब जाओ। अपने काम को इबादत समझकर करो।

कवि को तुरंत यह समझ में आ गया कि उसने वाकई अमूल्य शिक्षा पाई थी और उसने इसे अपने साहित्य-क्षेत्र में प्रयुक्त किया। कुछ सालों बाद जब उसने कवि के रूप में प्रसिद्धि हासिल कर ली, तब एक दिन सूफी फकीर उससे मिलने आया। फकीर बोला- क्या केवल कवि बनकर संतुष्ट हो गए? तुमने मेरी शिक्षा अधूरी ही ग्रहण की है। जैसे काव्य साधना की, वैसे ही ध्यान और भक्ति भी साधो। तुमसे मुझे बड़ी उम्मीद है, अब ऋषि बनने के सफर पर चलो। तब तुम मेरे पूर्ण शिष्य कहलाओगे।

ध्यान साधना में अपनी मंजिल पाने का सूत्र यही है कि सफलता की चिंता न करना। सफलता का ख्याल भविष्योन्मुख बना देता है। योजना बनाने लगता है। जबकि ध्यान घटता है- वर्तमान में जीने से। इसलिए चाहे संसार की कोई कला हो अथवा अध्यात्म की कला, बस उस कला का आनंद लेना सीखो।

आनंदित व्यक्ति इसी क्षण में ठहर जाता है, और तत्क्षण ध्यान घट जाता है।

विचारों और तर्कों की धूल

एक निर्दोष युवक को जब फाँसी होने लगी तो बूढ़े जेलर ने उसकी अंतिम इच्छा पूछी, 'तुम्हारी मरने से पूर्व कोई अंतिम इच्छा हो तो बताओ।'

युवक गुस्से में चिल्लाया– 'क्या आप पूरी कर सकेंगे?'

'यथासंभव पूरा प्रयास करेंगे।'

युवक ने शांत होकर कहा– 'तो सुनिए और कान खोलकर सुनिए। मैं अपनी दोनों आँखें इस देश की अंधी न्याय–व्यवस्था को दान देना चाहता हूँ।'

बूढ़ा जेलर अपने कानों की ओर संकेत करते हुए बोला– 'थोड़ा जोर से कहिए, मुझे कम सुनाई पड़ता है।'

कानून अंधा ही नहीं, बहरा भी है। संदेह पैदा होता है कि जीवित भी है या नहीं? लेकिन मर तो वही सकता है जो पहले जिंदा रहा हो। शायद कानून तो कभी जिंदा रहा ही नहीं!

न्याय–व्यवस्था बस नाम–मात्र को ही है। असामाजिक व्यक्तियों से, समाज द्वारा सभ्य तरीके से प्रतिशोध लेने की हिंसक व्यवस्था है। कहने को ही आदमी सभ्य हुआ है। आदमियत का नहीं, कोमल भावनाओं का नहीं, हिंसा के सामानों का विकास हुआ है। लाखों वर्ष पूर्व प्रचलित 'जंगल का कानून' ही नई वेश–भूषा धारण करके आज भी चल रहा है। हम ज्यादा हार्दिक नहीं, केवल अधिक तार्किक हो गए हैं। चाहे व्यक्तियों के संग हिंसा करें न्याय के नाम पर, चाहे किसी वर्ग विशेष के संग दंगे के नाम पर, अथवा राष्ट्रों के संग युद्ध के नाम पर; हम उसे तर्कसंगत सिद्ध करने में अति–कुशल हैं।

तर्कसंगत, न्यायसंगत होने का धोखा पैदा करता है। दूसरों को ही नहीं, मजबूत दलीलों से हम खुद को भी राजी कर लेते हैं। इस आत्म–प्रवंचना से अपराध–बोध का कांटा भी नहीं चुभता।

'जस्टिफिकेशन' से सावधान!

तर्क–कुशलता बहुत काम की हो सकती है और अत्यंत खतरनाक भी। भीतर इंटेन्शन, इरादा क्या है, वह टटोलना। सीधे–सीधे देखना। विचारों और तर्कों की धूल आंखों को अंधा कर देती है, और कानों को बहरा।

42

विषतुल्य शिक्षा

बहुत सालों बाद मिले मित्र से चर्चा के दौरान यह सोचकर कि उनके बच्चे नौकरी कहाँ करते हैं, मुल्ला नसरुद्दीन ने प्रश्न किया- 'आजकल आपके बच्चे कहाँ-कहाँ हैं?'

मित्र ने कहा- 'बच्चे? माशा अल्लाह, जो नौकरी करते हैं, खाते-कमाते हैं, वे साथ नहीं रहते, विदेशों में जा बसे हैं। और जो नौकरी लायक नहीं बन पाए, वे अनपढ़ साथ रहते हैं, खेतीबाड़ी में हाथ बंटाते हैं और घर का खर्च भी वे ही बेचारे चलाते हैं।'

ज्यादा से ज्यादा आजीविका और स्वार्थसिद्धि... क्या हमारी शिक्षा पद्धति सिर्फ यही सिखाती है? महत्त्वाकांक्षा, गला-घोंट प्रतियोगिता, ईर्ष्या, द्वेष, प्रथम होने की पागल दौड़ तो जीवन के लिए विषतुल्य हैं। क्या शिक्षा व्यवस्था इसी जहर को सुनियोजित ढंग से नहीं पिलाती है?

मनुष्यता के इतिहास में सर्वाधिक शिक्षित सदी, बीसवीं सदी रही। इसमें दो विकराल विश्वयुद्ध हुए। साम्यवाद की वेदी पर करोड़ों की नरबलि चढ़ाई गई। अणु बम, परमाणु बम, फिर नाभकीय शस्त्र, और अब 'बायोलॉजिकल वेपन्स' की खोजबीन, यही है शिक्षा का उद्देश्य?

चौंकना, और मनन करना।

दो कसौटियां

मैं ठीक से जीवन जी रहा हूं या नहीं, इसे किस कसौटी पर परखूं?

दो कसौटियां याद रखो। पहली- स्वयं के भीतर सजग, ध्यानपूर्ण होना।

दूसरी- दूसरों के संग प्रेमपूर्ण, संवेदनशील होना। इन दोनों कसौटियों पर खरे उतरे तो आपके जीवन में गहन संतोष होगा। परितृप्त जिएंगे और संतुष्ट विदा होंगे। वास्तव में ये दो बातें भी दो नहीं हैं। चेतना का, संवेदनशीलता का तीर खुद के प्रति हो तो वह ध्यान है, संवेदनशीलता का तीर अन्य के प्रति हो तो वह प्रेम है।

आज से लगभग एक सदी पहले एक व्यक्ति ने सुबह समाचार पत्र में स्वयं की मृत्यु का समाचार छपा देखा और वह स्तब्ध रह गया। वास्तव में समाचार पत्र से बहुत बड़ी गलती हो गई और गलत व्यक्ति की मृत्यु का समाचार छप गया। उस व्यक्ति ने समाचार पत्र में पढ़ा- 'डायनामाईट किंग अल्फ्रेड नोबेल की मृत्यु... जो मौत का भयानक सौदागर था'।

अल्फ्रेड नोबेल ने जब डायनामाईट की खोज की थी तब उन्हें पता नहीं था कि खदानों और निर्माणकार्य में उपयोग के लिए खोजी गई विध्वंसक शक्ति का उपयोग युद्ध और हिंसक प्रयोजनों में होने लगेगा। अपनी मृत्यु का समाचार पढ़कर नोबेल के मन में पहला विचार यही आया- 'क्या मैंने वास्तव में अपना जीवन ठीक से जिया है? 'मौत का भयानक सौदागर अल्फ्रेड नोबेल'... क्या दुनिया मेरे गुजरने के बाद मुझे यही कहकर याद रखेगी- मृत्यु का भयावह व्यापारी?'

उस दिन के बाद से नोबेल ने अपने सभी काम छोड़कर विश्व-शांति के प्रसार के लिए प्रयत्न आरम्भ कर दिए।

स्वयं को अल्फ्रेड नोबेल के स्थान पर रखकर देखें और सोचें- आपकी धरोहर क्या है? जगत को क्या देकर जाएंगे? आप कैसे व्यक्ति के रूप में याद किया जाना पसंद करेंगे? क्या कोई आपके बारे में अच्छी बात कहेगा? क्या लोग आपको मृत्यु के बाद भी प्रेम से स्मरण करेंगे? क्या किन्हीं व्यक्तियों को आपकी कमी खलेगी?

जो लोगों को सताकर, लूटकर जाते हैं, उन्हें भी काफी याद किया जाता है, मगर अपशब्दों सहित। किंतु शायद वे उसे अपनी इज्जत समझते हैं! प्रसिद्ध मारवाड़ी शायर सेठ चंदूलाल 'उधारिया' ने अर्ज किया है-

माना कि तेरी नजर में, कुछ भी नहीं हूं मैं, ए सनम,
मेरी कद्र उनसे पूछ, जिनके मुझे पैसे देने हैं जानेमन।

मेरी बात के अर्थ का अनर्थ मत करना। मैं नेपाल के एक सज्जन को जानता हूं

जिन्होंने गांव के सारे लोगों से बहुत उधार ले रखा था। एक बार जब चर्चा चल रही थी कि क्या किन्हीं व्यक्तियों को कमी खलेगी? तब वे बोले- निश्चित ही खलेगी। उन्हें अपनी उधार रकम याद रहेगी। रकम के साथ में स्मरण आऊंगा। मरते दम तक मुझे कोई भुला न सकेगा, शायद उनकी अगली पीढ़ियां भी मेरा नाम जानेंगी।

उनकी पत्नी ने कहा- मुझे डर लगता है कि कोई इनकी हत्या न कर दे!

वे हंसकर बोले- तुम निश्चिंत रहो। तुम विधवा नहीं हो सकती। मैं नहीं रहूंगा, तो गांव के लोगों को पैसा वापस मिलने की उम्मीद टूट जाएगी। अभी कम से कम आशा तो है, झूठी ही सही! इसलिए मुझे कोई नहीं मारेगा। हर हाल में सब मुझे बचाने का प्रयास करेंगे। मुझसे ज्यादा सुरक्षित तो नेपाल का राजा भी नहीं है।

और वाकई में ऐसा ही हुआ। सब भांति से सुरक्षित सम्राट की तो हत्या हो गई, वे सज्जन अभी भी मजे में हैं। वे निश्चिंत हैं, उन्हें तो पक्का पता है कि उधार लौटाना ही नहीं है। कुछ बचा ही नहीं, वापस कहां से करेंगे! लोग चिंतित रहते हैं। अगर ये बीमार हो जाएं तो सब देखने आते हैं, डॉक्टर बुलाकर लाते हैं, दवाइयां खरीद के दे जाते हैं। इनसे बड़ी आशा लगी है।

ऐसा अनर्थ न करना। पुनः दोहरा दूं- दो कसौटियां, पहली- भीतर सजगता, ध्यान। दूसरी- बाहर संवेदनशीलता, प्रेम। जीवन में संतोष और तृप्ति उपलब्धि के यही सूत्र हैं। ये दो पतवारें हैं, उस पार जाने के लिए, मंजिल तक पहुंचने के लिए। इन्हीं दो गुणों के विकास का नाम अध्यात्म है।

44
विद्वान चींटियां

ज्ञान बोझ है तो फिर लोग क्यों ज्ञान ढोते रहते हैं?

वे जो कर रहे हैं, करने दो; कम से कम आप अपना बोझ उतार दो। यह प्रतीकात्मक कहानी सुनो, संभवतः यह आपको भार-मुक्त होने में सहयोगी साबित होगी-

अफ्रीकी लोक-कथा है कि 'विद्वान' नामक ज्ञानी किसान का 'बुद्धू' नामक बेटा था। दोनों की आपस में नहीं पटती थी, अतः वे अलग-अलग रहने लगे। दोनों ही चतुर किसान थे। उन दोनों के खेत अलग-अलग थे और हर साल उनमें लहलहाती फसल होती थी। एक साल दुर्भाग्यवश उन्होंने अपने सबसे अच्छे बीज खेत में बोए लेकिन बारिश नहीं होने के कारण उनके खेत में कुछ भी न उगा।

उदास बुद्धू अपने सूखे खेत में घूम रहा था और सोच रहा था कि इस साल उसके परिवार को अन्न कहाँ से मिलेगा। उसने खेत की मेड़ पर एक कुबड़े बौने को बैठा देखा। बौने ने बुद्धू से उदास होने का कारण पूछा। बुद्धू के बताने पर बौने ने कहा कि वह खेत में बारिश लाने में उसकी मदद करेगा। उसने बुद्धू से कहा कि वह कहीं से दो छोटी लकडियाँ ले आए और उन्हें उसके कूबड़ पर ढ़ोल की तरह बजाए। बुद्धू ने ऐसा ही किया। वे दोनों गाने लगे-

'पानी, पानी ऊपर जाओ
बारिश बनकर नीचे आओ!'

यह देखकर बुद्धू की खुशी का ठिकाना नहीं रहा कि गाते-गाते जोरदार बारिश होने लगी और खेत की मिटटी ने पूरे पानी को सोख लिया। अगले ही दिन बीजों से अंकुर फूट पड़े और बढ़िया फसल होने लगी।

विद्वान को जल्द ही बुद्धू के खेत में बढ़िया फसल होने की खबर मिल गई। उसका खुद का खेत तो सूखा ही पड़ा था। वह बुद्धू के पास गया और उसने बुद्धू से बारिश होने का कारण पूछा। बुद्धू का मन साफ था और उसने कुबड़े बौने वाली बात अपने पिता को बता दी।

विद्वान ने भी उसी तरह से अपने खेत में पानी लाने का निश्चय किया। उसने दो मोटी लकडियाँ ले लीं और सोचा- 'मेरे बेटे ने कुबड़े बौने से छोटी लकड़ियों से काम लिया। मैं मोटी लकडियां इस्तेमाल करके उससे दुगनी बारिश करवाऊँगा।'

जब उसने कुबड़े बौने को अपनी ओर आते देखा उसने सावधानी से दोनों लकडियाँ छुपा दीं। पहले की तरह कुबड़े बौने ने विद्वान से उदास होने का कारण पूछा और विद्वान ने उसे अपनी समस्या बता दी। कुबड़े ने उससे कहा- 'कहीं से दो छोटी लकडियाँ ले आओ और उन्हें मेरे कूबड़ पर ढोल की तरह बजाओ। मैं बारिश को बुला दूंगा।'

लेकिन चतुर विद्वान ने अपनी मोटी लकडियाँ निकाल लीं और उनसे उसने कुबड़े बौने को इतनी जोर से पीटा कि बेचारा बौना मर गया। विद्वान यह देखकर बहुत डर गया क्योंकि

उसे मालूम था कि बौना वहां के राजा का चहेता जोकर था। वह सोचने लगा कि इस घटना का दोष वह किसके मत्थे मढे। उसने बौने का मृत शरीर उठाया और उसे एक कोला के पेड़ के पास ले गया। उसने मृत बौने को पेड़ की ऊपरी शाखा पर बिठा दिया और पेड़ के नीचे बैठकर किसी के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

इस बीच बुद्धू यह देखने के लिए आया कि उसके पिता को बारिश कराने में सफलता मिली या नहीं। उसने अपने पिता को पेड़ के नीचे अकेले बैठे देखा और उससे पूछा- 'पिताजी, क्या आपको कुबड़ा बौना नहीं मिला?'

विद्वान ने कहा- 'मिल गया। लेकिन वह पेड़ पर चढ़कर कोला लेने गया है और मैं उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

'मैं ऊपर चढ़कर उसे नीचे लिवा लाता हूं।'- बुद्धू ने कहा और वह फौरन पेड़ पर चढ़ गया। पेड़ के ऊपर उसने जैसे ही बौने को छुआ, बौना धड़ाम से नीचे गिर गया।'

'अरे, ये तुमने क्या कर दिया!'- कपटी विद्वान चिल्लाया- 'तुमने राजा के चहेते जोकर को मार डाला!'

'हाँ!'- बुद्धू ने कहा। अब तक वह अपने पिता की चाल को समझ चुका था। वह बोला- 'राजा उससे बहुत नाराज है और उसने कुबड़े बौने को मारने वाले को एक थैली सोना देने की मुनादी की है। मैं अब जाकर अपना ईनाम लूँगा।'

'नहीं! नहीं!'- विद्वान चिल्लाया- 'ईनाम मैं लूँगा! मैंने उसे दो मोटी लकड़ियों से पीटकर मारा है। उसे मैं राजा के पास ले जाऊंगा!'

'ठीक है'- बुद्धू ने कहा- 'अगर आपने उसे मारा है तो आप ही ले जाओ'।

ईनाम मिलने के लालच में विद्वान बौने की लाश को ढोकर ले गया। राजा अपने प्रिय बौने की मृत्यु के बारे में जानकार बड़ा क्रोधित हुआ। उसने राजधानी के प्रसिद्ध जादूगर को बुलाकर कहा कि बौने की लाश को एक बहुत मोटी किताब में बदल दो। जादूगर ने वैसी ही किया। राजा ने आदेश दिया कि विद्वान सजा के रूप में उस मोटी किताब को हमेशा अपने सर के ऊपर ढोएगा। राजा ने बक्से पर ऐसा जादू-टोना करवा दिया कि बक्सा कभी भी जमीन पर न उतारा जा सके तथा विद्वान को छोटी सी चींटी में परिवर्तित करवा दिया।

बेचारी चींटी जिन्दगी भर मृत-पुस्तक के बोझ को ढोती-ढोती एक दिन स्वयं मृत हो गई। उसी महान पूर्वज चींटी की याद में आज भी सारी चींटियाँ अपने शरीर से भी बड़े और भारी बोझे ढोती रहती हैं। राजा के चहेते जोकर ने सारी उम्र सबको हंसाया, लोगों के जीवन में खुशियों की वर्षा करवाई, मगर उसकी लाश की ढुलाई की परंपरा अति-गंभीर काम बन चुकी है।

आपका प्रश्न है कि ज्ञान बोझ है तो फिर लोग क्यों ज्ञान ढोते रहते हैं? बेचारे परंपरा निभा रहे हैं, उन्हें उनका महान कार्य करने दो। आपको समझ में आ गया, आप बोझ से मुक्त हो जाओ। हां, विद्वानों की नजरों में 'बुद्धू' होने के लिए राजी होना इसकी कीमत है जो चुकानी पड़ेगी। इसकी विधि है– 'निर्विचार सजगता'!

45

घी-पत्थर जैसे कर्मफल

गुरुदेव जी, श्राद्ध करने से पूर्वजों को मोक्ष–प्राप्ति के संबंध में आपके क्या विचार हैं?

मेरे विचार का अनुमान आपने लगा लिया होगा, तभी सवाल पूछ रहे हैं। मेरी बातें सुनकर आपके मन में संदेह पैदा हो गए, अच्छा हुआ। सुनो यह कहानी–

सदियों पहले किसी पंथ के पुरोहित नागरिकों के मृत संबंधी की आत्मा को स्वर्ग भेजने के लिए एक कर्मकांड करते थे और उसके लिए बड़ी दक्षिणा माँगते थे। उक्त कर्मकांड के दौरान वे मंत्रोच्चार करते समय मिट्टी के एक छोटे कलश में पत्थर भरकर उसे एक छोटी सी हथौड़ी से ठोंकते थे। यदि वह पात्र टूट जाता और पत्थर बिखर जाते तो वे कहते कि मृत व्यक्ति की आत्मा सीधे स्वर्ग को प्रस्थान कर गयी है। अधिकतर मामलों में मिट्टी के साधारण पात्र लोहे की हथौड़ी की हल्की चोट भी नहीं सह पाते थे और पुरोहितों को वांछनीय दक्षिणा मिल जाती थी।

अपने पिता की मृत्यु से दुखी एक युवक बुद्ध के पास इस आशा से गया कि बुद्ध की शिक्षाएं और धर्म अधिक गहन हैं और वे उसके पिता की आत्मा को मुक्त कराने के लिए कोई महत्वपूर्ण क्रिया अवश्य करेंगे। बुद्ध ने युवक की बात सुनकर उससे दो अस्थिकलश लाने के लिए और उनमें से एक में घी और दूसरे में पत्थर भरकर लाने के लिए कहा।

यह सुनकर युवक बहुत प्रसन्न हो गया। उसे लगा कि बुद्ध कोई नयी और शक्तिशाली क्रिया करके दिखाएँगे। वह मिट्टी के एक कलश में घी और दूसरे में पत्थर भरकर ले आया। बुद्ध ने उससे कहा कि वह दोनों कलश को सावधानी से नदी में इस प्रकार रख दे कि वे पानी में मुहाने तक डूब जाएँ। फिर बुद्ध ने युवक से कहा कि वह पुरोहितों के मन्त्र पढ़ते हुए दोनों कलश को पानी के भीतर हथौड़ी से ठोंक दे और वापस आकर सारा वृत्तांत सुनाये।

उपरोक्त क्रिया करने के बाद युवक अत्यंत उत्साह में था। उसे लग रहा था कि उसने पुरानी क्रिया से भी अधिक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली क्रिया स्वयं की है। बुद्ध के पास लौटकर उसने सारा विवरण कह सुनाया, 'दोनों कलश को पानी के भीतर ठोंकने पर वे टूट गए। उनके भीतर स्थित पत्थर तो पानी में डूब गए लेकिन घी ऊपर आ गया और नदी में दूर तक बह गया।'

बुद्ध ने कहा, 'अब तुम जाकर अपने पुरोहितों से कहो कि वे प्रार्थना करें कि पत्थर पानी के ऊपर आकर तैरने लगें और घी पानी के भीतर डूब जाए।'

यह सुनकर युवक चकित रह गया और बुद्ध से बोला, 'आप कैसी बात करते हैं!? पुरोहित कितनी ही प्रार्थना क्यों न कर लें पर पत्थर पानी पर कभी नहीं तैरेंगे और घी पानी में कभी नहीं डूबेगा!'

बुद्ध ने कहा, 'तुमने सही कहा। तुम्हारे पिता के साथ भी ऐसा ही होगा। यदि उन्होंने अपने जीवन में शुभ और सत्कर्म किये होंगे तो उनकी आत्मा स्वर्ग को प्राप्त होगी। यदि उन्होंने त्याज्य और स्वार्थपूर्ण कर्म किये होंगे तो उनकी आत्मा नर्क को जायेगी। सृष्टि में ऐसा कोई भी पुरोहित या कर्मकांड नहीं है जो तुम्हारे पिता के कर्मफलों में तिल भर का भी हेरफेर कर सके।'

आप पूछ रहे हैं कि पूर्वजों को मोक्ष-प्राप्ति, मुक्ति श्राद्ध द्वारा मिल सकती है या नहीं?

मुक्ति भी अगर कोई दूसरा दिला दे तो फिर वह मुक्ति नहीं रह जाएगी। क्योंकि जिसने कुछ दिया है, वह कभी वापिस भी ले सकता है। हम स्वयं ही अपने बंधनों के निर्माता हैं, और हम ही स्वयं की मर्जी से मुक्त हो सकते हैं। अन्य कोई न आत्मा को बांध सकता, न छुड़ा सकता।

अध्यात्म में निर्द्वन्द्वता का इतना महत्त्व क्यों माना जाता है?

निर्द्वन्द्वता के बगैर अध्यात्म का शिखर अनुभव अर्थात् अद्वैत फलित नहीं हो सकता। द्वन्द्व यानि संशयग्रस्त चित्त। वही तो मनुष्य का मूल आध्यात्मिक रोग है। सारी तकलीफ दो विपरीत अतियों के बीच पेंडुलम की भांति झूलने से उत्पन्न होती है।

ईसप की प्रसिद्ध कहानी है कि एक प्रौढ़ व्यक्ति की दो पत्नियाँ थीं। उनमें से एक उसकी हमउम्र थी और दूसरी उससे काफी छोटी थी। दोनों पत्नियाँ अपने पति को अपने-अपने मनमाफिक रूप में देखना चाहती थीं। जब आदमी के बाल सफेद होने लगे तो जवान पत्नी को यह अच्छा नहीं लगा। उसे लगा कि आदमी उसके पिता जैसा लगेगा, इसलिए हर रात को वह उसके बाल काढ़ती और सफेद बालों को तोड़कर निकाल देती थी। दूसरी ओर आदमी की बड़ी पत्नी ने जब अपने पति को बुढ़ाते देखा तो उसे अच्छा लगा क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि लोग उसे उसके पति की माँ समझ बैठें, इसलिए वह भी रोज दिन में उसके बाल काढ़ने लगी और काले बालों को तोड़कर फेंकने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही वह आदमी पूरा गंजा हो गया।

सारी मुसीबत दो अतियों के बीच पेंडुलम जैसे झूलने से जन्मती है। उस आदमी की सिर्फ दो बीवियां थीं, मन की तो सैकड़ों दिशाओं में शक्ति खंडित है। कामनाएं पत्नियां हैं। महावीर ने कहा- मनुष्य बहुचित्तवान है। आधुनिक मनोविज्ञान राजी है कि मन एक इकाई नहीं है, 'पॉलीसाइकिक' है। यही दुर्गति की जड़ है।

अखंड हुए बगैर आनंद संभव नहीं। और अखंड, निर्द्वन्द्व होने की विधि अत्यंत सुगम है। विपरीत अतियों के प्रति जागरण से एक नए तत्त्व का उदय होता है- साक्षीभाव जन्मता है। दृश्य दो या अनेक हो सकते हैं, किंतु उनका द्रष्टा सदा एक ही होता है। वही अद्वैत की अनुभूति, समस्त समस्याओं का समाधान है।

47 अलौकिक कंटेन्ट

गुरुजी, मेरे दो सवाल हैं। पहला प्रश्न–पांडित्यपूर्ण भाषा लुभावनी लगती है, क्या इसी कारण मध्य–युग में हुए सैकड़ों संतों का हमारे देश के बुद्धिजीवी वर्ग पर प्रभाव नहीं पड़ सका?

आप ठीक कहते हैं। लोक मानस में कठिन भाषा का बहुत प्रभाव पड़ता है। बाहरी आडम्बर, रहन–सहन, वस्त्रादि से लोग अनुमान लगाते हैं ज्ञान की गहराई का। संत सदा ही सरल भाषा बोलते हैं। क्योंकि उन्हें अपना अनुभव समझाना है, भीतर जाना हुआ सत्य प्रगट करना है, श्रोताओं के हृदय से जुड़ना है। पंडित क्लिष्ट भाषा का प्रयोग करके अपने अज्ञान को छिपाता है। जिसे अनुभूति हुई है, जरूरी नहीं कि वह अभिव्यक्ति करने में कुशल हो। जिसे अभिव्यक्ति करने में कुशलता हासिल है, जरूरी नहीं उसे सत्य की अनुभूति हुई हो। अक्सर तो ऐसा ही हुआ है, सीधे–सरल लोगों ने आतमज्ञान प्राप्त किया। उनके साधारण से दिखने वाले कंटेनर के अंदर अलौकिक कंटेन्ट है। अधिकतर आकर्षक दिखने वाले कंटेनर के अंदर कंटेन्ट होता ही नहीं।– खाली डिब्बा! किंतु लोग तो डिब्बे से ही प्रभावित होते हैं।

बहुत पुरानी बात है। मिस्र देश में एक सूफी संत रहते थे। एक नौजवान ने उनके पास आकर पूछा, 'मुझे समझ में नहीं आता कि आप जैसे लोग सिर्फ एक साधारण से चोगा ही क्यों पहने रहते हैं? बदलते वक्त के साथ यह जरूरी है कि लोग ऐसे लिबास पहनें जिनसे उनकी शख्सियत सबसे अलहदा दिखे और देखनेवाले वाहवाही करें'।

सूफी संत मुस्कुराये और अपनी उंगली से एक अंगूठी निकालकर बोले, 'बेटे, मैं तुम्हारे सवाल का जवाब जरूर दूंगा लेकिन पहले तुम मेरा एक काम करो। इस अंगूठी को सामने बाजार में एक अशर्फी में बेचकर दिखाओ'।

नौजवान ने संत की सीधी–सादी सी दिखनेवाली अंगूठी को देखकर मन ही मन कहा, 'इस सामान्य सी, पुरानी अंगूठी के लिए सोने की एक अशर्फी! इतने दाम में तो शाायद ही काई खरीदे'।

'कोशिश करके देखो, शायद तुम्हें वाकई कोई खरीददार मिल जाए', संत ने कहा।

नौजवान तुरत ही बाजार को रवाना हो गया। उसने वह अंगूठी बहुत से सौदागरों, परचूनियों, साहूकारों, यहाँ तक कि हज्जाम और कसाई को भी दिखाई पर उनमें से कोई भी उस अंगूठी के लिए एक अशर्फी देने को तैयार नहीं हुआ। हारकर उसने सूफी संत को जा कहा, 'कोई भी इसके लिए चांदी के एक दीनार से ज्यादा रकम देने के लिए तैयार नहीं है'।

संत ने मुस्कुराते हुए कहा, 'अब तुम इस सड़क के पीछे सुनार की दुकान पर जाकर उसे यह अंगूठी दिखाओ। लेकिन तुम उसे अपना मोल मत बताना, बस यही देखना कि वह इसकी क्या कीमत लगाता है। बेचना मत'।

नौजवान बताई गयी दुकान तक गया और वहां से लौटते वक्त उसके चेहरे पर कुछ और ही बयाँ हो रहा था। उसने सूफी संत से कहा, 'आप सही थे। बाजार में किसी को भी इस अंगूठी की सही कीमत का अंदाजा नहीं है। सुनार ने इस अंगूठी के लिए सोने की एक हजार अशर्फियों की पेशकश की है। यह तो आपकी मांगी कीमत से भी हजार गुना है!'

संत ने मुस्कुराते हुए कहा, 'और वही तुम्हारे सवाल का जवाब है। किसी भी इन्सान की कीमत उसके लिबास से नहीं आंको, नहीं तो तुम बाजार के उन सौदागरों की मानिंद बेशकीमती नगीनों से हाथ धो बैठोगे। अगर तुम उस सुनार की आँखों से चीजों को परखने लगोगे तो तुम्हें मिट्टी और पत्थरों में सोना और जवाहरात दिखाई देंगे। इसके लिए तुम्हें दुनियावी नजर पर पर्दा डालना होगा और दिल की निगाह से देखने की कोशिश करनी होगी। बाहरी दिखावे और बयानबाजी के परे देखो, तुम्हें हर तरफ हीरे-मोती नजर आएंगे'।

यद्यपि बुद्ध ने सामान्य जनों की बोली 'पाली', और महावीर ने भी स्थानीय बोली 'प्राकृत' का प्रयोग किया; किंतु फिर भी बहुत लोग उनसे प्रभावित हुए- उनके राजकुमार होने की वजह से। याद रखना; जनमानस, सम्पत्ति, शक्ति, कुल, वंश, जाति, रंग-रूप, तर्क-कुशलता, शास्त्र-ज्ञान, स्मृति-भंडार आदि से प्रभावित होता है- ये सब वस्त्र हैं। पंडितों पर संस्कृत के श्लोकों का, दुरूह बौद्धिक सिद्धांतों का असर होता है।

आपने ठीक कहा कि पांडित्यपूर्ण भाषा लुभावनी लगती है, इसी कारण मध्य-युग में हुए सैकड़ों संतों का हमारे देश के बुद्धिजीवी वर्ग पर प्रभाव नहीं पड़ सका। वे भाषा की त्रुटियां खोज लेते हैं। केवल हमारे देश का ही सवाल नहीं, दुनिया में सभी जगह यही घटना घटी। हजरत मुहम्मद, ईसा मसीह, लाओत्से जैसे अनूठे लोगों का तत्कालीन बुद्धिजीवी वर्ग पर कोई असर नहीं हुआ। यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य रहा है, और संभवतः आगे भी ऐसा ही होता रहेगा। आपके अगले सवाल के जवाब से आपको और स्पष्ट होगा कि प्रश्न केवल संतों से संबंधित नहीं है; अन्य क्षेत्रों में, दूसरे आयामों में भी लोगों की नजर केवल बाहरी, ऊपरी, सतही चीजों पर ही टिकी रहती है।

दूसरा प्रश्न– दुनिया से वर्ण–भेदभाव कब पूरी तरह खत्म होगा?

दुनिया जैसी चल रही है, उसे देखकर बहुत आशा तो नहीं बंधती कि भेदभाव कभी पूर्णतः खत्म होगा। विश्वप्रसिद्ध किताब 'दि ताओ ऑफ फिजिक्स' के लेखक, महान अणु-विज्ञानी फ्रिट्जोफ कैपरा ने उल्लेख किया है कि कैलीफोर्निया के समाचार पत्रों में एक दिन सुर्खियों में खबर छपी- 'किसी सिरफिरे श्वेत अमेरिकन ने बिना किसी कारण, एक अपरिचित नीग्रो युवक को, भरे बाजार में गोलियों से भून दिया'। कैपरा को बहुत दुख हुआ। उसने तय किया कि आज शाम उस युवक की अंत्येष्टि में शामिल होकर वह इस ग्लानि-भाव से मुक्त होगा।

संध्या जब अंत्येष्टि स्थल पर वह पहुंचा तो और भी सदमा लगा यह देखकर कि उसके अतिरिक्त केवल दो और सफेद चमड़ी वाले लोग आए हैं। उसे तो उम्मीद थी कि कैलीफोर्निया के संवेदनशील, बुद्धिजीवी लोगों का जमघट होगा, सभी सहानुभूति व्यक्त करना चाहेंगे। मगर केवल काली त्वचा वाले ही एकत्रित हुए थे। इन तीनों को डर लगा कि कहीं नीग्रो की भीड़ उन्हें देखकर भड़क न जाए, कोई हिंसक वारदात न हो जाए! तीनों ने सहमे स्वर में दरबान से पूछा- क्या हम भी अंतिम संस्कार में सम्मलित हो सकते हैं? दरबान ने बड़ी विनम्रता से जवाब दिया- मेरे प्यारे भाइयो, आपका स्वागत है। आपके आगमन से हमें बहुत अच्छा लगा, कृपया भीतर आइए।

एक दूसरी घटना और सुनो। पिछली सदी में भारत के महान वैज्ञानिक सर जगदीशचंद्र बोस ने पेड़-पौधों में संवेदनाएं होने की बात सिद्ध करके संसार को आश्चर्यचकित कर दिया

था। लेकिन शायद आपको पता न होगा कि पश्चिमी वैज्ञानिकों ने बामुश्किल इस महान खोज को स्वीकारा। बोस को काफी कठिनाईयों का समाना करना पड़ा, और चालाकियों का शिकार भी होना पड़ा।

इसके अलावा बोस ने बेतार तकनीक का प्रयोग करके रेडियो तरंगों के संप्रेषण के क्षेत्र में भी अद्वितीय कार्य किया। उनकी इस खोज को भी तत्कालीन वैज्ञानिकों ने गंभीरतापूर्वक नहीं लिया। इटली के वैज्ञानिक मारकोनी ने इस विषय पर, दो वर्ष बाद पेटेंट ले लिया, अर्थात मारकोनी को रेडियो के आविष्कारक के रूप में मान लिया गया। मारकोनी ने बाद में यह कहकर स्वीकार किया कि उन्हें सर बोस के कार्यों की कुछ जानकारी थी जिसे उन्होंने अनुसंधानों द्वारा परिष्कृत किया है।

कलकत्ता में भौतिकी का अध्ययन करने के बाद बोस इंग्लैंड के कैम्ब्रिज विश्वविश्यालय चले गए जहाँ से स्नातक की उपाधि लेकर वे भारत लौटे। उन्होंने प्रेसिडेंसी कॉलेज में प्राध्यापक का पद ग्रहण कर लिया। उन दिनों अंग्रेज और भारतीय शिक्षकों के बीच भेदभाव किया जाता था। अंग्रेज अध्यापकों की तुलना में भारतीय अध्यापकों को केवल दो-तिहाई वेतन दिया जाता था। बोस अस्थाई पद पर कार्य कर रहे थे इसलिए उन्हें केवल आधा वेतन ही मिलता था। बोस इससे बहुत क्षुब्ध हुए और उन्होंने यह घोषणा कर दी कि समान कार्य के लिए वे समान वेतन ही स्वीकार करेंगे- 'मैं पूरा वेतन ही लूँगा, अन्यथा वेतन नहीं लूँगा!'

तीन साल तक बोस ने वेतन नहीं लिया। वे आर्थिक संकटों में पड़ गए और कलकत्ते का बढ़िया घर छोड़कर उन्हें शहर से दूर सस्ता मकान लेना पड़ गया। कलकत्ता काम पर आने के लिए वे अपनी पत्नी के साथ हुगली नदी में नाव खेते हुए आते थे। उनकी पत्नी नाव लेकर अकेली लौट जाती और शाम को वापस नाव लेकर उन्हें लेने आतीं। लम्बे समय तक दृढनिश्चयी पति-पत्नी इसी प्रकार नाव खेकर अपने आने-जाने का खर्चा बचाते रहे।

अंग्रेज अधिकारी लंबे समय तक बोस के झुकने का इंतजार करते रहे पर अंततः उन्हें ही झुकना पड़ा। बोस को अंग्रेज अध्यापकों के बराबर मिलनेवाला वेतन देना स्वीकार कर लिया गया।

'दि ताओ ऑफ फिजिक्स' किताब को प्रकाशित करने कोई राजी न था, क्योंकि उसमें पूरब के मनीषियों की प्रसंशा है। एक दर्जन से अधिक प्रकाशकों ने इंकार कर दिया। बामुश्किल कोई राजी हुआ। 'बेस्ट सेलर' पुस्तक हो जाने के बाद फ्रिट्जोफ कैपरा को अणु-विज्ञान खोजों से संबंधित संस्थाओं में नौकरी मिलना कठिन हो गया। अनेक वर्ष उसे आर्थिक मुसीबत में गुजारने पड़े। हम जिन्हें खुले मन वाले वैज्ञानिक कहते हैं, वे भी अति-संकीर्ण दृष्टि रखते हैं। सामान्य जन से भला क्या उम्मीद करें!

इसीलिए कहता हूं कि दुनिया की स्थिति देखकर बहुत आशा तो नहीं बंधती कि बड़े पैमाने पर वर्ण-भेदभाव खत्म होगा, लेकिन व्यक्तिगत तौर पर निश्चित ही अनेक चेतनाएं जाग्रत हो रही हैं। यह जागृति दिनोंदिन विकसित हो रही है, भविष्य में और अधिक होगी। आशा के खिलाफ आशा- 'होपिंग अगैन्स्ट होप' जारी रखो। जितनी कोशिश संभव हो, करते चलो। पूर्णता की अपेक्षा से रहित होकर, वर्तमान स्थिति से कुछ बेहतर की उम्मीद से भरो।

48 अज्ञेय का जोखिम

क्या अध्यात्म में सांसारिक अनुभवों की कोई कीमत नहीं है?

जगत में तो अनुभव कीमती हैं, मगर आत्मज्ञान में नहीं। संसार में, दुकान में, विज्ञान के विकास में निश्चित ही पुराना जाना हुआ काम आता है, लेकिन अध्यात्म में ज्ञात से मुक्त होकर अज्ञात में छलांग लेने का साहस काम आता है। अज्ञेय में कूदने की हिम्मत चाहिए।

लोक-कथा है कि प्राचीन काल में, किसी बर्फीले देश में ऐसी प्रथा थी की जब कोई व्यक्ति साठ वर्ष का हो जाता था तो उसे राज्य से बाहर जंगल में भूखों मरने के लिए भेज दिया जाता था ताकि समाज में केवल स्वस्थ और युवा लोग ही जीवित रहें। एक व्यक्ति शीघ्र ही साठ वर्ष का होने वाला था। उसका एक जवान बेटा था जो अपने पिता से बहुत प्रेम करता था। बेटा नहीं चाहता था कि उसके पिता को भी अन्य वृद्धों की भांति जंगल में भेज दिया जाये इसलिए उसने अपने पिता को घर के तहखाने में छुपा दिया और उनकी हर सुविधा का ध्यान रखा।

उस देश में सूर्योदय बहुत जल्दी हो जाता था, रात बिल्कुल छोटी होती थी। अक्सर लोगों ने सूरज को उगते-डूबते नहीं देखा होता था। ठंड के मौसम में खेतीबाड़ी का कुछ काम नहीं था, चारों ओर बर्फ जीम थी। फुरसत के दिनों में एक दिन बातचीत करते हुए, लड़के की पड़ोसियों से इस बात की शर्त लगाई की सुबह होने पर सूरज की पहली किरण कौन देखेगा? उसने अपने पिता को शर्त लगाने के बारे में बताया। उसके पिता ने उसे सलाह दी– 'ध्यान से सुनो। जिस जगह पर तुम सूरज की किरण दिखने के लिए इंतजार करो वहां सभी लोग पूरब की तरफ ही देखेंगे लेकिन तुम थोड़ा दक्षिण की ओर देखना। उस दिशा में तुम सुदूर पहाड़ों की चोटियों पर नजर रखोगे तो तुम शर्त जीत जाओगे। इस कड़ाके की ठंड में सूर्योदय दक्षिण की ओर से होता है।'

लड़के ने वैसा ही किया जैसा उसके पिता ने उसे कहा था और उसने ही सबसे पहले सूरज की किरण देख ली। जब लोगों ने उससे पूछा कि उसे ऐसा करने की सलाह किसने दी तो उसने सबको बता दिया कि उसने अपने पिता को सुरक्षित तहखाने में रखा हुआ था और पिता ने उसे हमेशा उपयोगी सलाह दीं। यह सुनकर सब लोग इस बात को समझ गए कि बुजुर्ग लोग अधिक परिपक्व और अनुभवी होते हैं और उनका सम्मान करना चाहिए। इसके बाद से राज्य से वृद्ध व्यक्तियों को जंगल में निष्कासित करना बंद कर दिया गया।

उन्होंने अच्छा किया। परंतु स्मरण रहे, यह एक नैतिक कहानी है, आध्यात्मिक नहीं। क्योंकि ज्ञात से मुक्त होकर अज्ञात में छलांग लेने का साहस अनुभवी लोगों में नहीं होता। तथाकथित परिपक्व और प्रौढ़ व्यक्ति अज्ञेय में कूदने की जोखिम नहीं उठा सकता। वह चालाक होता है, गुणा-भाग जानता है, गैर-अनुभवियों को हरा सकता है। राजनीति में देखो, सारी दुनिया में बुजुर्ग लोग छाए हुए हैं। संसार की अधिकतम शक्ति और सम्पत्ति बूढ़ों के हाथ में है। धन की संपदा उनके पास है मगर ध्यान की नहीं। अथवा, कभी-कभार अपवाद स्वरूप! और, अपवाद नियम को ही सिद्ध करता है।

अंतर्मुखी आध्यात्मिक अनुभवों का मूल्य बहिर्मुखी संसार में नहीं है। बहिर्मुखी सांसारिक अनुभवों का मूल्य अंतर्मुखी अध्यात्म में नहीं है। दोनों बिल्कुल विपरीत आयाम हैं।

49

आनंद है लक्ष्य

आपके प्रवचन सुनकर अच्छा लगता है लेकिन कभी-कभी यह समझ नहीं आता कि आप कौन सी बात मजाक में कह रहे हैं और कौन सी गंभीरतापूर्वक! कितना अच्छा हो यदि आप चुटकुले और व्यंग्यात्मक बातें न कहें तो अनेक विद्वान लोग आपके शिष्य बन सकते हैं। निवेदन है कि केवल धर्मग्रंथों के मर्म पर प्रकाश डालिए, बीच-बीच में लतीफे मत कहिए।

महाशय जी, विद्वान लोगों से बचने का उपाय ही तो कर रहा हूं। और याद रखना, बीच-बीच में लतीफे नहीं कहता हूं। बीच-बीच में धर्मग्रंथों के मर्म पर प्रकाश डालता हूं। मुख्य बात तो हंसना-हंसाना है। आनंद लक्ष्य है। मगर बिना धर्मग्रंथ का नाम लिए आप सुनोगे नहीं, इसलिए उनका उल्लेख कर देता हूं।

मैंने सुना है कि लाओत्सु अपने गधे पर सवार होकर एक शहर से दूसरे शहर जा रहा था। उसे रास्ते में राजा का दूत मिला। दूत ने लाओत्सु से कहा -'राजा ने आपके बारे में बहुत कुछ सुना है और वे आपको अपने दरबारियों में सम्मिलित करना चाहते हैं। उन्हें बुद्धिमान जनों की जरुरत है।'

लाओत्सु ने दूत से बहुत सम्मानपूर्ण व्यवहार किया और कहा- 'क्षमा करें, पर यह संभव नहीं है। राजा को धन्यवाद दें और कहें कि मैं इस अनुरोध को स्वीकार नहीं कर सकता।'

जब दूत वापस जाने लगा तब लाओत्सु ने अपने कान और अपने गधे के कानों को धोया। यह देखकर पास खड़े एक व्यक्ति ने पूछा- 'आप यह क्या कर रहे हैं?'

लाओत्सु ने कहा- 'मैं अपने कान धो रहा हूँ क्योंकि राजनीतिक गलियारों से होकर आनेवाले सन्देश अपवित्र और खतरनाक होते हैं।'

आदमी ने पूछा- 'लेकिन आपने अपने गधे के कान क्यों धोये?'

लाओत्सुने कहा- 'गधों में बड़ी राजनीतिक समझ होती है। वह पहले ही कुछ अजीब तरह से चल रहा था। जब उसने राजदूत का सन्देश सुना तो उसे स्वयं पर बड़ा अभिमान हो गया। उसने भी बड़े सपने संजो लिए। राजदरबार की विद्वत्तापूर्ण भाषा की इतनी समझ तो मुझमें भी नहीं है जितनी इस गधे में है। ऐसा शायद इसलिए है क्योंकि दरबार में भी इसके जैसे गधे ही भरे हुए हैं। इन सबकी भाषा एक समान है।'

यह सुनकर वह व्यक्ति बहुत हंसा। कहते हैं कि यह बात राजा तक भी पहुंची और इसे सुनकर राजा भी बहुत हंसा।

ऐसा था चीन का महान संत लाओत्सु। उसकी बातें सुनकर सभी हंसते थे। वह अपने समय का सबसे ज्ञानी, सबसे विलक्षण, और बच्चों जैसा भोला-भाला आदमी था। किसी ने भी उसे गंभीरता से नहीं लिया। उसने लोगों को कभी भी इतना प्रभावित नहीं किया कि वे उसकी शिक्षाओं को सहेजने के बारे में गंभीरता से सोचते। उसने अपने पीछे कोई धर्म या संघ नहीं छोड़ा। वह सदैव अकेला ही रहा और इसी वजह से शुद्धतम बना रह सका। उसकी गैर-गंभीर

जीवन शैली से कोई संगठन नहीं पैदा हो सकता था, पंडित-पुरोहितों का व्यवसाय भी नहीं पनप सकता था। यही अंततः सौभाग्य साबित हुआ।

आपने लिखा है कि 'कभी-कभी यह समझ नहीं आता कि आप कौन सी बात मजाक में कह रहे हैं और कौन सी गंभीरतापूर्वक!' बिल्कुल आसान है समझना। जब मैं कोई बात हंसकर कहूं तो जानना कि गंभीर मुद्दा है। जब गंभीर चेहरा बनाकर समझाऊं तो पहचान लेना कि चुटकुला है। महाशय जी, अब चलो, आपके विद्वान दरबारी मित्रों के लिए भी कुछ भेंट दे दूं-

ढब्बू जी अपने मित्र चंदूलाल से कह रहे थे कि विवाह मैं इसलिए नहीं करना चाहता, क्योंकि मुझे स्त्रियों से बहुत डर लगता है।

चंदूलाल ने उसे समझाया और कहा, यह बात है तब तो तुरंत विवाह कर डालो। मैं तुम्हें अनुभव से कहता हूं, क्योंकि विवाह के बाद एक ही स्त्री का भय रह जाता है।

संता अस्पताल में भर्ती था, बंता उसकी हालत जानने पहुंचा।

बंताः ओए, ये सब कैसे हो गया?

संताः यार, कल एक आदमी अपनी पत्नी को पीट रहा था।

बंताः तो तू अस्पताल में कैसे पहुंचा?

संताः पता नहीं। मैंने ललकार कर उससे कहा, क्या अबला औरत को पीट रहे हो, हिम्मत है तो किसी मर्द से लड़ो। फिर जब मुझे होश आया तो मैं इस अस्पताल में था।

मटकानाथ ब्रह्मचारी ने दुबले-पतले ढब्बू जी और उनकी भारी-भरकम पत्नी को समझाते हुए कहा, तुम्हें लड़ना नहीं चाहिए। पति-पत्नी गृहस्थ जीवन रूपी गाड़ी के दो पहियों के समान होते हैं।

ढब्बू जी बोले, गुरुदेव, यह बात तो ठीक है, परंतु जब एक पहिया साइकिल का हो और दूसरा ट्रैक्टर का, तो आप ही बताइए जिंदगी की गाड़ी कैसे चलेगी?

चंदूलाल को सरकारी काम से पंद्रह दिन के लिए बंबई जाना पड़ा। सरकारी भत्ते पर ही उन्हें एक आलीशान होटल में रहने को मिला। पांच-छह दिन में ही वे बहुत परेशान हो उठे। एक दिन झल्लाकर वेटर से गुस्से में बोले, सुनो मिस्टर, मेरे लिए जल्दी से दो जली हुई रोटियां, एक प्लेट कंकड़ों से भरी हुई दाल, एक प्लेट अधकच्चे चावल और बुरी तरह जली हुई मिर्चदार सब्जी लेकर आओ।

वेटर ने बाइज्जत सिर झुकाकर पूछाः साहब, कुछ और?

चंदूलाल बोलेः हां, सब चीजें लाने के बाद तुम मेरे सामने की कुर्सी पर बैठकर घर-गृहस्थी का रोना रोओ, मेरा सिर चाटो, मुझे सताओ, क्योंकि मुझे घर की याद सता रही है!

नसरुद्दीन ने अपने पोते से कहा- बेटे, जल्दी से छुप जाओ, आज तुम स्कूल से भागकर आये हो, और मैंने खिड़की से देखा कि तुम्हारे प्रिंसिपल साहब और सभी शिक्षक अपने घर ही आ रहे हैं!

पोता बोला- आप छुप जाईये, क्योंकि उन्होंने छुट्टी तब दी जब मैंने उन्हें बताया कि मेरे दादाजी का देहांत हो गया है!

50

स्व-निर्मित कारागृह

क्या यह कहावत सच है कि मकड़ी अपने ही जाल में फंस जाती है?

यहां कोई दूसरा है ही नहीं जो जाल बुन रहा हो! हम अपने ही द्वारा निर्मित बंधनों में जकड़े हुए हैं। मैंने सुनी है स्विट्जरलैंड की एक लोक-कथा, किसी किसान ने दूध से भरा जग अपने पड़ोसी को कुछ देर के लिए सहेजकर रखने के लिए दिया। जब वह अपना जग वापस मांगने के लिए गया तो पड़ोसी ने उससे कहा कि दूध मक्खियाँ पी गईं।

इस बात पर दोनों का झगड़ा हो गया। बात बहुत बढ़ गई तो वे दोनों अदालत गए और वहां पर न्यायाधीश ने यह फैसला सुनाया कि पड़ोसी को दूध का हर्जाना भरना पड़ेगा।

'लेकिन मैंने दूध नहीं पिया, दूध तो मक्खियों ने पी लिया!'- पडोसी बोला।

'तुम्हें मक्खियों को मार देना चाहिए था'- न्यायाधीश ने कहा।

'अच्छा'- पडोसी बोला- 'आप मुझे मक्खियों को मारने की इजाजत देते हैं?'

'मैं इजाजत देता हूँ'- न्यायाधीश ने कहा- 'तुम उन्हें जहाँ भी देखो, उन्हें तुरंत मार डालो।'

संयोगवशात् उसी समय एक मक्खी उड़ती हुई आई और न्यायाधीश के गाल पर बैठ गई। पड़ोसी ने यह देखा तो पलक झपकते ही न्यायाधीश के गाल पर एक जोरदार थप्पड़ जमा दिया। मक्खी मरकर नीचे गिर गई और न्यायाधीश तिलमिला गया।

कुछ क्षणों पहले ही न्यायाधीश ने पड़ोसी को मक्खी मारने के लिए अनुमति दी थी इसलिए अब वह कुछ नहीं कर सकता था। अपना ही बनाया नियम उसे मंहगा पड़ गया।

कम से कम धर्म के जगत में यह कहावत सच है- कोई दूसरा नहीं है जो हमारे लिए जाल बुन रहा है! हम अपने ही द्वारा निर्मित बंधनों में जकड़े हुए हैं। लेकिन निराश न होना, इसमें ही आशा का सूत्र भी छिपा है। व्यक्ति जब चाहे, तत्क्षण जाल से छूट सकता है। कारागृह के बाहर आ सकता है।

कोई पहरेदार नहीं है, द्वार पर कोई ताला भी नहीं लगा है। वास्तव में यह बिना दीवार वाला जेल है। खुले आकाश के नीचे सोये हुए हम बंदी होने का सपना देख रहे हैं। मूर्च्छा ही हमारी आत्मा की रात्रि बन गई है।

इसीलिए तो संत कहते हैं– 'जब जागो तभी सवेरा!'

आत्म-ज्ञान का उपयोग

निर्विचार जागरूकता के विषय में आपके प्रवचन सुनकर मुझे लगा कि इसमें भला क्या विशेष बात है? इससे मानव जाति के कल्याण का क्या संबंध है? अगर यहीं ध्यान है, अध्यात्म का मूल संदेश; तो फिर ऐसे धर्म का इस जगत में क्या उपयोग होगा? मेरे विचार से तो इसमें उत्सुकता पैदा होना या इसे पाने की चेष्टा करना हीं व्यर्थ है।

मित्र, यह भी आपका विचार ही है कि निर्विचार में उत्सुकता पैदा होना या इसे पाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। निर्विचार जागरूकता के विषय में प्रवचन-श्रवण मात्र नहीं, केवल अध्ययन-मनन नहीं, अनभूति घट जाए; तब बात करना। अभी आपने जिस स्वाद को नहीं चखा, इसके बारे में वक्तव्य देना अपरिपक्वता का लक्षण है।

ध्यान ही है अध्यात्म का मूल संदेश। निर्विचार जागरूकता से जो शांति फलित होती है, परमानंद की उपलब्धि होती है, उसके अतिरिक्त जीवन में न कोई सार्थकता है, न हो सकती। उस आंतरिक संपदा को प्राप्तकर ही जगत का कल्याण संभव है। अन्यथा विचारों की भीड़ में मूर्च्छित लोग, राजनेता, वैज्ञानिक; सब मिलकर दुनिया को 'ग्लोबल सुसाइड', जागतिक आत्मघात की कगार पर ले आए हैं। ध्यान-रहित सभ्यता, अशांत संस्कृति अंततः अंतिम विश्वयुद्ध की दिशा में अग्रसर है। सच पूछो तो अभी हम सभ्य और सुसंस्कृत हुए ही नहीं। शांति, प्रेम, भाईचारा, परस्पर सहयोग की भावना, मैत्री, प्रफुल्लता, करुणा आदि जो भी महान सद्गुण हैं; वे सब ध्यान-वृक्ष के फल-फूल हैं। निर्विचार जागरूकता ध्यान का बीज है। आपको इसका महत्त्व समझ नहीं आ रहा, आश्चर्य नहीं। सात अरब लोगों में से बहुमत आपके संग ही है।

सुनो, इस घटना से शायद आपको बात ख्याल में आए। विद्युत् व्यवस्था की खोज में कई लोगों का योगदान है लेकिन इसमें सबसे बड़ी खोज माइकल फैराडे ने की। फैराडे ने डायनेमो का आविष्कार किया जिसके सिद्धांत पर ही जेनरेटर और मोटर बनते हैं। विज्ञान के इतिहास में माइकल फैराडे और थॉमस अल्वा एडिसन ऐसे महान अविष्कारक हैं जो गरीबी और लाचारी के कारण जरूरी स्कूली शिक्षा भी नहीं प्राप्त कर सके।

डायनेमो या जेनरेटर के बारे में जानकारी रखनेवाले यह जानते हैं कि यह ऐसा यंत्र है जिसमें चुम्बकों के भीतर तारों की कुंडली या कुंडली के भीतर चुम्बक को घुमाने पर विद्युत् बनती है। एक बार फैराडे ने अपने सरल विद्युत् चुम्बकीय प्रेरण के प्रयोग की

प्रदर्शनी लगाई। कौतूहलवश इस प्रयोग को देखने दूर-दूर से लोग आए। दर्शकों की भीड़ में एक औरत भी अपने बच्चे को गोदी में लेकर खड़ी थी। एक मेज पर फैराडे ने अपने प्रयोग का प्रदर्शन किया। तांबे के तारों की कुंडली के दोनों सिरों को एक सुई हिलानेवाले मीटर से जोड़ दिया। इसके बाद कुंडली के भीतर एक चुम्बक को तेजी से घुमाया। इस क्रिया से विद्युत् उत्पन्न हुई और मीटर की सुई हिलने लगी। यह दिखाने के बाद फैराडे ने दर्शकों को बताया कि इस प्रकार विद्युत् उत्पन्न की जा सकती है।

यह सुनकर वह महिला क्रोधित होकर चिल्लाने लगी- 'यह भी कोई प्रयोग है? यही दिखाने के लिए तुमने इतनी दूर-दूर से लोगों को बुलाया! इसका क्या उपयोग है?'

यह सुनकर फैराडे ने विनम्रतापूर्वक कहा- 'मैडम, जिस प्रकार आपका बच्चा अभी छोटा है, मेरा प्रयोग भी अभी शैशवकाल में ही है। आज आपका बच्चा कोई काम नहीं करता अर्थात उसका कोई उपयोग नहीं है, उसी प्रकार मेरा प्रयोग भी आज निरर्थक लगता है। लेकिन मुझे विश्वास है कि मेरा प्रयोग एक-न-एक दिन बड़ा होकर बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।'

यह सुनकर वह महिला चुप हो गई। फैराडे अपने जीवनकाल में विद्युत् व्यवस्था को पूरी तरह विकसित होते नहीं देख सके लेकिन अन्य वैज्ञानिकों ने इस दिशा में सुधार व खोज करते-करते उनके प्रयोग की सार्थकता सिद्ध कर दी। क्या आप विद्युत् के बिना जीवन की कल्पना कर सकते हैं? एक घंटे के लिए बिजली गोल हो जाए तो लोग बुरी तरह से परेशान हो जाते हैं। हमारे देश में एक दिन के लिए बिजली गोल हो जाए तो हाहाकार मच जाए। सारी जीवन व्यवस्था ही ठप्प हो जाए।

निर्विचार जागरूकता के बिना पृथ्वी का भविष्य नहीं है। ध्यान की सुगंध अगर शीघ्र सारे जगत में न फैली तो मनुष्य बच न सकेगा। ध्यान के महत्त्व को पहचानो- यह आत्मा का विज्ञान है। पदार्थ का विज्ञान तो विकसित हो गया, वह मंदबुद्धि को भी तुरंत उपयोगी नजर आ जाता है। किंतु आत्म-ज्ञान का भी कोई उपयोग है, इसे समझने के लिए गहन बुद्धिमत्ता चाहिए।

दोनों ज्ञान, बाहरी और भीतरी, संग-साथ फलते-फूलते होते तो कोई समस्या न होती। लेकिन मुश्किल यह है कि विज्ञान खूब बढ़ गया, विराट शक्ति हाथ में आ गई; और ध्यान उपेक्षित रह गया, शांति खो गई। अशांत आदमी के हाथ में शक्ति खतरनाक है। इसलिए जितनी जरूरत आज है, ध्यान की ऐसी अनिवार्यता पहले कभी न थी। समय रहते जागो।

सच्ची धर्म-साधना

एक गांव में बाढ़ आ गई। घरों में पानी भरने लगा तो गांव के लोग जान बचाने के लिए सुरक्षित स्थानों की तरफ चले गये। केवल एक आदमी, जो भगवान का बड़ा भक्त था, अपने घर में फंसा रह गया। जब पानी ज्यादा बढ़ने लगा तो वह छत पर चढ़ गया और भगवान से प्रार्थना करने लगा। तभी एक नाव उसके घर के पास से गुजरी। नाव पर सवार आदमी ने चिल्लाकर उसे नाव पर आने के लिए कहा पर आदमी ने मना कर दिया। बोला- मुझे अपने भगवान पर पूरा विश्वास है। वे मुझे जरूर बचा लेंगे। तुम जाओ।

नाव वाला नाव लेकर चला गया। आदमी फिर प्रार्थना करने लगा। करीब एक घंटे बाद एक मोटरबोट उसकी तरफ आई। मोटरबोट सवार ने भी उस आदमी से चलने का अनुरोध किया पर उस आदमी ने उसे भी मना कर दिया- नहीं भाई। तुम जाओ। मेरे प्रभु मुझे बचाने अवश्य आएंगे। और फिर प्रार्थना में तल्लीन हो गया।

कुछ देर बाद एक हेलिकॉप्टर वहां से गुजरा। छत पर खड़े अकेले आदमी को देखकर उन्होंने रस्सी उसकी ओर फेंकी और हेलिकॉप्टर पर आने का इशारा किया। पर उस आदमी ने उनकी भी मदद लेने से इनकार कर दिया। बोला- आप लोग चिन्ता न करें। मेरे भगवान मुझे बचा लेंगे।

अंततः पानी छत पर आ गया और उस आदमी की डूबकर मौत हो गई।

परलोक पहुंचने पर वह सीधा भगवान के सामने जा खड़ा हुआ और फट पड़ा- भगवान! ये आपने ठीक नहीं किया! मैंने सच्चे मन से आपकी प्रार्थना की! आप पर भरोसा किया, इसके बावजूद आपने मुझे नहीं बचाया! आखिर क्यों?

भगवान आवेश में आकर बोले- 'अरे मूर्ख! मैंने तुझे बचाने के लिए एक नाव, एक मोटरबोट और एक हेलिकॉप्टर भेजा! और तुझे क्या चाहिए था।?'

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। सभी व्यक्तियों के भीतर से कार्य कर रही शक्ति है। ओशो कहते हैं कि 'भगवान' शब्द की जगह 'भगवत्ता' शब्द का प्रयोग करना बेहतर है। सारा जगत भगवत्ता से, भागवत् गुणवत्ता से ओत–प्रोत है।

भगवान को पूजना नहीं, भगवत्ता को जीना है। देवी–देवताओं से प्रार्थना नहीं करनी, रोम–रोम से दिव्यता को पीना है। दिव्य गुण हमारी चेतना में मौजूद हैं, अधिक संवेदनशील बनकर उनमें डूबना है। आनन्दमग्न होना है। यही सच्ची धर्म–साधना है।

53

साधारण असाधारणता

मै प्रतिदिन प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि सत्यं शिवं सुंदरं की दिशा में जीवन को ले जाने वाले सद्गुरु ओशो का नाम भावी इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जाए। उनका सपना साकार हो।

आपको ख्याल नहीं है कि आप परस्पर-विपरीत आकांक्षा कर रहे हैं। अगर सपना साकार हो गया तो नाम स्वर्णाक्षरों में नहीं बच सकता। जिस दिन मनुष्य सत्यं शिवं सुंदरं में, सत् चित् आनंद में जीने लगेगा, उस दिन ओशो का नाम विलीन हो जाएगा। शायद आपने ऐसा कभी सोचा न होगा! सुनो यह प्रसंग-

गर्मियों की भोर में खुले आकाश के नीचे, सीटा के ईसाई मठ के महंत लूकास ने एक दिन सभी शिष्यों के संग प्रार्थना करते हुए कहा- 'हे ईश्वर, ऐसी अनुकंपा करो कि हम सभी भुला दिए जाएं। दुनिया में कोई हमारा नामलेवा न रहे'। 'यह आप क्या कह रहे हैं?'- शिष्यों में से एक बोला- 'क्या इसका अर्थ यह है कि कोई भी हमसे जगत के कल्याण करने की सीख नहीं ले पाएगा? प्रेम और भाईचारे को लोग विस्मृत कर देंगे?'

महंत ने कहा- 'तुम जानते हो कि पुराने जमाने में सभी प्रकृति के मार्ग पर चलते थे और ऐसा कोई भी नहीं था जिसके चरित्र और व्यवहार को सब अनुकरणीय मानते। सभी स्वभाव के अनुसार जीते थे। शुभ कर्म करते समय कोई यह नहीं सोचता था कि उन्हें धर्मसम्मत कार्य करने के निर्देश दिए गए हैं। वे अपने पड़ोसी से इसलिए प्रेम करते थे क्योंकि ऐसा होना जीवन का अनिवार्य अंग था। वे शास्त्रों का नहीं, सिर्फ नैसर्गिक नियमों का पालन ही तो करते थे! वे कर्त्तव्य समझकर नहीं, सहजता से जीवन जीते थे।

'वे आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह नहीं करते थे क्योंकि जानते थे कि वे इस दुनिया में केवल एक अतिथि के रूप में आये हैं और ज्यादा बोझ ढोना उचित नहीं है। वे एक-दूसरे के साथ स्वतंत्रतापूर्वक चीजों का आदान-प्रदान करते थे। न तो वे किसी व्यक्ति, वस्तु या जमीन पर अधिकार जताते थे, न ही वे किसी से ईर्ष्या रखते थे। यही कारण है कि उनके जीवन के किसी भी पक्ष के बारे में कुछ भी कहा-लिखा नहीं गया। उनका इतिहास भी नहीं है और उनका वर्णन किस्से-कहानियों में भी नहीं मिलता। जब अच्छाई हवा-पानी जैसी सर्वसुलभ और साधारण हो जाती है तो उसका पालन करनेवालों की प्रशंसा कौन करेगा?'

सदियां बीत गईं, मगर उस ईसाई मठ के महंत लूकास का नाम आज भी अविस्मरणीय है। यह प्रमाण है कि मनुष्य सत्यं शिवं सुंदरं में, सत् चित् आनंद में जीने की कला नहीं सीख पाया। रुग्ण, दुखद मानसिकता मिट जाए तो आनंद का अनुभव, सहज स्वास्थ्य जैसा अदृश्य हो जाएगा। दुख नहीं तो कैसा आनंद? झूठ नहीं, तो सत्य कहां? मूर्च्छा नहीं तो चित् यानि क्या?

चैतन्य ही चैतन्य, शिवं ही शिवं हो, तो उनका अनुभव बंद हो जाएगा। अलग से कुछ पता नहीं चलेगा। बुराई की काली बदलियों के बीच ही अच्छाई की श्वेत विद्युत चमकती है। कुरूपताओं के मध्य प्रगट हुआ सौंदर्य यादगार बन जाता है। चालाक भीड़ में यदा-कदा जन्मा कोई सरल इंसान साधु कहलाता है। दुष्ट समाज में कोई विरला सज्जन स्मरणीय और आदरणीय हो जाता है। चलो, लूकास की भांति हम फिर-फिर मंगलकामना करें कि ऐसे दिन पुनः आ जाएं जब लूकास एवं ओशो जैसे स्वाभाविक लोगों पर पूज्य, महापुरुष, अवतार, भगवान, तीर्थंकर, ईश्वर-पुत्र, पैगम्बर या सद्गुरु का लेबल चिपकाने की जरूरत न रह जाए। क्योंकि सभी लोग उन जैसे ही हों! असाधारणता, साधारण घटना हो, उनका सपना साकार हो।

54

दूर से देखना

जीवन में इतने उलझाव हैं, कैसे सुलझाएं?

मित्र, जीवन में उलझाव नहीं हैं, मन में उलझाव हैं। और सुलझने का सुगम उपाय है, मन से दूरी अर्थात् ध्यान!

बहुत पुरानी कहानी है। अफ्रीका के किसी भूभाग में अनानसी नामक एक पंडितजी रहते थे। पूरे इलाके में वही सबसे बुद्धिमान मनुष्य थे और सभी लोग उससे सलाह और मदद मांगने आते थे। वे बड़े घमंडी थे, मगर उन्हें एक बात का दुख था कि उनका पुत्र सरासर बुद्धू था।

एक दिन अभिमानी अनानसी किसी बात पर दूसरे मनुष्यों से नाराज हो गया और उसने उन्हें दंड देने की सोची। बहुत सोचने के बाद उसने यह तय किया कि वह अपना सारा ज्ञान उनसे हमेशा के लिए छुपा देगा ताकि कोई और मनुष्य ज्ञानी न बन सके। उसी दिन से उसने अपना सारा ज्ञान बटोरना शुरू कर दिया। जब उसे लगा कि उसने दुनिया में उपलब्ध सारा ज्ञान बटोर लिया है तब उसने सारे ज्ञान को मिटटी के एक मटके में बंद करके अच्छे से सीलबंद कर दिया। उसने यह निश्चय किया कि उस मटके को वह ऐसी जगह रखेगा जहाँ से कोई और मनुष्य उसे प्राप्त न कर सके।

अनानसी के बुद्धू बेटे को धीरे-धीरे यह अनुभव होने लगा कि उसका पिता किसी संदिग्ध कार्य में लिप्त है इसलिए उसने अनानसी पर नजर रखनी शुरू कर दी। एक दिन उसने अपने पिता को एक मटका लेकर दबे पांव झोपडी से बाहर जाते देखा। बुद्धू बेटे ने अनानसी का पीछा किया। अनानसी गाँव से बहुत दूर एक जंगल में गया और उसने मटके को सुरक्षित रखने के लिए एक बहुत ऊंचा पेड़ खोज लिया। अपना ज्ञान दूसरों में बंट जाने की आशंका से भयभीत अनानसी मटके को अपनी आँखों के सामने ही रखना चाहता था इसलिए वह अपनी छाती पर मटके को टांगकर पेड़ पर चढ़ने लगा। इस तरह अपनी छाती पर मटका टांगकर पेड़ पर चढ़ना तो लगभग नामुमकिन ही था! उसने कई बार पेड़ पर चढ़ने की कोशिश की लेकिन वह जरा सा भी न चढ़ पाया। सामने की ओर मटका टंगा होने के कारण वह पेड़ को पकड़ ही न पा रहा था।

कुछ देर तक तो बुद्धू बेटा अपने पिता को पेड़ पर चढ़ने का अथक प्रयास करते देखता रहा। जब उससे रहा न गया तो वह चिल्लाकर बोला- 'पिताजी, आप मटके को

अपनी पीठ पर क्यों नहीं टांगते? तब आप पेड़ पर आसानी से चढ़ पायेंगे!'

अनानसी मुड़ा और बोला- 'मुझे तो लगता था कि मैंने दुनिया का सारा ज्ञान इस मटके में बंद कर लिया है! लेकिन तुम तो मुझसे भी ज्यादा ज्ञानी हो! मेरी सारी बुद्धि मुझे वह नहीं समझा पा रही थी जो तुम दूर बैठे ही जान रहे थे!'

बुद्धू बेटे ने कहा- पिताजी, शायद समस्या को दूर से देखना आसान होता है!

अनानसी को बुद्धू बेटे के इस बेतुके जवाब पर बहुत गुस्सा आया और क्रोध में उसने मटका जमीन पर पटक दिया। जमीन पर गिरते ही मटका टूट गया और उसमें बंद सारा ज्ञान उसमें से निकलकर पूरी दुनिया में फैल गया। ज्ञान की लूटपाट मच गई और बहुत सारे मनुष्य बुद्धिमान पंडित बन गए।

गौतम बुद्ध भी यही कहते हैं कि समस्या को दूर से देखना आसान होता है! उसी निष्पक्ष, तटस्थ दूरी का नाम साक्षी भाव है। अति-निकट होने पर हम समस्या में लिप्त होकर उलझ जाते हैं।

सुलझने का सुगम उपाय है निर्लिप्तता, द्रष्टाभाव, निर्विचार सजगता, मन से दूरी अर्थात् ध्यान!

त्याज्य है कर्ताभाव

ओशो ने अपने संन्यासियों को काम–धाम छोड़ने का निर्देश क्यों नहीं दिया?

जब परमात्मा तक ने काम-धाम नहीं त्यागा, वह निरंतर सृजन में संलग्न है; तो उसे चाहने वाले भला क्यों त्यागें? कर्म छोड़ा भी नहीं जा सकता। वह जीवन का अनिवार्य अंग है। एक कर्म के स्थान पर दूसरा कर्म आ जाएगा। दुकान न चलाओगे, आश्रम या मठ चलाओगे। बच्चों की चिंता न करोगे, तो शिष्य-शिष्याओं की करोगे। घर में नहीं तो मंदिर में या गुफा में जा बसोगे। गुफा पुराने ढंग का घर है, घर आधुनिक किस्म की गुफा है।

हां, कर्ताभाव अवश्य त्याज्य है। ओशो अपने संन्यासियों को वही उपदेश देते हैं। अहंकार छोड़ने योग्य है कि 'मैं करने वाला हूं'। जानो कि मैं निमित्त मात्र हूं।

किसी गांव के पास एक कुटिया में हरिदास नामक साधु रहते थे। उनके पास कुछ जमीन थी, जिस पर वह खेती करते थे। उससे भी जब कभी खाने लायक नहीं मिल पाता तो वह गांव में मजदूरी भी कर लेते थे। एक बार जबर्दस्त बारिश हो रही थी। तभी बाहर से आवाज आई, 'साधु महाराज! क्या सो गए?'

हरिदास ने द्वार पर आकर देखा कि कुछ साधु बाहर खड़े हैं। हरिदास उन्हें आदरपूर्वक अन्दर ले गए, फिर बोले, 'प्रिय अतिथियो, आपका स्वगत है किंतु आज मेरे पास भोजन की व्यवस्था नहीं है। खेत में जो कुछ पैदावार हुई वह खत्म हो गई। बरसात की वजह से कहीं मजदूरी भी नहीं मिली।'

अतिथि साधुओं ने आश्चर्य से पूछा, 'महाराज, क्या गांव से कुछ खाने-पीने को नहीं मिलता?' हरिदास ने हंसते हुए कहा, 'मिलता तो बहुत है, लेकिन मैं नहीं लेता।' उन साधुओं ने इसका कारण पूछा तो हरिदास ने कहा, 'किसान काफी मेहनत करके फसल उगाते हैं, मैं उनकी मेहनत की कमाई मुफ्त में कैसे ले सकता हूं?'

इस पर अतिथि साधु बोले, 'पर आप तो साधु हैं फिर आप दान-दक्षिणा क्यों नहीं लेते? आपको मेहनत करने की क्या जरूरत है?' हरिदास ने कहा, 'मुझे तो लगता है कि एक साधु को अपनी मेहनत से जीवन यापन करना चाहिए। हम दूसरों की कमाई भला क्यों खाएं। हमें अपने आचरण से दूसरों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। मेहनत से भागकर ईश्वर की उपासना का कोई अर्थ नहीं है। कर्म ही पूजा है।'

अतिथि साधु निरुतर रह गए। वे यह समझ लेकर वहां से विदा हुए कि अब वे भी आगे से श्रम की कमाई ही खाएंगे, भीख मांगकर नहीं। कर्ताभाव से मुक्त होकर वे निमित्त मात्र हो गए और समर्पण भाव से कर्म करते हुए फलाकांक्षा रहित हो गए।

परमात्मा स्रष्टा रूपी व्यक्ति नहीं, सृजनात्मक जीवंत शक्ति है। यह धारणा नितांत भ्रांत है कि छः दिन में उसने सृष्टि की रचना की, और सातवें दिन रविवार को विश्राम किया। तब से अभी तक छुट्टी ही मना रहा है? मुल्ला नसरुद्दीन कहता है कि खुदा अत्यंत 'बिजी' है, इसीलिए उसने सारी स्त्रियों को अपना काम बांटा हुआ है। नसरुद्दीन की नई थ्योरी के मुताबिक महिलाएं बिल्कुल निश्चिंत हो जाएं कि मरणोपरांत उनका क्या होगा?

'अल्लाह घर-घर जाकर हर मासूम बच्चे की देखभाल नहीं कर सकता, उन्हें प्यार का मजा नहीं दे सकता, इसलिए उसने मां बनाई।'

'बेचारा व्यस्त अल्लाह घर-घर जाकर हर जवां मर्द को उसके गुनाहों की सजा भी नहीं दे सकता, इसलिए उसने पत्नी बनाई।'

मुल्ला नसरुद्दीन आगे फरमाता है कि 'इस जहां की सारी औरतें खुदा के द्वारा दिए इन दो कर्त्तव्यों को बखूबी निभाती हैं, अतः उन्हें मरने के बाद जन्नत बेशक मिलेगी, चाहे वे धार्मिक हों या अधार्मिक! और कामचोर आलसियों को वहां भेजा जाएगा जहां कोई महिलाएं नहीं होंगी- यानि जहन्नुम में!!'

मृत्यु क्यों?

प्रभु यदि करुणावान है तो फिर जगत में मृत्यु क्यों होतीं है?

प्रभु करुणावान है इसीलिए तो मृत्यु होती है। मृत्यु न हो तो जन्म कैसे होगा? डंडे का एक छोर न हो तो डंडे का दूसरा छोर भी नहीं हो सकता। पतझड़ न आए, पुराने पत्ते न गिर जाएं तो नई कोपलें कैसे फूटेंगी, वसंत कैसे आएगा? अस्तित्व ने अति-सुंदर रचना की है। इससे बेहतर कल्पना करना भी नामुमकिन है।

मैंने अदम और ईव के बारे में एक कथा सुनी है कि जब दुनिया नई-नई बनी थी और प्रथम युवा आदमी अपनी सुंदर पत्नी के साथ टहल रहा था। युवक ने युवती से कहा- 'चलो, हम यह तय करते हैं कि यह दुनिया कैसे चले।'

'ठीक है'- युवती ने कहा- 'यह कैसे होगा?'

युवक ने कहा- 'चूंकि यह बात मेरे मन में पहले आई है इसलिए किसी भी मामले में मेरी बात पहले मानी जाएगी'।

'ठीक है'- युवती बोली- 'फिर तुम्हारे बाद मैं जो भी कहूं उसे मान लिया जायेगा।' पति इससे सहमत हो गया।

वे अपने आसपास देखते हुए घूमते-फिरते रहे। युवक ने कहा- 'मैं शिकार के तरीके के बारे में सोच रहा हूं। आदमी शिकार किया करेंगे। जब भी वे किसी जानवर को पकड़ना चाहेंगे तो उसे इशारा करके अपने पास बुला लिया करेंगे। जानवर के पास आ जाने पर उसका शिकार कर लेंगे।'

'मैं यह बात तो मानती हूं कि आदमी शिकार करेंगे'- युवती ने कहा- 'लेकिन यदि जानवर इस तरह इशारा करने पर ही पास आने लगेंगे तो लोगों का जीवन बहुत आसान हो जायेगा। मैं चाहती हूं कि मनुष्यों को देखकर जानवर डर के भाग जाएं। इस तरह उनका शिकार करना मुश्किल हो जायेगा और आदमी हमेशा मजबूत और होशियार बने रहेंगे।'

'जैसा हम तय कर चुके हैं, तुम्हारी बात तो माननी ही पड़ेगी' -दुनिया के प्रथम पति ने कहा। इस प्रकार उस आदिकाल में ही पति को जोरू का गुलाम होने की परंपरा निकली। शिकार के बारे में निर्णय करके फिर वे घमते-फिरते रहे।

कुछ समय बाद युवक ने फिर कहा- 'मैं लोगों के नाक-नक्श के बारे में सोच रहा हँू। उनके सर के एक ओर आँखें होंगी और दसरी ओर मुंह। उनके हर हाथ में दस उंगलियाँ होनी चाहिए।'

'मैं भी यह मानती हँ कि लोगों के सर में आँखें और मुंह होना चाहिए'- युवती ने कहा- 'लेकिन उनकी आँखें एक ओर ऊपर की तरफ होंगी और उनका मुंह उसी ओर कुछ नीचे होना चाहिए। उनके हांथों में उंगलियाँ होनी चाहिए पर हर हाथ में दस उंगलियाँ होने से कामकाज में अड़चन होगी इसलिए हर हाथ में पांच उंगलियाँ होना ठीक रहेगा।'

'तुम्हारी बात तो माननी ही पड़ेगी'- युवक बोला।

चलते-चलते वे नदी के पास आ गए। 'चलो अब जिंदगी और मौत के बारे में भी तय कर

लेते हैं'- युवक ने कहा- 'इसके लिए मैं इस नदी में भैंस की खाल फेंकूंगा। यदि यह तैरती रहेगी तो लोग मरने के चार दिनों के बाद फिर से जिन्दा हो उठेंगे और फिर हमेशा जीते रहेंगे।'

युवक ने नदी में खाल फेंक दी। एक डुबकी लगाने के बाद खाल नदी की सतह पर आ गयी। युवती ने कहा- 'मैं इस तरीके से सहमत हूं पर मुझे लगता है कि इस काम के लिए भैंस की खाल का उपयोग ठीक नहीं है। उसके बजाय मैं यह पत्थर नदी में फेंकूंगी। यदि यह तैरता रहेगा तो लोग मरने के चार दिनों के बाद फिर से जिन्दा हो उठेंगे और फिर हमेशा जीते रहेंगे, लेकिन यदि यह डूब जायेगा तो लोग मरने के बाद कभी वापस नहीं आयेंगे।'

युवती ने पत्थर नदी में फेंक दिया और वह एकदम से डूब गया।

'तो ऐसा ही होगा'- युवती ने कहा- 'यदि लोग हमेशा जीवित रहेंगे तो दुनिया में बहुत भीड़ हो जाएगी और खाने की कमी भी पड़ जाएगी। जब लोग मरने के बाद वापस नहीं आयेंगे तो लोगों को उनकी कमी खलेगी और दुनिया में सहानुभूति, प्रेम, करुणा का अभाव नहीं होगा।'

तभी आकाश से आवाज आई- 'तथास्तु!'

कुछ साल बीत गए। युवती ने एक बच्चे को जन्म दिया। युवक और युवती अपने बच्चे पर जान छिड़कते थे। वे बहुत खुश थे। फिर एक दिन बच्चा बहुत बीमार पड़ गया और उसकी मौत हो गयी।

युवती रोते-रोते अपने पति के पास गयी और उससे बोली- 'चलो हम जिंदगी और मौत के बारे में फिर से तय कर लेते हैं।'

युवक ने बहुत नाउम्मीदी से कहा- 'अब कुछ नहीं हो सकता। अस्तित्व की तरफ से हमारी मांगों पर 'तथास्तु' की मुहर लग चुकी है।'

प्रभु करुणावान है इसीलिए मृत्यु होती है। ताकि पतझड़ के पश्चात् पुनः वसंत आ सके। अस्तित्व की इस प्यारी रचना के प्रति अनुग्रहीत होना सीखो। महाकवि हरिवंशराय बच्चन की प्रथम पत्नी की मृत्यु हो गई थी। फिर किसी से प्रेम हुआ, विवाह किया। उनका लिखा यह गीत सुनो-

जो बीत गई, सो बात गई।

जीवन में एक सितारा था
माना वह बेहद प्यारा था
वह डूब गया तो डूब गया
अम्बर के आनन को देखो
कितने इसके तारे टूटे
कितने इसके प्यारे छूटे
जो छूट गए फिर कहाँ मिले
पर बोलो टूटे तारों पर
कब अम्बर शोक मनाता है
जो बीत गई सो बात गई

जीवन में वह था एक कुसुम
थे उसपर नित्य निछावर तुम
वह सूख गया तो सूख गया
मधुवन की छाती को देखो
सूखी कितनी इसकी कलियाँ
मुर्झाईं कितनी वल्लरियाँ
जो मुर्झाईं फिर कहाँ खिली
पर बोलो सूखे फलों पर
कब मधुवन शोर मचाता है
जो बीत गई सो बात गई

जीवन में मधु का प्याला था
तुमने तन मन दे डाला था
वह टूट गया तो टूट गया
मदिरालय का आँगन देखो
कितने प्याले हिल जाते हैं
गिर मिट्टी में मिल जाते हैं
जो गिरते हैं कब उठतें हैं
पर बोलो टूटे प्यालों पर
कब मदिरालय पछताता है
जो बीत गई सो बात गई

मृदु मिटटी के हैं बने हुए
मधु घट फूटा ही करते हैं
लघु जीवन लेकर आए हैं
प्याले टूटा ही करते हैं
फिर भी मदिरालय के अन्दर
मधु के घट हैं मधु प्याले हैं
जो मादकता के मारे हैं
वे मधु लूटा ही करते हैं
वह कच्चा पीने वाला है
जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है चिल्लाता है
जो बीत गई सो बात गई।

जो बीत गई सो बात गई।।

57

अंतर्मुखता महा-सौभाग्य

भारतीय इतिहास और साहित्य में अनेक ऐसी विशिष्ट प्रतिभाओं का उल्लेख है, जिन्होंने अपनी बुद्धि, चतुराई और प्रत्युत्पन्नमति का परिचय देते हुए, अपने ज्ञान का सिक्का जमाया है। दक्षिण में तेनालीराम और उत्तर भारत में बीरबल ऐसे ही प्रतिभासंपन्न पुरुष हुए हैं, जिनके किस्से और कहानियाँ अत्यधिक प्रसिद्ध हैं और वे हमें बरबस सोचने और उसके बाद हँसने पर विवश कर देते हैं। कई बार तो तेनालीराम और बीरबल के किस्से परस्पर इतने मिल गए हैं कि हमें आभास ही नहीं होता कि वास्तव में ये किससे संबंधित हैं।

बादशाह अकबर के दरबार के रत्न बीरबल अत्यधिक व्यवहार-कुशल ईमानदार और विवेकबुद्धि से संपन्न इंसान थे, अपनी बुद्धि के बल पर उन्होंने अकबर बादशाह के दरबार में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। उनके ज्ञान और प्राप्त सम्मान के कारण अन्य दरबारी उनसे ईर्ष्या करते थे और अनेक बार उन्हें नीचा भी दिखाने का प्रयास भी करते थे, किंतु बीरबल अपनी हाजिरजवाबी तथा प्रवीणता के कारण बार-बार उनके प्रहारों से बच निकलते थे।

ऐसा कहा जाता है कि कई बार बीरबल की अनुपस्थिति से दरबार सूना-सूना लगता था और बादशाह अकबर भी उदास हो जाते थे। इन्हीं बीरबल की हाजिरजवाबी का एक उदाहरण है प्रस्तुत कथा में-

आगरा शहर में एक धोबी और एक कुम्हार पास-पास रहते थे। एक दिन कुम्हार ने मिट्टी के बहुत सारे बर्तन बनाए। उसने उन बर्तनों को सुखाने के लिए धूप में रख दिया और आराम करने घर के अंदर चला गया। तभी वहाँ दो गधे आए। वे आपस में झगड़ने लगे। इस कारण कुम्हार के सारे बर्तन टूट गए। वह लाठी लेकर बाहर आया। उसने अपनी लाठी को घुमाया और एक गधे पर जोर से मारा।

गधा ढेंचू-ढेंचू का शोर मचाता हुआ बाहर की ओर भागा। इस पर कुम्हार का पड़ोसी दौड़कर आया और बोला, 'अरे, अरे! यह क्या करते हो? यह मेरा गधा है।'

कुम्हार ने नाराज होकर कहा, 'तो क्या हुआ? इसने मेरे सारे बर्तन चूर-चूर कर दिए हैं।'

धोबी बोला, 'तुम मेरे गधे को पीटते क्यों हो? तुम्हारे बर्तन टूट गए हैं। तुम उनके पैसे ले लो।'

कुम्हार ने सोचा-इस धोबी ने सबके सामने मेरी इज्जत उतार दी। मैं इस बच्चू को ऐसा मजा चखाऊँगा कि यह भी याद करेगा।

दूसरे दिन सुबह-सुबह कुम्हार बादशाह अकबर के दरबार में पहुँचा। उसने बादशाह को आदाब किया और बोला, 'जहाँपनाह, मैं अदना-सा कुम्हार हूँ। आपके शहर में रहता हूँ।'

अकबर -'बताओ, तुम्हें क्या परेशानी है?'

कुम्हार–'जहाँपनाह! मैं एक जरुरी बात बताने के लिए आया हूँ।'

अकबर–'तो फिर जल्दी बताओ।'

कुम्हार–'जहाँपनाह! मेरा एक दोस्त फारस गया था। वह कुछ दिन पहले ही वापस आया है। उसने बताया–वहाँ आपके नाम का डंका बजता है। आपकी बड़ी इज्जत है वहाँ। मगर .. ...!' यह कहकर कुम्हार चुप हो गया।

अकबर ने पूछा, 'हाँ, आगे बताओ। बात पूरी करो।'

कुम्हार बोला, 'मगर आगरा के हाथियों के बारे में उनका खयाल अच्छा नहीं है।'

अकबर ने आश्चर्य–भरे स्वर में पूछा, 'हाथियों के बारे में! तुम क्या कहना चाहते हो?'

'जी हाँ हुजूर! उनका कहना है कि हमारे हाथी बड़े गंदे और काले हैं। हुजूर शाही हाथियों को तो साफ–सुथरा होना चाहिए।' कुम्हार ने बात पूरी की।

'बात तुम्हारी ठीक है, कुम्हार।' अकबर बोले।

'और हुजूर। मेरे दोस्त ने बताया कि फारस के शाह के हाथीखाने में सारे हाथी दूध की तरह सफेद हैं।'

अकबर ने समझ लिया कि यह कोई चालबाज आदमी है। फिर भी उन्होंने पूछा, 'मगर फारस के शाह अपने हाथियों को इतना साफ–सुथरा कैसे रखते हैं?'

कुम्हार ने उत्तर दिया, 'सीधी–सी बात है हुजूर! इस काम के लिए उन्होंने बढ़िया धोबियों की पूरी फौज लगा रखी है।'

'तो हम भी शहर के तमाम धोबियों को इस काम पर लगाए देते हैं।' अकबर ने कहा।

इस पर कुम्हार बोला, 'जहाँपनाह! शहर का एक बेहतरीन धोबी मेरे पड़ोस में रहता है। वह अकेला इस काम के लिए काफी है।'

अकबर ने मन–ही–मन सोचा–तो यह अपने पड़ोसी को फँसाना चाहता है। लेकिन उन्होंने कहा, 'ठीक है, हम उसी को बुला लेते हैं।'

अकबर के आदेश पर धोबी को दरबार में हाजिर किया गया। वह डर के कारण काँप रहा था। उसने डरते हुए कहा, 'जहाँपनाह! हुजूर!'

अकबर ने आदेश दिया, 'देखो, हमारे हाथीखाने के सारे हाथी काले हैं। तुम्हें इन्हें धोकर सफेद करना है।'

'जी हुजूर!' धोबी बोला।

उसके सामने एक हाथी लाया गया। वह सुबह से शाम तक उसे धोता रहा। किंतु काला हाथी सफेद न हो सका। निराश होकर वह अपने घर की ओर चल पड़ा। उसने सोचा, यह सब उस कुम्हार की करतूत है। पर मैं करुँ तो क्या करुँ? तभी उसे बीरबल आते हुए दिखाई दिए। वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बीरबल ने पूछा, 'क्या हुआ भाई! इस तरह मुँह लटकाए क्यों खड़े हो?'

कुम्हारा ने सारी घटना बताई। बीरबल ने उसकी सारी परेशानी सुनी और उसके कान में

कुछ कहा। दूसरे दिन धोबी हाथीखाने में पहुँचा। कुछ देर बाद अकबर भी वहाँ पहुँच गए। उन्होंने हाथी को देखा और धोबी से बोले, 'यह हाथी तो वैसा का वैसा ही है। जरा भी सफेद नहीं हुआ। तुम कल दिनभर क्या करते रहे?'

धोबी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'परवरदिगार, बात यह है. . .।'

'हाँ, क्या बात है?' अकबर ने पूछा।

'हुजूर, अगर कोई बड़ा-सा बरतन हो, जिसमें यह हाथी खड़ा हो सके तो काम आसान हो जाएगा।' धोबी ने बताया।

अकबर ने आदेश दिया कि हाथी के खड़े होने के लिए बड़ा बर्तन बनवाया जाए। बर्तन बनाने का काम उसी कुम्हार को सौंपा गया। एक हफ्ते बाद कुम्हार बर्तन लेकर हाजिर हुआ।

अकबर ने बर्तन को देखा और आदेश दिया, 'हाथी को बर्तन में खड़ा किया जाए।'

जैसे ही हाथी को बर्तन में खड़ा किया गया, बर्तन चूर-चूर हो गया। अकबर ने नाराज होकर कहा, 'क्यों रे, यह कैसा बर्तन बनाया है? यह तो एक बार में ही टूट गया। जल्दी से दूसरा बर्तन बनाकर ला।'

कुम्हार बर्तन बनाकर लाता रहा और वह बार-बार टूटता रहा। आखिर वह बादशाह के पैरों में गिर पड़ा, 'हुजूर मुझे माफ करें। मैंने बहुत बड़ी गलती की है।'

इस पर अकबर ने धोबी से कहा, 'धोबी, मैं जानता था कि यह तुम्हें फँसाना चाहता है। पर तुमने इसकी चाल का मुँहतोड़ जवाब दिया। हम तुम्हें इनाम देंगे।'

धोबी हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसने कहा, 'जहाँपनाह! इनाम के असली हकदार तो बीरबल जी हैं। उन्हीं ने मुझे यह तरकीब सुझाई थी।'

बादशाह अकबर ने बीरबल की ओर देखा। बीरबल धीमे-धीमे मुस्करा रहे थे।

अकबर बोले, 'बीरबल, तुम हमारे दरबार के अनमोल रत्न हो।'

चालाकी और बुद्धिमत्ता में बड़ा भेद है। चालाकी हिंसक है। बुद्धिमत्ता रक्षक है। प्रायः चालाक व्यक्ति बुद्धिमान नहीं होता। और बुद्धिमान व्यक्ति चालाक नहीं होता। किंतु दोनों का अंतर पहचानना दुष्कर नहीं है। बुद्धिमत्ता सदैव प्रेमपूर्ण होती है, करुणामय होती है। अंततः एक बुद्धिमान मनुष्य अंतर्मुखी हो जाता है, मगर चालाक हमेशा बहिर्मुखी बना रहता है। अंतर्मुखता महा-सौभाग्य है, क्योंकि परमात्मा से, परमधन से मिला देती है। तथाकथित होशियार लोग संसार का छुद्रधन ही अर्जित कर पाते हैं। उसे प्राप्त करने में बिताया समय, जीवन गंवाना है। क्योंकि अंततः तो विश्व-विजेता सिकंदर जैसे व्यक्ति भी खाली हाथ विदा होते हैं।

58

कृत्यों में कर्ता-पुरुष

परमात्मा को प्रेम, क्षमा और करुणा की मूर्ति मानें या न्यायप्रिय समझें? मेरी कठिनाई सुलझाने की अनुकंपा करें।

आपकी मुश्किल मैं समझ रहा हूं। आप चाहते हैं कि परमात्मा आपके प्रति तो प्रेमपूर्ण हो, किंतु आपके शत्रुओं के संग न्याय करे। अर्थात् आपकी भूल-चूकें माफ कर दी जाएं और दुश्मनों को कड़ी सजा मिले। जो सवाल आपके मन में उठा है यह सर्वाधिक प्राचीन फिलॉसफिकल पहेलियों में से एक है। दस हजार साल के ज्ञात इतिहास में बहुत विवाद हुए लेकिन इस पर सहमति न बन सकी। सूफी संत जलालुद्दीन रूमी की किताब 'मसनवी' से ली गई यह कहानी सुनो-

गजनी के बादशाह का नियम था कि वह रात को भेष बदलकर गजनी की गलियों में घूमा करता था। एक रात उसे कुछ आदमी छुपते-छुपाते चलते दिखाई दिये। वह भी उनकी तरफ बढ़ा। चोरों ने उसे देखा तो वे ठहर गये और उससे पूछने लगे- 'भाई, तुम कौन हो और रात के समय किसलिए घूम रहे हो?' बादशाह ने कहा- 'मैं भी तुम्हारा भाई हूं और रोजी की तलाश में निकला हूं।' यह सुनकर चोर बड़े खुश हुए और कहने लगे- 'यह बहुत अच्छा हुआ जो तुम हमसे आ मिले। जितने ज्यादा हों, उतनी ही ज्यादा कामयाबी मिलती है। चलो, किसी बड़े आसामी के घर चोरी करें'। जब वे लोग चलने लगे तो उनमें से एक ने कहा, 'पहले यह तय कर लेना चाहिए कि कौन आदमी किस काम को अच्छी तरह कर सकता है, जिससे हम एक-दूसरे के हुनर को जान जाएं और जो ज्यादा हुनरमंद हो उसे नेता बनायें'।

यह सुनकर हर एक ने अपनी-अपनी खूबियां बतलायीं। एक बोला- 'मैं कुत्तों की बोली पहचानता हूं। वे जो कुछ कहें, उसे मैं अच्छी तरह समझ लेता हूं। हमारे काम में कुत्तों से बड़ी अड़चन पड़ती है। हम यदि उनकी बोली जान लें तो हमारा खतरा कम हो सकता है और मैं इस काम को बड़ी अच्छी तरह कर सकता हूं'।

दूसरा कहने लगा- 'मेरी आंखों में ऐसी ताकत है कि जिसे अंधेरे में देख लूं, उसे फिर कभी नहीं भूल सकता। और दिन के देखे को अंधेरी रात में पहचान सकता हूं। बहुत से लोग हमें पहचानकर पकड़वा देते हैं। मैं ऐसे लोगों को तुरन्त भांप लेता हूं और अपने साथियों को सावधान कर देता हूं। इस तरह हमारी हिफाजत हो जाती है'।

तीसरा बोला- 'मुझमें ऐसी ताकत है कि मजबूत दीवार में सेंध लगा सकता हूं और

यह काम मैं ऐसी फुर्ती और सफाई से करता हूं कि सोनेवालों की आंखें नहीं खुलतीं और घण्टों का काम पलों में हो जाता है'।

चौथा बोला- 'मेरी सूंघने की ताकत इतनी खास है कि जमीन में गड़े हुए धन को वहां की मिट्टी सूंघकर ही बता सकता हूं। मैंने इस काम में इतनी कामयाबी पाई है कि मेरे दुश्मन भी मेरी बड़ाई करते हैं। लोग अमूमन धन को धरती में ही गाड़कर रखते हैं। इस वक्त यह हुनर बड़ा काम देता है। मैं इस इल्म का पूरा जानकार हूं। मेरे लिए यह काम बड़ा आसान है'।

पांचवे ने कहा- 'मेरे हाथों में ऐसी ताकत है कि ऊंचे-ऊंचे महलों पर बिना सीढ़ी के चढ़ सकता हूं और ऊपर पहुंचकर अपने साथियों को भी चढ़ा सकता हूं। तुममें तो कोई ऐसा नहीं होगा, जो यह काम कर सके।'

इस तरह जब सब लोग अपने-अपने हुनर बता चुके तो नये चोर से बोले- 'तुम भी अपना कमाल बताओ, जिससे हमें अन्दाज हो कि तुम हमारे काम में कितने मददगार हो सकते हो'। बादशाह ने जब यह सुना तो खुश होकर कहने लगा- 'मुझमें ऐसा इल्म है, जो तुममें से किसी में भी नहीं है। और वह इल्म यह है कि मैं गुनाहों को माफ कर सकता हूं। अगर हम लोग चोरी करते पकड़े जायें तो अवश्य सजा पायेंगे लेकिन मेरी दाढ़ी में यह खूबी है कि उसके हिलते ही सारे गुनाह माफ हो जाते हैं। तुम चोरी करके भी साफ बच सकते हो। देखो, कितनी बड़ी ताकत है मेरी दाढ़ी में।'

बादशाह की यह बात सुनकर सबने एक सुर में कहा- 'भाई तू ही हमारा नेता है। हम सब तेरी ही इशारों पर काम करेंगे ताकि अगर कहीं पकड़े जायें तो बख्शे जा सकें। ये हमारी खुशकिस्मती है कि तुझ-जैसा हुनरमंद साथी हमें मिला'।

इस तरह मशवरा करके ये लोग वहां से चले। जब बादशाह के महल के पास पहुंचे तो कुत्ता भूंका। चोर ने कुत्ते की बोली पहचानकर साथियों से कहा कि यह कह रहा है कि बादशाह पास ही हैं इसलिए होशियार होकर चलना चाहिए। मगर उसकी बात किसीने नहीं मानी। जब नेता आगे बढ़ता चला गया तो दूसरों ने भी उसके संकेत की कोई परवाह नहीं की। बादशाह के महल के नीचे पहुंचकर सब रुक गये और वहीं चोरी करने का इरादा किया। दूसरा चोर उछलकर महल पर चढ़ गया और फिर उसने बाकी चोरों को भी खींच लिया। महल के भीतर घुसकर सेंध लगायी गई और खूब लूट हुई। जिसके जो हाथ लगा, समेटता गया। जब लूट चुके तो चलने की तैयारी हुई। जल्दी-जल्दी नीचे उतरे और अपना-अपना रास्ता लिया। बादशाह ने सबका नाम-धाम पूछ लिया था। चोर माल-असबाब लेकर चंपत हो गये।

बादशाह ने अपने मंत्री को आज्ञा दी कि तुम अमुक स्थान में तुरन्त सिपाही भेजो और फलां-फलां लोगों को गिरफ्तार करके मेरे सामने हाजिर करो। मंत्री ने फौरन सिपाही भेज दिये। चोर पकड़े गये और बादशाह के सामने पेश किये गए। जब इन लोगों ने बादशाह को देखा तो एक-दूसरे से कहा- 'बड़ा गजब हो गया! रात चोरी में बादशाह हमारे साथ था।' और यह वही नया चोर था, जिसने कहा था कि 'मेरी दाढ़ी में वह शक्ति है कि उसके हिलते ही अपराध क्षमा हो जाते हैं।'

सब लोग साहस करके आगे बढ़े और बादशाह के सामने सजदा किया। बादशाह ने उनसे पूछा- 'तुमने चोरी की है?'

सबने एक साथ जवाब दिया- 'हां, हूजर। यह अपराध हमसे ही हुआ है।'

बादशाह ने पूछा- 'तुम लोग कितने थे?'

चोरों ने कहा- 'हम कुल छः थे।'

बादशाह ने पूछा- 'छठा कहां है?'

चोरों ने कहा- 'अन्नदाता, गुस्ताखी माफ हो। छठे आप ही थे।'

चोरों की यह बात सुनकर सब दरबारी अचंभे में रह गये। इतने में बादशाह ने चोरों से फिर पूछा- 'अच्छा, अब तुम क्या चाहते हो?'

चोरों ने कहा- 'अन्नदाता, हममें से हर एक ने अपना-अपना काम कर दिखाया। अब छठे की बारी है। अब आप अपना हुनर दिखायें, जिससे हम अपराधियों की जान बचे।'

यह सुनकर बादशाह मुस्कराया और बोला- 'अच्छा! तुमको माफ किया जाता है। आगे से ऐसा काम मत करना'।

जलालुद्दीन रूमी कहना चाह रहा है कि प्रभु हमसे भिन्न कोई अलग सत्ता नहीं रखता। आत्मा का परम रूप ही परमात्मा है। तथाकथित 'हमारे' कृत्यों में 'वही' तो कर्ता—पुरुष है। वह हम में शामिल है। हम उसके हिस्से हैं।

जिंदगी को गैर—गंभीर होकर देखना सीखो। एक विराट खेल है। एक अनूठी लीला चल रही है। कहानीकार ही पात्र है और वही दर्शक भी। फिलॉसफिकल पहेलियों में न उलझो।

अपने भीतर छिपे द्रष्टा को, साक्षी को पहचानो। मैं आपको सीधा—सीधा जवाब नहीं दूंगा। वैसा संभव नहीं है।

59

अपना अपना स्वभाव

एक बार एक भला आदमी नदी किनारे बैठा था। तभी उसने देखा एक बिच्छू पानी में गिर गया है। भले आदमी ने जल्दी से बिच्छू को हाथ में उठा लिया। बिच्छू ने उस भले आदमी को डंक मार दिया। बेचारे भले आदमी का हाथ काँपा और बिच्छू पानी में गिर गया।

भले आदमी ने बिच्छू को डूबने से बचाने के लिए दुबारा उठा लिया। बिच्छू ने दुबारा उस भले आदमी को डंक मार दिया। भले आदमी का हाथ दुबारा काँपा और बिच्छू पानी में गिर गया।

भले आदमी ने बिच्छू को डूबने से बचाने के लिए एक बार फिर उठा लिया। वहाँ एक लड़का उस आदमी का बार-बार बिच्छू को पानी से निकालना और बार-बार बिच्छू का डंक मारना देख रहा था। उसने आदमी से कहा, 'आपको यह बिच्छू बार-बार डंक मार रहा है फिर भी आप उसे डूबने से क्यों बचाना चाहते हैं?'

भले आदमी ने कहा, 'बात यह है बेटा कि बिच्छू का स्वभाव है डंक मारना और मेरा स्वभाव है बचाना। जब बिच्छू एक कीड़ा होते हुए भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता तो मैं मनुष्य होकर अपना स्वभाव क्यों छोड़ूँ? मनुष्य को कभी भी अपना अच्छा स्वभाव नहीं भूलना चाहिए।'

बड़ी से बड़ी भूल है– खुद के 'स्व'–भाव को भूलना।

तब मनुष्य 'पर'–भाव में पड़कर, अर्थात् दूसरों के प्रभाव में आकर अनुसरण आरंभ कर देता है। अपनी मूल प्रकृति विस्मृत हो जाती है, अनेकानेक प्रभावों से स्मृति भर जाती है; विकृति उत्पन्न हो जाती है। वही दुख की जड़ है।

आत्म–स्मरण से भरना, आत्म–रमण करना ही धर्म की एकमात्र साधना है। ध्यान उसकी विधि है।

इस चार दिन के क्षणभंगुर जीवन में थोड़ा–बहुत पाप कर लेने से क्या फर्क पड़ता है?

थोड़ा नहीं, बहुत फर्क पड़ता है। पाप करने की आदत निर्मित होती है। वह आदत जन्म-जन्मांतरों में हमारे संग चलती है। और स्मरण रखो, जीवन क्षणभंगुर नहीं, सनातन है। पाप केवल मूर्च्छा में, बेहोशी में घटित होते हैं। जैसे शराब पीने की लत पड़ जाए तो छोड़ना कठिन है; वैसे ही आत्मिक बेहोशी की आदत मिटानी उससे भी दुष्कर है। तुमने क्या नुकसान किसी को पहुंचाया, वह कम महत्त्वपूर्ण है; तुम्हारी नुकसान पहुंचाने की वृत्ति निर्मित हो गई, यह अधिक खतरनाक बात है। जितने शीघ्र जागो, उतना सरल है।

शाह अशरफ अली बहुत बड़े मुस्लिम संत थे। एक बार वे रेलगाड़ी से सहारनपुर से लखनऊ जा रहे थे। सहारनपुर स्टेशन पर उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि वे सामान को तुलवाकर ज्यादा वजनी होने पर उसका किराया अदा कर दें।

वहीं पास में गाड़ी का गार्ड भी खड़ा था। वह बोला- 'सामान तुलवाने की कोई जरूरत नहीं है। मैं तो साथ में ही चल रहा हूँ।'- वह गार्ड भी शाह अशरफ अली का अनुयायी था।

शाह ने उससे पूछा- 'आप कहाँ तक जायेंगे।'

'मुझे तो बरेली तक ही जाना है, लेकिन आप सामान की चिंता नहीं करें'- गार्ड बोला।

'लेकिन मुझे तो बहुत आगे तक जाना है'- शाह ने कहा।

'मैं दूसरे गार्ड से कह दूँगा। वह लखनऊ तक आपके साथ चला जाएगा।'

'और उसके आगे?'- शाह ने पूछा।

'आपको तो सिर्फ लखनऊ तक ही जाना है न। वह भी लखनऊ तक ही जाएगा'

'नहीं बरखुरदार, मेरा सफर बहुत लंबा है'- शाह ने गंभीरता से कहा।

'तो क्या आप लखनऊ से भी आगे जायेंगे?- गार्ड ने आश्चर्य से पूछा।

'अभी तो सिर्फ लखनऊ तक ही जा रहा हूं, लेकिन जिन्दगी का सफर तो बहुत लंबा है। वह तो खुदा के पास जाने पर ही खत्म होगा। वहां पर ज्यादा सामान का किराया नहीं देने के गुनाह से मुझे कौन बचायेगा? क्या तुम मेरे संग मरोगे? और क्या तुम्हारी वहां चलेगी?'

यह सुनकर गार्ड शर्मिंदा हो गया। शाह ने शिष्यों को ज्यादा वजनी सामान का किराया अदा करने को कहा, उसके बाद ही वे रेलगाड़ी में बैठे।

जन्म-जन्मांतरों में संस्कार संग चलते हैं। किसी भी विचार, भावना अथवा कर्म से धीरे-धीरे संस्कार निर्मित होते रहते हैं। मृत्यु होने पर ये स्थूल तन-मन तो यहीं छूट जाते हैं, किंतु वे सूक्ष्म संस्कार आत्मा के संग चिपक जाते हैं। महावीर ने उन्हें कर्माणु नाम दिया है। अगले जन्म में वे बीजरूप से पुनः अंकुरित होते, आयु बढ़ने के साथ-साथ पनपते, विकसित होकर फलते-फूलते हैं। कड़वे बीज हैं तो फिर कड़वे फल आएंगे, उनमें और आगे के लिए कड़वे बीजों का भंडार मौजूद होगा। एक बार सिलसिला शुरु हो गया तो फिर मामला अति-कठिन है।

अतः जो भी करो– सदा विवेक से, पुनर्विचार करके, होशपूर्वक।
यह चार दिन की बात नहीं है, अपने संपूर्ण भविष्य को दिशा देना है।

61

दूसरों की रोशनी

बहुत पुरानी बात है। जापान में लोग बांस की खपच्चियों और कागज से बनी लालटेन इस्तेमाल करते थे जिसके भीतर जलता हुआ दिया रखा जाता था।

एक शाम एक अँधा व्यक्ति अपने एक मित्र से मिलने उसके घर गया। रात को वापस लौटते समय उसके मित्र ने उसे साथ में लालटेन ले जाने के लिए कहा।

'मुझे लालटेन की जरुरत नहीं है', अंधे व्यक्ति ने कहा, 'उजाला हो या अँधेरा, दोनों मेरे लिए एक ही हैं'।

'मैं जानता हूँ कि तुम्हें राह जानने के लिए लालटेन की जरुरत नहीं है', उसके हितैषी मित्र ने कहा, 'लेकिन तुम लालटेन साथ लेकर चलोगे तो कोई राह चलता आंख वाला तुमसे नहीं टकराएगा। इसलिए तुम इसे ले जाओ'।

अँधा व्यक्ति लालटेन लेकर निकला और वह अभी बहुत दूर नहीं चला था कि कोई राहगीर उससे टकरा गया।

'देखकर चला करो!', उसने राहगीर से कहा, 'क्या मेरी तरह अंधे हो? तुम्हें यह लालटेन नहीं दिखती?'

'लगता है तुम्हारी लालटेन बुझ चुकी है, मेरे भाई', अजनबी ने कहा।

बुद्ध कहते थे– अपने दीपक स्वयं बनो।

अंधे को भला कैसे पता चलेगा कि जिस शास्त्र के प्रकाश में वह चल रहा है, वह प्रकाशित है भी या नहीं!

62

असली गरिमा

क्या बुद्धि एवं ज्ञान से ऊपर भी कोई चीज है? क्या इसी की वजह से मनुष्य की सारी गरिमा है?

हम जिसे ज्ञान कहते हैं, वह सूचनाओं का संग्रह है। स्मृति भंडार का मूल्य कम्प्यूटर से अधिक नहीं। बुद्धि एक यांत्रिक प्रक्रिया है। मनुष्य की महिमा मस्तिष्क नामक इस बायोलॉजिकल कम्प्यूटर से नहीं है। मनुष्य का गौरव इसके पार उठने में है। विचार से अधिक महत्त्वपूर्ण भाव हैं। भाव से भी ऊपर, विचार और भाव, इन दोनों का साक्षी चैतन्य है। चैतन्य की बात से मुझे चैतन्य महाप्रभु के जीवन की एक प्रीतिकर घटना स्मरण हो आई। एक बार वे नाव में बैठकर जा रहे थे। उसी नाव में उनके बचपन के मित्र रघुनाथ पंडित भी बैठे हुए थे। रघुनाथ पंडित संस्कृत के प्रकांड विद्वान माने जाते थे। चैतन्य ने उन्हीं दिनों न्याय दर्शन पर एक उच्च कोटि का ग्रन्थ लिखा था। उन्होंने अपना ग्रन्थ रघुनाथ पंडित को दिखाया और उसके कुछ अंश उन्हें पढ़ कर सुनाये।

रघुनाथ पंडित कुछ देर तक ध्यानपूर्वक चैतन्य को सुनते रहे। धीरे-धीरे उनका चेहरा मुरझाने लगा और वे रो पड़े। यह देखकर चैतन्य को आश्चर्य हुआ। उन्होंने ग्रन्थ का पाठ रोककर पंडित रघुनाथ से रोने का कारण पूछा।

पंडित जी पहले तो कुछ नहीं बोले, फिर गहरी साँस लेकर बोले- 'मित्र निमाई, मैं क्या कहूँ। मेरी जीवन भर की तपस्या निष्फल हो गई। वर्षों के घोर परिश्रम के उपरांत मैंने इसी विषय पर एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है। मुझे लगता था कि मेरा ग्रन्थ बेजोड़ था और मुझे उससे बहुत यश मिलेगा, लेकिन तुम्हारे ग्रन्थ के अंशों को सुनाने से मेरी आशाओं पर पानी फिर गया। इस विषय पर तुम्हारा ग्रन्थ इतना उत्तम है कि इसके सामने मेरे ग्रन्थ को कोई पूछेगा भी नहीं। मेरा सारा किया-धरा व्यर्थ ही हो गया। भला सूर्य के सामने दीपक की क्या बिसात!'

यह सुनकर चैतन्य बड़ी सरलता से हँसते हुए बोले- 'भाई रघुनाथ, दुखी क्यों होते हो? तुम्हारे ग्रन्थ का गौरव मेरे कारण कम नहीं होने पायेगा।'

और उदारमना चैतन्य ने उसी समय अपने महान ग्रन्थ को गंगा में बहा दिया।

रघुनाथ जी पुस्तक पकड़ने की कोशिश करते हुए, कहते ही रह गए- 'अरे, अरे, यह क्या करते हो चैतन्य... मेरा मतलब ऐसा नहीं था!' तब तक तो गंगा में किताब डूब चुकी थी और काफी दूर बह चुकी थी। महाप्रभु ने मुस्कुराते हुए कहा- 'भाई, हमारी दोस्ती ज्यादा कीमती है या यह कागज का पुलिंदा!' (महाप्रभु के जीवन की यह घटना मैंने स्मृति से सुनाई है। मेरी स्मृति पर ज्यादा भरोसा न करना। बहुत अच्छी नहीं है।)

स्मृति संसार में उपयोगी है, कामचलाऊ है। किंतु मनुष्य की असली गरिमा उसके निर्विचार जागरण की अनुभूति में छिपी है, विचारों को स्मरण करने की शक्ति में नहीं।

विचार नहीं अनुभव

सद्‌गुरु ओशो हमेशा दर्शन शास्त्र को व्यर्थ क्यों कहते हैं?

क्योंकि वह व्यर्थ है। यह केवल तथ्य की घोषणा है, आलोचना या निंदा नहीं। जीवन विचार से नहीं बल्कि अनुभव से मिलता है। अनुभव समग्रतापूर्वक जीने से मिलता है। दार्शनिक विचारों से ग्रस्त व्यक्ति ठीक से जी ही नहीं पाता। जी नहीं पाता, तो जान भी नहीं पाता। जीने से जानना घटित होता है, जानने से जीना नहीं घटता। बौद्धिक ज्ञान हमेशा पूर्वाग्रह से भरा होता है, अपने चश्मे से सत्य को देखने का प्रयास करता है। दस हजार साल के ज्ञात इतिहास में दार्शनिकों ने सिवाय निष्फल वाद-विवाद के कुछ और नहीं किया।

यदि विचार की प्रक्रिया प्रयोग में उत्सुक हो जाए तो विवेकपूर्ण दिशा में गतिमान हो जाती है। बहिर्जगत में, पदार्थ के संबंध में प्रयोगधर्मी होने पर विज्ञान जन्मा। अंतस-चेतना के लोक में प्रयोग करने परं ध्यान जन्मा, योग उत्पन्न हुआ। मात्र विचार व्यर्थ है। वास्तव में जानने के पूर्व, एडवांस में जानने की कोशिश है।

मैंने सुनी है एक झेन कथा कि विद्यारम्भ से पहले एक शिष्य अपने गुरु से सभागार में वार्तालाप करने के लिए आया। वह हर बात के बारे में आश्वस्त हो लेना चाहता था।

शिष्य ने पूछा- 'क्या आप मुझे बता सकते हैं कि मानव जीवन का उद्देश्य क्या है?'

'नहीं'- गुरु ने उत्तर दिया।

'आप कम-से-कम जीवन का अर्थ तो बता ही सकते हैं!?' गुरु ने कहा-'नहीं'।

'अच्छा। तो यह बताएं कि मृत्यु क्या है और जीवन के बाद कौन सा जीवन है'।

'मैं यह सब नहीं बता सकता'।

वह शिष्य चिढ़कर विद्यालय छोड़कर चला गया। बाकी शिष्यों को लगा कि उनके गुरु का अपमान हो गया। कुछ को यह भी लगने लगा कि उनके गुरु ज्ञानी नहीं हैं।

गुरु अपने शिष्यों के मन में चल रहे द्वंद्व को भांप गए। वे बोले- 'उस जीवन की प्रकृति और उसके अर्थों व उद्देश्यों को जानकार क्या करोगे जब तुमने जीवन जीना प्रारंभ ही न किया हो! सामने रखे भोजन के विषय में अटकलें लगाने से बेहतर होगा कि उसे चखकर देख लिया जाए'। पुनः दोहराता हूं कि जीवन विचार से नहीं बल्कि अनुभव से मिलता है। अनुभव समग्रतापूर्वक जीने से मिलता है। सद्‌गुरु ओशो हमेशा दर्शन शास्त्र को व्यर्थ कहते हैं, क्योंकि वह संसार में और अध्यात्म में दोनों जगह सार्थक सिद्ध नहीं हुआ। यह केवल तथ्य की घोषणा है।

मैंने सुना है कि एक महान विचारक ने जन्मदिनों पर तीन साल रिसर्च करने के उपरांत निष्कर्ष निकाला कि जीसस क्राइस्ट, भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध, महात्मा गांधी आदि महापुरुषों में एक समानता है कि ये लोग पता नहीं कैसे सरकारी छुट्टियों के दिन पर ही जन्म लिए थे!

एक रात, डिनर के बाद मुल्ला नसरुद्दीन ने इसी महान विचारक मित्र को मजाक में बताया कि रसगुल्ला और गुलाबजामुन में बड़ा अंतर है। रसगुल्ला अपने नामानुसार रस से ओतप्रोत गोल-गोल आकृति का होता है, जबकि गुलाबजामुन में न गुलाब होता, न जामुन होती। दार्शनिक मित्र ने मजाक को गंभीरतापूर्वक ले लिया। वह घर जाकर रात भर चैन से सो न सका। दूसरे दिन उसका फोन आया कि मैंने भी जीवन की एक गहरी सचाई खोज ली है- नारंगी और सेव में फर्क यह है कि नारंगी हमेशा नारंगी रंग की होती है जबकि सेव का रंग सेव नहीं होता। 'औरेन्जेस आलवेज हैव औरेन्ज कलर, बट एप्पल्स नेवर हैव एप्पल कलर।'

64

दान-दान में भेद

कृपया बताएं कि क्या दान के भी अलग-अलग ढंग होते हैं?

हां, दान-दान में भेद होते हैं। करुणा से जन्मा दान, सम्यक दान है। अहंकार के वशीभूत होकर, प्रतिष्ठा पाने के लिए किया गया दान असम्यक है। बहुत लोग इस लोक में इज्जत पाने के लिए, अथवा मृत्यु के पश्चात् परलोक में स्वर्ग पाने के लिए दान देते हैं। वे दानी नहीं, वस्तुतः व्यवसायी हैं। वे स्वर्ग खरीदने का इंतजाम करते हैं। दान देकर उन्होंने मेनका, उर्वशी और समस्त अप्सराओं को खरीद लिया। कल्पवृक्ष पर कब्जा जमा लिया। भगवान से नजदीकी हासिल का ली।

गुरु नानक बहुत लम्बी यात्रायें किया करते थे। एक दिन यात्रा के दौरान वे एक गरीब दलित बढ़ई लालो के घर में विश्राम के लिए रुके। उन्हें लालो का व्यवहार पसंद आया और वे दो हफ्तों के लिए उसके घर में ठहर गए। यह देखकर गाँव के लोग कानाफूसी करने लगे- 'नानक ऊंची जाति के हैं, उन्हें नीची जाति के व्यक्ति के साथ नहीं रहना चाहिए। यह उचित नहीं है।'

एक दिन उस गाँव के एक धनी जमींदार मलिक ने बड़े भोज का आयोजन किया और उसमें सभी जातियों के लोगों को खाने पर बुलाया। गुरु नानक का एक ब्राह्मण मित्र उनके पास आया और उन्हें भोज के बारे में बताया। उसने नानक से भोज में चलने का आग्रह किया। लेकिन नानक जाति-व्यवस्था में विश्वास नहीं करते थे इसलिए उन्होंने भोज में जाने को मना कर दिया। उनकी

दृष्टि में सभी मानव समान थे। वे बोले- 'मैं तो किसी भी जाति में नहीं आता, मुझे क्यों आमंत्रित किया गया है?'

ब्राह्मण ने कहा- 'ओह, अब मैं समझा कि लोग आपको अधर्मी क्यों कहते हैं। लेकिन यदि आप भोज में नहीं जायेंगे तो मलिक जमींदार को अच्छा नहीं लगेगा।'- यह कहकर वह चला गया।

नानक भोज में नहीं गए। बाद में मलिक ने उनसे मिलने पर पूछा- 'आपने मेरे भोज के निमंत्रण को किसलिए ठुकरा दिया?'

नानक बोले- 'मुझे स्वादिष्ट भोजन की कोई लालसा नहीं है।'

लेकिन मलिक फिर भी खुश न हुआ। उसने नानक की जाति-व्यवस्था न मानने और दलित लालो के घर में रुकने की निंदा की। नानक शांत खड़े यह सुन रहे थे। उन्होंने

मलिक से कहा- 'दुखी न होओ, अपने भोज में यदि कुछ बच गया हो तो ले आओ, मैं उसे खाने के लिए तैयार हूँ।'

नानक ने लालो से भी कहा कि वह अपने घर से कुछ खाने के लिए ले आए।

नानक ने मलिक और लालो के द्वारा लगाई गयी थाली से एक-एक रोटी उठा ली। उन्होंने लालो की रोटी को अपनी मुठ्ठी में भींचकर दबाया। उनकी मुठ्ठी से दूध की धार बह निकली।

फिर नानक ने मलिक की रोटी को मुठ्ठी में दबाया। जमीन पर खून की बूँदें बिखर गयीं।

इस कथा को प्रतीकात्मक समझना। दूध प्रतीक है प्रेम का, करुणा का; और रक्त प्रतीक है हिंसा का, शोषण का। प्रेम से जन्मा दान, सम्यक दान है। अहंकार देने में नहीं, दिखाने में उत्सुक होता है। अगर बदले में कुछ मिलता न हो, तो अहंकारी देना बंद कर देगा। यदि पक्का पता लग जाए कि दान देने से संसार में बेइज्जती होगी और मरने के बाद नरक में यातना भुगतोगे, तो वह दिया हुआ दान भी वापस छीन लेगा। खबर मिल जाए कि आजकल परलोक के नियम-कानून परिवर्तित हो गए हैं, कलयुग में दान को पाप गिना जाता है। तो अधिकांश दानी, तुरंत दान देना बंद कर देंगे।

अतः केवल स्थूल दान को नहीं देखना, सूक्ष्म देने का भाव पुण्य है। उस आंतरिक सद्भाव से, बाहर देने की घटना जन्मे तो सम्यक है, अन्यथा व्यर्थ है।

सफलता का मंत्र

मैंने एक कहानी सुनी है कि किसी गांव में हृदयराम और करमचंद नामक दो किसान रहते थे। दोनों में गहरी दोस्ती थी। हृदयराम के पास थोड़ी बहुत जमीन थी, जबकि करमचंद बहुत बड़े भूखंड का स्वामी था। एक दिन हृदयराम करमचंद के घर गया। वहां उसने देखा कि करमचंद चारपाई पर लेटा था और काफी परेशान नजर आ रहा था। चारपाई के आस-पास और पूरे घर में गंदगी फैली थी। हृदयराम को देख करमचंद उठकर खड़ा हो गया। उसने हृदयराम को आसन देने के बाद अपने नौकर को आवाज दी। कई बार पुकारने के बाद चतुरसिंह नामक एक नौकर आया तो करमचंद ने उसे जलपान लाने को कहा।

हृदयराम ने करमचंद से पूछा, 'क्या बात है मित्र, तुम कुछ परेशान से दिख रहे हो। तबीयत तो ठीक है? 'आरती' भाभी कहां हैं? बिटिया 'पूजा' और 'प्रार्थना' भी नजर नहीं आ रहीं।' करमचंद बोला, 'प्रार्थना देर से सोकर उठती है। पूजा अपनी मां के संग प्रसाद लेने मंदिर गई है। क्या बताऊं मित्र! समझ में नहीं आ रहा है कि हमारी खेती क्यों मारी जा रही है। जरुरत भर अनाज भी पैदा नहीं होता। जानवर भी कमजोर पड़ते जा रहे हैं। इस तरह तो कुछ ही दिनों में गुजारा करना भी मुश्किल हो जाएगा। शायद विधाता ने मेरी किस्मत में ही कुछ ऐसा लिखा है, या गृह-नक्षत्रों का प्रभाव है। मैं किसी ज्योतिषी या वास्तु शास्त्री की सलाह लेना चाहता हूं। क्या तुम किसी योग्य व्यक्ति को जानते हो?'

हृदयराम ने आश्चर्य से कहा, 'मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा है। तुम्हारे पास तो इतनी जमीन है, इतने काम करने वाले चाकर हैं; फिर भी तुम्हारा यह हाल कैसे हो गया? खैर, चिंता की कोई बात नहीं है। तुम मेरे घर चलो। मैं तुम्हें एक साधु के पास ले चलूंगा, आनंद स्वामी उनका नाम है। वे सफलता का मंत्र जानते हैं। मैंने भी उसी मंत्र के सहारे तरक्की की है। ज्योतिषी या वास्तु शास्त्री को तो मैं नहीं जानता।'

करमचंद हृदयराम के साथ उसके घर पहुंचा। वहां उसने देखा कि उसका घर बेहद साफ-सुथरा है, पशु भी बेहद हृष्ट-पुष्ट हैं। हृदयराम की पत्नी 'भावना' ने करमचंद का भावभीना स्वागत किया और स्वयं नाश्ता लेकर आई। शाम को करमचंद ने देखा कि हृदयराम और उसकी पत्नी ने खुद मिलकर पशुओं को दाना-पानी दिया। वे दोनों पति-पत्नी घर का सारा काम स्वयं कर रहे थे। उनकी बेटी 'चेतना' भी कर्म करने में अति कुशल नजर आई। उनके यहां कोई भी नौकर नहीं था। एकमात्र सेविका 'बुधिया'

चार दिन की छुट्टी पर गई थी।

दूसरे दिन हृदयराम ने कहा, ‘चलो करमचंद, अब आनंद स्वामी के पास चलते हैं।’ करमचंद ने कहा, ‘नहीं मित्र, अब साधु के पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं समझ गया कि तुम किस मंत्र की बात कर रहे हो। अब मैं भी तुम्हारी तरह ही मेहनत किया करुंगा। अपने काम के लिए किसी पर निर्भर नहीं रहूंगा।’

यह कहकर करमचंद घर लौट आया। एक नेक मित्र के जीवन को देखकर प्राप्त शिक्षा से कालांतर में उसके भी दिन आनंदपूर्वक बीतने लगे।

ज्योतिषी, वास्तु शास्त्री, हस्तरेखा विशेषज्ञ, करमचंद की तरह ‘करम’ और किस्मत को मानने वाले, भाग्यवाद को पुष्ट करने वाले लोग ही सांसारिक विकास में बाधक हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से भी साधना की जगह पूजा-प्रार्थना, आरती और प्रसाद की महिमा गाने वाले महात्मागण खतरनाक लोग हैं। मानवता के शत्रु हैं।

चतुरसिंह जैसे नौकरों के गुलाम मत बनो। वे तुम्हें बुद्धू बना रहे हैं। थोड़ा हृदय को मूल्य देना सीखो और भावना की सुनो। बुधिया (बुद्धि) से नौकरानी का काम लेना, उसे सिर पर न चढ़ाना। कभी-कभी उसे अवकाश भी देना, उसी का नाम ध्यान है। शीघ्र ही चेतना जन्मेगी और हृदय में विराजमान राम से भी मिलन हो जाएगा।

विचित्र प्रतिभा

सदगुरु को परखने की क्या कसौटी है?

कोई भी कसौटी नहीं है। दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति अनूठा होता है। कसौटियां बनती हैं, अतीत में हो चुके व्यक्तियों के आधार पर। वैसा कभी पुनरावृत्ति होगी ही नहीं। बुद्ध, बस बुद्ध जैसे हैं। महावीर, महावीर जैसे हैं। उनके जैसा न कभी पहले कोई हुआ, न बाद में होगा। ईसा मसीह निराले हैं, हजरत मोहम्मद अद्वितीय हैं। मीराबाई का कोई मुकाबला नहीं, लाओत्से बेजोड़ है। सदगुरुओ की बात छोड़ो, अन्य क्षेत्रों में जो प्रतिभाशाली लोग होते हैं; वे सब भी बस अपने तरीके के इकलौते होते हैं।

एक बार बर्लिन में सर विलियम रोथेन्स्तीन को आइन्स्टीन का एक पोट्रेट बनाने के लिए कहा गया। आइन्स्टीन उनके स्टूडियो में एक वयोवृद्ध सज्जन के साथ आते थे जो एक कोने में बैठकर चुपचाप कुछ लिखता रहता था। आइन्स्टीन वहां भी समय की बर्बादी नहीं करते थे और परिकल्पनाओं और सिद्धांतों पर कुछ न कुछ कहते रहते थे जिसका समर्थन या विरोध वे सज्जन अपना सर हिलाकर कर दिया करते थे। जब उनका काम खत्म हो गया तब रोथेन्स्तीन ने आइन्स्टीन से उन सज्जन के बारे में पूछा।

'वे बहुत बड़े गणितज्ञ हैं'– आइन्स्टीन ने कहा– 'मैं अपनी संकल्पनाओं की वैधता को गणितीय आधार पर परखने के लिए उनकी सहायता लेता हूं क्योंकि मैं गणित में बेहद कमजोर हूँ'।

एक बार किसी ने आइन्स्टीन की पत्नी से पूछा– 'क्या आप अपने पति का सापेक्षता का सिद्धांत समझ सकती हैं?'

'नहीं'– उन्होंने बहुत आदरपूर्वक उत्तर दिया– 'लेकिन मैं अपने पति को समझती हूँ और उनपर यकीन किया जा सकता है।'

एक बार चार्ली चैपलिन ने आइन्स्टीन को हौलीवुड में आमंत्रित किया जहाँ चैपलिन अपनी फिल्म 'सिटी लाइट्स' की शूटिंग कर रहे थे। वे दोनों जब अपनी खुली कार में बाहर घूमने निकले तो सड़क पर आनेजाने वालों ने हाथ हिलाकर दोनों का अभिवादन किया।

चैपलिन ने आइन्स्टीन से कहा– 'ये सभी आपका अभिवादन इसलिए कर रहे हैं क्योंकि इनमें से कोई भी आपको नहीं समझ सकता और मेरा अभिवादन इसलिए कर रहे हैं क्योंकि मुझे सभी समझ सकते हैं'।

आइन्स्टीन के सापेक्षता के सामान्य सिद्धांत के प्रकाशन के बाद रूसी गणितज्ञ अलेक्सेंडर फ्रीडमैन को यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि आइन्स्टीन अपने सूत्रों के आधार पर यह देखने से चूक गए थे कि ब्रह्मांड फैल रहा था।

आइन्स्टीन से इतनी बड़ी गलती कैसे हो गई? असल में उन्होंने अपने सूत्रों में एक

बहुत बेवकूफी भरी गलती कर दी थी। उन्होंने इसे शून्य से गुणा कर दिया था। प्राचीन काल से ही गणित के साधारण छात्र भी यह जानते हैं कि किसी भी संख्या को शून्य से गुणा कर देना गणित की दृष्टि से बहुत बड़ा पाप है।

एक बार आइन्स्टीन से पूछा गया कि आप कभी मोजे क्यों नहीं पहनते? उन्होंने बताया- 'बचपन में मेरे पैर के अंगूठे से मेरे मोजों में छेद हो जाते थे इसलिए मैंने मोजे पहनना ही बंद कर दिया'।

एक बार आइन्स्टीन के एक सहकर्मी ने उनसे उनका टेलीफोन नंबर पूछा। आइन्स्टीन पास रखी टेलीफोन डायरेक्टरी में अपना नंबर ढूँढने लगे। सहकर्मी चकित होकर बोला- 'आपको अपना खुद का टेलीफोन नंबर भी याद नहीं है?'

'नहीं'- आइन्स्टीन बोले- 'किसी ऐसी चीज को मैं भला क्यों याद रखूँ जो मुझे किताब में ढूँढने से मिल जाती है'। आइन्स्टीन कहा करते थे कि वे कोई भी ऐसी चीज याद नहीं रखते जिसे दो मिनट में ही ढूँढा जा सकता हो।

क्या आप ऐसा सोचते हो कि टेलीफोन नंबर याद न रखने से, मोजे न पहनने से और गणित में कमजोर होने से आइन्स्टीन जैसी अनूठी प्रतिभा की पहचान हो सकती है? सदगुरुओं के प्रमाण भी हम ऐसी ही बचकानी बातों के आधार पर खोजने के प्रयास करते हैं। नग्न रहने से कोई महावीर नहीं हो जाता, दाहिने कंधे पर चादर ओढ़ने से कोई बुद्ध नहीं बन जाता; पिता का आज्ञाकारी होने से कोई राम नहीं हो जाता। यद्यपि हजारों सालों से इन्हीं सस्ते उपायों द्वारा महापुरुष बनने के क्षुद्र व हास्यास्पद उपाय किए जा रहे हैं।

आपकी जिज्ञासा ही गलत है कि सदगुरु को परखने की क्या कसौटी है? पूछना चाहिए कि मैं सद-शिष्य कैसे बनूं? आप तो गुरु की परीक्षा लेने चले! अगर इतनी अक्ल होती कि सही क्या, गलत क्या, तब आपको किसी गुरु की जरूरत ही न पड़ती। आप पर्याप्त ज्ञानी होते। दूसरे लोग आपको खोजते हुए आते।

अपनी वस्तु-स्थिति पहचानो। आपको सीखना है कि परीक्षा लेनी है? व्यर्थ के सवालों में न उलझो। जीवन के किसी भी आयाम में, प्रतिभाशाली लोग सदा विचित्र ही होते हैं। पहले से रेडीमेड कसौटी पर नहीं कसे जा सकते।

67

जिंदगी में भराव

कल किसी ने पूछा– सब कुछ होते हुए भी जिंदगी में इतना खालीपन क्यों लगता है?

मैंने कहा–जिसे आप 'सब कुछ' कह रहे हो, वह वास्तव में 'सब कुछ' नहीं होगा। जिससे भराव न होता हो, वह 'ना–कुछ' होगा। यही ना–कुछ की परिभाषा है। वह भ्रम होगा, सिर्फ लगता होगा कि है, परंतु होगा नहीं। क्षितिज जैसा होगा। फिर मैंने उन्हें एक कथा सुनाई कि एक राजा था। वह बेहद न्यायप्रिय, दयालु और विनम्र था। उसके तीन बेटे थे। जब राजा बूढ़ा हुआ तो उसने किसी एक बेटे को राजगद्दी सौंपने का निर्णय किया। इसके लिये उसने तीनों की परीक्षा लेनी चाही। उसने तीनों राजकुमारों को अपने पास बुलाया और कहा, 'मैं आप तीनों को एक छोटा सा काम सौंप रहा हूं। उम्मीद करता हूं कि आप सभी इस काम को अपने सर्वश्रेष्ठ तरीके से करने की कोशिश करेंगे।'

राजा के ऐसा कहने पर राजकुमारों ने हाथ जोड़ कर कहा, 'पिताजी, आप आदेश दीजिए। हम अपनी ओर से कार्य को सर्वश्रेष्ठ तरीके से करने का भरपूर प्रयास करेंगे।' राजा ने प्रसन्न होकर उन तीनों को कुछ स्वर्ण मुद्राएं दी और कहा कि इन मुद्राओं से कोई ऐसी चीज खरीद कर लाओ जिससे कि पूरा कमरा भर जाए और वह वस्तु काम में आने वाली हो।

यह सुन कर तीनों राजकुमार स्वर्ण मुद्राएं लेकर अलग–अलग दिशाओं में चल पड़े। बड़ा राजकुमार बड़ी देर तक माथापच्ची करता रहा। उसने सोचा कि इसके लिये रूई उपयुक्त रहेगी उसने उन स्वर्ण मुद्राओं से काफी सारी रूई खरीद कर कमरे में भर दी और सोचा कि इससे कमरा भी भर गया ओर रूई बाद में रजाई भरने के काम आ जायेगी। मंझले राजकुमार ने ढेर सारी घास से कमरा भर दिया उसे लगा कि बाद में घास, गाय व घोड़ों के खाने के काम आ जायेगी।

उधर छोटे राजकुमार ने तीन दीए, एक बांसुरी और एक फूलों का गुलदस्ता खरीदा। बची हुई स्वर्ण मुद्राओं से उसने गरीबों को भोजन करा दिया। पहला दीया उसने कमरे में जलाकर रख दिया। इससे पूरे कमरे में रोशनी भर गई दूसरा उसने अंधेरे चौराहे पर रख दिया जिससे वहां भी रोशनी हो गई और तीसरा उसने अंधेरी चौखट पर रख दिया जिससे वह हिस्सा भी जगमगा उठा। अपने कक्ष में गुलदस्ता सजाकर, बैठकर वह बांसुरी बजा रहा था। तभी उसके पिता का आगमन हुआ।

राजा ने तीनों राजकुमारों की वस्तुओं का निरीक्षण किया। अन्त में छोटे राजकुमार के सूझबूझ भरे निर्णय को देखकर वह बेहद प्रभावित हुआ और उसे ही राजगद्दी सौंप दी।

जीवन को प्रेम, करुणा, ओंकार के संगीत, चेतना के प्रकाश और दिव्य सौंदर्य व सुगंध से भरो। इन सूक्ष्म गुणों जिंदगी में भराव आता है। जिसे आप 'सब कुछ' कह रहे हो, वह स्थूल सामान जीवन में संतोष नहीं ला सकता।

असली संपदा की चोरी

कहते हैं कि ओंकार का संगीत ही वह परमधन है जिसे सदगुरु अपने शिष्य को देता है। कृपया इस संबंध में प्रकाश डालें। क्या वह भक्ति, ज्ञान या कर्मयोग से प्राप्त नहीं हो सकता?

पहले एक प्यारी कथा सुनो। महान बौद्ध संत नागार्जुन के पास संपत्ति के नाम पर केवल पहनने के वस्त्र थे। उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए उस राज्य की रानी ने उनको सोने का एक भिक्षापात्र दे दिया। यह सोचकर कि भिक्षापात्र तो वे रखते ही हैं, थोड़ा कीमती रखेंगे तो अच्छा लगेगा।

जब नागार्जुन रात को एक मठ के खंडहरों में विश्राम करने के लिए लेटने लगे तब उन्होंने एक चोर को एक दीवार के पीछे से झांकते हुए देख लिया। चोर को साधु से क्या लेना-देना, वह तो कीमती पात्र के पीछे आया होगा!

उन्होंने चोर को वह भिक्षापात्र देते हुए कहा- 'इसे तुम मेरी भेंट मानकर रख लो। अब तुम घर जाकर विश्राम करो और मुझे भी आराम से सोने दो।'

चोर ने उनके हाथ से भिक्षापात्र ले लिया और चलता बना। कुछ माहों के बाद किसी अन्य चोरी के मामले में जब चोर के घर की तलाशी ली गई तो यह पात्र मिल गया जिसे रानी ने पहचान लिया। राज्य में नागार्जुन की खोज की गई। उनसे पूछा गया कि क्या आपका पात्र चोरी गया है? वे बोले- नहीं, मैंने किसी को उपहार दिया है। चोरी प्रमाणित न होने पर चोर को छोड़ दिया गया।

दूसरे दिन वह भिक्षापात्र वापस देने आया और नागार्जुन से बोला- 'जब आपने उस रात को यह भिक्षापात्र मुझे यूँ ही दे दिया तब मुझे अपनी निर्धनता का पहली बार बोध हुआ था। लेकिन आज तो आपने मेरी जान बचाई। आप ही सच्चे धनी हैं। कृपया मुझे ज्ञान की वह संपत्ति दें जिसके सामने ऐसी सभी वस्तुएं तुच्छ प्रतीत होती हैं।'

नागार्जुन बोले- 'मैं प्रतीक्षा करता था कि किसी दिन तुम असली संपदा की चोरी करने जरूर आओगे। यह परमधन प्रत्येक के अंदर मौजूद है। आओ, उस खजाने को खोलने की चाबी तुम्हें बता दूं। वह कुंजी है- ध्यान।'

आपने पूछा है कि ओंकार का संगीत ही वह परमधन है जिसे गुरु अपने शिष्य को देता है। हां भी और नहीं भी। हां, इसलिए क्योंकि गुरु के बिना यह प्राप्त करना लगभग नामुमकिन है। नहीं, इसलिए क्योंकि वस्तुतः गुरु कुछ देता नहीं, शिष्य कुछ लेता नहीं।

यह मौन-ध्वनि प्रत्येक की चेतना का स्वर है। यह धन भीतर छिपा है। गुरु केवल संकेत करता है कि अपने अंदर देखो- अपने भीतर सुनो। इस अंतर्दर्शन और अंतर्श्रवण की कला का नाम ही ध्यान है।

परमधन पाने के पूर्व बाह्यधन की निरर्थकता का बोध हो जाना अनिवार्य शर्त है। हम जिसे सम्पत्ति कहते हैं, वह उपयोगी है, संसार में कामचलाऊ है, मगर उसका कोई आत्यंतिक मूल्य नहीं है। उसे पाकर सुविधाएं मिल सकती हैं, शांति नहीं। सुख के साधन उपलब्ध हो सकते हैं, आनंद नहीं।

स्मरण रखना, सुविधाओं के, सुख-साधनों के खिलाफ मत हो जाना। वे अपनी जगह उपयोगी हैं, ठीक हैं। बस इतना समरण रखना, शांति, आनंद, प्रेम की असली संपदा स्वयं के भीतर है जो ओंकार श्रवण में डूबकर पाई जाती है। उसे खोजो। उसकी खोज में सहयोग प्राप्त करने के लिए किसी ऐसे व्यक्ति को तलाशो, जिसने उसे जाना हो, जो उसे पा चुका हो। ऐसे धनी व्यक्ति को ही सदगुरु पुकारा जाता है।

जब संत रविदास से दीक्षित हुईं, तब मीराबाई गा उठीं-

पायो जी मैंने रामरतन धन पायो।

वस्तु अमोलक दी मेरे सदगुरु, किरपा कर अपनायो।।

आपने पूछा है कि क्या वह धन भक्ति से प्राप्त नहीं हो सकता? अगर हो सकता तो मीराबाई को हो गया होता। उनसे ज्यादा भक्तिभाव किसमें रहा होगा! बाल्यावस्था से ही कृष्ण के गहन प्रेम में डूबी रहीं। लेकिन पूर्णावतार भगवान के प्रति इतनी गहरी श्रद्धा भी काम न आ सकी। एंक साधारण से दिखने वाले, नीची जाति के समझे जाने वाले अनपढ़ व्यक्ति से शिक्षा लेने पर रहस्य खुला। यह राज कुछ ऐसा है कि आमने-सामने होने पर प्रगट किया जा सकता है। इसलिए न शास्त्रों का ज्ञान काम आता, न भक्ति काम आती, न कर्मयोग काम आता। आत्मिक संपदा को पाने के लिए, आत्मिक संपदा को जानने वाला जीवित गुरु ही काम आता है।

प्रतीक्षा की शक्ति

परमगुरु ओशो को यह पौराणिक कथा बहुत प्रिय रही है–

एक बार देवर्षि नारद जी एक पर्वत से होकर गुजर रहे थे। अचानक उन्होंने देखा कि एक वृक्ष के नीचे एक वृद्ध तपस्वी साधना कर रहा है। वह बीच-बीच में आंखें खोलकर देख लेता है। उसने उन्हें प्रणाम करके पूछा कि 'बाट देखते-देखते मेरे नैन बूढ़े हो गए। अब तो दिखाई भी धूमिल पड़ने लगा। मुझे प्रभु के दर्शन कब होंगे?'

नारद जी ने पहले तो कुछ कहने से इंकार कर दिया, फिर बार-बार आग्रह करने पर बताया कि इस नीमवृक्ष पर जितनी छोटी-छोटी टहनियां हैं उतने ही वर्ष उसे और लगेंगे। नारद जी की बात सुनकर तपस्वी बेहद निराश ही नहीं, नाराज भी हो गया। उसने सोचा कि इतने वर्ष उसने घर-गृहस्थी में रहकर भोग-विलास किया होता तो शायद उसे ज्यादा आनंद मिलता। वह बोला, 'ऊ, मैं बेकार ही संन्यासी बन गया।' नारद जी उसे चिंतित-परेशान देखकर वहां से चले गए। वह बूढ़ा भी कुपित हो पर्वत से उतरकर नगर में लौट गया।

आगे जाकर संयोग से नारद जी एक ऐसे जंगल में पहुँचे जहाँ एक युवा साधु ध्यानमग्न था। वह एक प्राचीन और अनंत पत्तों से भरे विराट वटवृक्ष के नीचे बैठा हुआ था। नारद जी ने उसे समाधि से जगाकर पूछा- प्रभु के दर्शन में लगने वाले समय के बारे में जानना है?

उसने नारद जी को टालना चाहा कि जब भगवान उचित समझेंगे तब दर्शन हो जाएंगे। प्रभु के राज्य में सब न्याय और नियम से चल रहा है। पता लगाने का अधैर्य क्यों करना! जो उसकी मर्जी, जब उसकी मर्जी!!

मगर फिर भी नारद जी ने कहा कि इस वृक्ष पर जितने पत्ते हैं उतने ही जन्म अभी और लगेंगे। हाथ जोड़कर खड़े उस तपस्वी ने जैसे ही यह सुना, वह खुशी से झूम उठा और बार-बार यह कहकर नृत्य करने लगा कि आश्चर्य, प्रभु उसे इतने शीघ्र दर्शन देंगे! उसके रोम-रोम से हर्ष की तरंगें उठने लगीं। नारद जी मन ही मन सोचने लगे कि इन दोनों तपस्वियों में कितना अंतर है। एक को अपने तप और त्याग पर ही संदेह है। इतने सालों तक वन में रहकर भी वह सांसारिक मोह से अभी उबर नहीं सका और दूसरे को ईश्वर पर इतनी श्रद्धा है कि वह हजारों वर्षों प्रतीक्षा के लिए तैयार है।

तभी वहां अचानक अलौकिक प्रकाश फैल गया और प्रभु प्रकट होकर बोले, 'वत्स! नारद ने जो कुछ बताया वह सही था पर तुम्हारी श्रद्धा, साधना और प्रतीक्षा में इतनी गहराई है कि मुझे अभी और यहीं प्रकट होना पड़ा।'

प्रयास और प्रतीक्षा धर्म के अनिवार्य अंग हैं। संकल्प और समर्पण के बिना साधना संभव नहीं। निष्ठापूर्वक श्रम करना, फल की चिंता मत करना। तुमने बीज बोए, खाद डाला, पानी सींचा, अंकुरण होगा। वृक्ष बढ़ेगा, वसंत ऋतु आएगी और फूल-फल अपने समय पर आएंगे। उनकी फिक्र करना व्यर्थ है। अपने कर्म का ख्याल रखो। शेष सब नियमानुसार होता है।

अधैर्य अशांति की जड़ है। अनंत प्रतीक्षा करने को राजी व्यक्ति शांत हो जाता है। वह शांति ही समाधि का द्वार बन जाती है।

दुख और क्रोध

दुख और क्रोध पर ध्यान करने को भगवान महावीर ने कृष्ण ध्यान कहा है। इन दोनों में क्या संबंध है?

दुख, अप्रगट क्रोध है। क्रोध, दुख का प्रगट रूप है। जहां हम नाराज हो सकते हैं, दूसरे को सता सकते हैं, अपमानित कर सकते हैं; वहां हम क्रोधित हो जाते हैं। जब बदला लेना संभव नहीं, सामने वाला ज्यादा शक्तिशाली है, अथवा पकड़ के बाहर है; तब हम मजबूरी में दुखी हो जाते हैं। कामनापूर्ति में पड़ी बाधा से उत्पन्न क्षोभ के अप्रगट एवं प्रगट रूप के नाम हैं दुख और क्रोध।

यह घटना सुनो- मुल्ला नसरुद्दीन अपने घोड़े को बिजली के खंबे से बांधकर, रेस्टारेंट में चाय पीने गया। लौटकर घोड़े को हरे रंग से वार्निश पेंट किया हुआ देखा तो आग-बबूला हो गया। अपशब्द कहते हुए चिल्लाया किस हरामजादे ने यह जुर्रत की है? उसकी हड्डी-पसली आज चकनाचूर कर दूंगा। खुदा भी बचाए तो आज वह जिंदा बचने वाला नहीं।

बगल में खेल रहे एक बच्चे ने कहा- अंकल, मैं बताऊं यह पेन्टिंग किसने की है... वो आदमी भीतर रेस्टारेंट में गया है। मुल्ला बच्चे के संग भीतर पहुंचा। बच्चे ने अंगुली उठाकर साढ़े छः फुट ऊंचे, सवा सौ किलो के एक पहलवान पठान की तरफ इशारा करके कहा- ये मोटे अंकल ने। उसे देखकर मुल्ला के हाथ-पैर कांप गए। माथे पर पसीना आ गया। पठान गुर्राते हुए बोला- क्या बात है?

मुल्ला ने कहा- सर जी, आपने इतना बेहतरीन रंग किया है मेरे घोड़े पर, कि उसी का शुक्रिया अदा करने आया हूं। वाह, क्या शानदार डिजाइन बनाई है! हुजूर, पहला कोट सूख गया है, दूसरा कोट कब करेंगे? और यह भी बता दीजिए कि आपका बिल कितना हुआ, ताकि मैं पेमेन्ट कर दूं... बोलिए जनाब।

दूसरी घटना सुनो- अहमदाबाद की महात्मा गाँधी विज्ञान अन्वेषणशाला में कुछ विद्यार्थी भौतिकी के महत्वपूर्ण प्रयोग कर रहे थे। यह प्रयोगशाला विक्रम साराभाई ने हाल में ही शुरू की थी। प्रयोग के दौरान भारी विद्युत प्रवाह के कारण एक बहुमूल्य यंत्र जल गया। वह यंत्र विदेश से मंगाया गया था और भारत में उपलब्ध नहीं था। यंत्र के अभाव में अनेक महत्वपूर्ण प्रयोग स्थगित करने पड़ जाते।

विद्यार्थी डर गए कि वे साराभाई को इस बारे में कैसे बताएं। साराभाई कुछ ही क्षणों में प्रयोगस्थल पर आनेवाले थे।

'वे आ रहे हैं। तुम बता दो कि यंत्र जल गया है'।

'हमने जानबूझ कर तो ऐसा नहीं किया! कहीं वे नाराज हो गए तो?'

'क्या करें, कैसे बताएं? मुझे डर लग रहा है'।

साराभाई ने उन्हें फुसफुसाते हुए सुन लिया। उन्होंने पूछा- 'क्या बात है? कोई समस्या है क्या?'

'सर, प्रयोग के दौरान विद्युत मीटर जल गया। उसमें से भारी विद्युत प्रवाह हो गया।'

'इतनी सी बात! परेशान मत हो। वैज्ञानिक अध्ययन और प्रयोगों में ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं। विद्यार्थी गलतियों से ही तो सीखते हैं! अगली बार प्रयोग के पहले अच्छे से जांच कर लेना'- साराभाई बहुत सरलता से बोले।

उनके इस उत्तर को सुनकर दोनों युवा वैज्ञानिकों के मन में उनके प्रति असीम श्रद्धा भर गई। भविष्य में वे प्रयोगों के दौरान पर्याप्त सावधानी बरतने लगे। क्योंकि साराभाई इस हानि पर न तो क्रोधित हुए और न ही उन्होंने इसके लिए दुःख व्यक्त किया। वे दोनों एक ही क्षोभ के, अशांति के, मेन्टल इर्रिटेशन के दो पहलू हैं। जब दोनों न हों, तब जानना कि व्यक्ति में क्षोभ ही पैदा नहीं हुआ। वही वास्तविक शांति का प्रमाण है।

भगवान महावीर ने ध्यान के दो रूप कहे हैं– शुक्ल अर्थात् शुभ्र ध्यान तथा कृष्ण अर्थात् काला ध्यान। कृष्ण ध्यान के दो ढंग कहे हैं– आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान, यानि दुख एवं क्रोध पर ध्यान। जब ये दो घटनाएं घटती हैं, तब स्वाभाविक रूप से बड़ी एकाग्रता सध जाती है। मन की चंचलता मिट जाती, दुख या क्रोध के विषय पर सारी ऊर्जा एकत्रित हो जाती है। काश, ऐसी ही अवस्था शुभ भावनाओं के प्रति बन जाए तो वह शुक्ल ध्यान हो जाए।

71

परमात्मा प्रतिध्वनि है

परमगुरु ओशो कहते हैं कि परमात्मा प्रतिध्वनि जैसा है, इसका क्या तात्पर्य है?

जैसी आवाज 'इको प्वाइंट' पर करो वैसी ही आवाज कई गुना होकर वापस लौट आती है। आप गालियां दो तो आप पर गालियों की बौछार हो जाती है, और यदि आप मधुर गीत गाओ तो सब तरफ से गीतों की गूंज वातावरण को सुंदर बना देती है। यही तात्पर्य है ओशो के इस महत्त्वपूर्ण वचन का। इस कहानी से शायद जल्दी ख्याल में आ जाए-

अफ्रीकी लोक-कथा है कि अनानसी नामक किसान जहाँ रहता था वहां बहुत भीषण अकाल पड़ा। अनानसी और उसका परिवार भूख से बेहाल हो गया। एक दिन जब अनानसी उदास मन से समुद्र की ओर देख रहा था तब उसने समुद्र के बीचोंबीच अचानक एक खजूर का पेड़ पानी में से ऊपर उठते देखा। अनानसी ने तय किया कि वह किसी भी तरह उस पेड़ तक पहुंचेगा और उसपर चढेगा। क्या पता पेड़ में उसके लिए कुछ खजूर लगे हों! अब, वहां तक जाना ही बड़ी समस्या थी।

लेकिन हर समस्या का समाधान हो ही जाता है। अनानसी जब सागरतट पर पहुंचा तो उसने वहां एक टूटी हुई नौका पड़ी देखी। नौका को कामचलाऊ ठीक करके उसने खेना शुरू कर दिया।

पेड़ तक पहुँचने के अनानसी के पहले छः प्रयास असफल हो गए। हर बार ताकतवर थपेडों ने उसकी नौका को सागरतट पर ला पटका। लेकिन अनानसी भी हार मानने वाला नहीं था। अपने सातवें प्रयास में वह पेड़ तक पहुँचने में कामयाब हो गया। नौका को उसने पेड़ से बाँध दिया और पेड़ पर चढ़ने लगा। पेड़ पर कुछ खजूर लगे थे जो उस वक्त के लिए काफी थे। अनानसी खजूर तोड़-तोड़कर उन्हें नौका में गिराने लगा लेकिन एक भी खजूर नौका में नहीं गिरा। सारे समुद्र के पानी में गिरकर डूब गए। पेड़ पर सिर्फ एक ही खजूर बचा रह गया। अनानसी ने उसे बड़ी सावधानी से नौका में फेंका लेकिन वह भी पानी में गिरकर डूब गया। बेचारे अनानसी ने खजूरों के लिए इतनी मेहनत की लेकिन उसे एक भी खाने को नहीं मिला।

अनानसी बहुत दुखी हो गया। वह खाली हाथ घर नहीं जाना चाहता था। अपने जीवन से निराश होकर उसने आत्महत्या करने के लिए समुद्र में छलांग लगा दी। उसे यह

देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि डूबकर मरने के बजाय वह सागरतल तक सुरक्षित चला गया और वहां खड़ा हो गया। उसने वहां एक झोपड़ी देखी। झोपड़ी में से एक बूढ़े बाबा निकलकर बाहर आए। उन्होंने अनानसी से पूछा कि वह वहां क्यों आया है। अनानसी ने अपनी दर्द भरी दास्तान बूढ़े बाबा को सुना दी और बाबा ने अनानसी के प्रति बहुत सहानुभूति दिखाई।

बाबा झोपड़ी के भीतर गए और लोहे की एक हांडी लेकर बाहर आए। उन्होंने वह हांडी अनानसी को दे दी और कहा कि वह अब कभी भूखा नहीं रहेगा। 'इस हांडी से तुम जितना खाना चाहे निकाल सकते हो- इससे यह कहना 'जो कुछ तुम अपने पुराने मालिक के लिए करती थी वही तुम मेरे लिए करो' बस'। अनानसी ने हांडी के लिए बाबा का शुक्रिया अदा किया और वहां से चल पड़ा।

अनानसी हांडी को एक बार परखकर देखना चाहता था। अपनी नौका में बैठकर उसने हांडी से कहा- 'हांडी, हांडी, जो कुछ तुम अपने पुराने मालिक के लिए करती थी वही तुम मेरे लिए करो'- इतना कहते ही हांडी सबसे स्वादिष्ट पकवानों से भर गई। अनानसी ने भुखमरों की तरह लजीज खाना खाया और आनंद मनाया।

जब वह अपने गाँव पहुंचा तो सबसे पहले उसके मन में घर जाकर अपने परिवार को हांडी से भरपूर खाना खिलाने का विचार आया। लेकिन एक स्वार्थी विचार ने भी उसे घेर लिया- 'लेकिन कहीं ऐसा न हो की हांडी की दिव्यशाक्तियाँ जल्दी ही चुक जाएँ और मैं पहले की तरह खाने को तरसने लगूं। नहीं, नहीं, मैं तो हांडी को सिर्फ अपने लिए ही छुपाकर रखूँगा और रोज जी भरके बढ़िया खाना खाऊँगा'। उसने हांडी को छुपा दिया।

वह घर पहुंचा और ऐसा दर्शाया जैसे वह भूख से मरा जा रहा है। दूर-दूर तक किसी के पास अनाज का एक दाना भी नहीं था। अनानसी के बीबी-बच्चे भूख से बेहाल हो रहे थे लेकिन उसने उनकी कोई परवाह नहीं की। अपने घर के एक कमरे में उसने हांडी को छुपाया हुआ था। वह वहां रोज जाता और दरवाजा बंद करके हांडी से खूब सारा बढ़िया खाना जी भर के खाता। उसके बीबी-बच्चे सूखकर कटखने हो गए लेकिन अनानसी मोटा होता गया।

घर के दूसरे लोग अनानसी पर शक करने लगे और इसका कारण तलाशने लगे। अनानसी के बेटे कवेकू के पास एक जादुई ताकत थी और वह पलक झपकते ही अपने आप को किसी भी जीव में बदल सकता था। वह एक मक्खी बन गया और अपने पिता के इर्दगिर्द मंडराने लगा। भूख लगने पर अनानसी कमरे में गया और उसने हांडी से निकलकर बढ़िया खाना खाया। फिर पहले की भांति हांडी को छुपाकर वह बहार निकलकर खाने की तलाश करने का नाटक करने लगा।

जब वह गाँव से दूर चला गया तब कवेकू ने हांडी को बाहर निकाला और अपनी माँ और भाई-बहनों को खाने के लिए बुलाया। उन सबने उस दिन इतना अच्छा खाना खाया कि उन्हें अनानसी पर बहुत गुस्सा आने लगा। श्रीमती अनानसी अपने पति को सबक सिखाना चाहती थी इसलिए वह हांडी लेकर गाँव के एक मैदान में गई ताकि वहां सभी को बुलाकर खाना खिला सके। हांडी ने कभी भी इतना खाना नहीं बनाया था इसलिए वह बहुत गरम हो गई और पिघलकर बह गई। अब कुछ नहीं हो सकता था।

भूख लगने पर अनानसी वापस अपने कमरे में आया और उसने हांडी की तलाश की। उसे हांडी नहीं मिली। वह समझ गया कि किसी ने हांडी को ढूंढ लिया है। उसका पहला शक अपने परिवार पर गया और उसने अपने बीबी-बच्चों को सजा देने के बारे में सोचा।

अनानसी ने किसी से कुछ नहीं कहा और अगली सुबह का इंतजार करने लगा। सूरज निकलते ही वह सागरतट की और चल दिया और टूटी नौका में बैठकर वह उसी खजूर के पेड़ की और चला। इस बार नाव बिना किसी रूकावट के अपने आप पेड़ तक जाकर ठहर गई। अनानसी नौका को पेड़ से बांधकर पेड़ पर चढ़ने लगा। पहले की भांति पेड़ पर फल लगे हुए थे। अनानसी ने फल तोड़कर उन्हें संभालकर नौका में फेंका और सारे फल ठीकठीक नौका में ही गिरे। एक भी फल पानी में नहीं गिरा। यह देखकर अनानसी ने नौका से सारे फल उठाये और उन्हें जानबूझ कर पानी में फेंक दिया और फेंकते ही समुद्र में छलांग लगा दी। पहले की भांति वह बूढ़े बाबा की झोपड़ी तक पहुंचा और उन्हें सारी बात बता दी। बाबा ने भी पहले की भांति अनानसी से सहानुभूति जताई।

इस बार बाबा झोपडी के भीतर गए और अन्दर से एक डंडा लेकर आये। उन्होंने डंडा अनानसी को दे दिया और दोनों ने एक दूसरे से विदा ली। नौका में बैठते ही अनानसी ने डंडे की ताकत जांचने के लिए उससे कहा- 'डंडे, डंडे, जो कुछ तुम अपने पुराने मालिक के लिए करते थे वही तुम मेरे लिए करो'। इतना सुनते ही डंडे ने अनानसी को दनादन मार-मारके लाल-नीला कर दिया। अनानसी किसी तरह डंडे से बचकर पानी में कूद गया और अपनी नौका और डंडे को वहीं छोड़कर वापस अपने गाँव आ गया। घर पहुँचने पर उसने अपने बीबी-बच्चों से अपने बुरे आचरण के लिए माफी मांगी और वादा किया कि वह उनके प्रति हमेशा दयालुता और स्नेह रखेगा।

बुद्ध की अनासक्ति

भोग और त्याग के पार जाने का संदेश देकर सद्‌गुरु ओशो क्या दर्शाना चाहते हैं?

राग और विराग, आसक्ति एवं विरक्ति, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पूरा सिक्का ही छोड़ना होगा, एक पहलू को नहीं छोड़ा जा सकता। आसक्ति ही विरक्ति में परिवर्तित हो जाती है। आसक्ति मीठा दूध है तो विरक्ति दही है, उसी का खट्टा हो गया रूप। मित्रता बदल जाती है शत्रुता में, प्रेम-संबंध बन जाते हैं घृणा के संबंध। स्मरण रहे कि घृणा भी एक संबंध है। दुश्मनी और वैमनस्य कड़वे संबंध हैं।

मैंने सुना है कि एक दिन महर्षि और उनके शिष्यगण अनासक्ति के विषय पर चर्चा कर रहे थे। महर्षि ने कहा- 'भारतवर्ष में सदियों पहले ही किसी कवि ने अपने छंद में लिखा था 'प्रभु, तुमने मुझे तन ढंकने के लिए कपड़ा और भोजन करने के लिए हाथ दिए हैं। इनके अतिरिक्त मुझे और किसकी आवश्यकता है? मेरे लिए यही पर्याप्त हैं?'- संसार का समस्त वैभव चरणों में हो पर सोते समय सर के नीचे हाथ रखने में ही सुख मिलता है। महान शासक और सम्राट भी ऐसे ही सुख के लिए तरसते हैं। पहले मेरे पास बहुत कुछ था, अब मैं वीतरागी हूँ। मुझे दोनों दशाओं का अनुभव है। मेरे लिए हर प्रकार का स्वामित्व और परिग्रह बंधन ही प्रतीत हुआ।'

'क्या भगवान् बुद्ध अनासक्त का श्रेष्ठ उदाहरण नहीं हैं?'- एक भक्त ने पूछा।

महर्षि ने कहा- 'हाँ। अपने राजमहल में विश्व के समस्त वैभव के बीच भी बुद्ध के हृदय में खालीपन था। उनकी उदासी को दूर करने के लिए उनके पिता ने उनके लिए विलासिता के सभी साधन उपलब्ध कराये। लेकिन बुद्ध को शांति नहीं मिली। आधी रात को वे अपनी पत्नी और नवजात पुत्र को छोड़कर चले गए। छः वर्षों तक वे कठोर तप का पालन करते रहे। सांसारिक वस्तुओं से आसक्ति तो पहले ही छूट चुकी थी, किंतु तब धार्मिक समझी जाने वाली बातों से मोह हो गया था। अंततः जिस दिन उन्होंने तपस्या का भी त्याग कर दिया, परमानंद उपलब्ध हो गया। आत्मज्ञान प्राप्ति के पश्चात वे विश्व का कल्याण करने के लिए भिक्षु बनकर घूमते रहे। अपनी वास्तविक आंतरिक सुख-शांति बांटते रहे।'

'क्या वे अपने नगर में भिक्षु बनकर कभी आये?'- एक श्रद्धालु ने पूछा।

'हाँ। आये थे'- महर्षि बोले- 'उनके लौट आने का समाचार सुनकर उनके पिता राजा शुद्धोधन हाथी-घोड़े और राजसी ठाठबाठ के साथ राजमार्ग पर उन्हें लेने पहुंचे। लेकिन बुद्ध तो वहां से परे पगडंडी के रास्ते से आ रहे थे। अपने साथ आने वाले भिक्षुओं को उन्होंने भिक्षा लेने के लिए नगर के भिन्न-भिन्न स्थानों में भेज दिया, फिर वे अपने पिता के पास गए। उनके पिता को इसका भान नहीं था कि बुद्ध भिक्षुक के रूप में उनसे मिलेंगे। परन्तु बुद्ध की पत्नी यशोधरा ने उन्हें पहचान लिया। उसने उनके पुत्र राहुल को बुद्ध के

सामने दंडवत होने के लिए कहा और स्वयं उनके चरण छुए। बुद्ध के पिता तभी उन्हें पहचान सके। उन्होंने इसकी कल्पना भी नहीं की थी कि वे अपने पुत्र को कभी इस रूप में देखेंगे। वे बहुत क्रोधित हो गए और बुद्ध से बोले- 'यह तुमने क्या कर लिया है! ये पीत-वस्त्र क्यों पहने हैं? जिस व्यक्ति के चरणों में विश्व की सम्पदा होनी चाहिए वह एक भिखारी की भांति कैसे रह सकता है? बस, बहुत हो गया!'

'और वे क्रोध से जलती हुई आँखों से बुद्ध को देखते रहे। अपार करुणावान बुद्ध भी अपने पिता को देख रहे थे। बुद्ध ने उनसे कुछ नहीं कहा। उनके चेहरे की सौम्यता और शांति राजा शुद्धोधन के अंतस को भेदती जा रही थी। दृष्टियों के इस समर में उनके पिता परास्त हो गए। वे फूटकर रोते हुए अपने पुत्र के चरणों पर गिर गए। फिर उन्होंने भी अपने लिए वही शांति की संपदा मांगी।'

बुद्ध की पत्नी यशोधरा ने उनसे अकेले में मिलने की अनुमति मांगी। पहले तो अपना आक्रोश व्यक्त किया कि मुझे बताकर क्यों नहीं गए? क्या आपको भय था कि मैं क्षत्राणी आपको रोकती! उसने राहुल को बुद्ध के सामने खड़ाकर, कटाक्षपूर्ण स्वर में कहा- यहीं हैं तेरे पिता, जो तेरे जन्म दिन पर पलायन कर गए थे। इनसे वसीयत मांग ले। तुझे देने के लिए इनके पास क्या है, अपना हक मांग ले।

बुद्ध ने अपना भिक्षापात्र बेटे को थमाते हुए कहा- आत्मज्ञान की संपदा ही सच्चा धन है। उसी को प्राप्त करने के लिए तुझे संन्यास दीक्षा देता हूं।

यशोधरा चौंकी, शीघ्र ही उसकी भी आंखें खुलीं। उसने विनती की- 'मुझे भी वही शांति रूपी सम्पत्ति पानी है, कृपया मुझे भी दीक्षित करें।'

जब बुद्ध अपने परिवार जनों से मिलने गए तो अनेक भिक्षुओं के मन में शंका पैदा हो गई कि क्या भगवान को अब भी अपने नाते-रिश्तेदारों से लगाव है? सचाई यह है कि बुद्ध को न लगाव है, न अलगाव है। न पहले जैसा प्रेम है, न घृणा है। उनमें एक नए तत्व ने जन्म लिया है- करुणा। इसे समझना कठिन लगता है।

भोग और त्याग, दोनों के पार जाने का संदेश देकर सद्‌गुरु ओशो यही दर्शाना चाहते हैं कि वे दोनों दिखते हैं दो, किंतु हैं एक ही रोग के दो ढंग- राग-द्वेष का रोग। व्याधि से मुक्त होना है तो उसके सभी लक्षणों के प्रति सजग होना होगा।

एक शाम मुल्ला नसरुद्दीन की बीवी ने कहा- मियां, मैं जल्द ही तुम्हें दुनिया का सबसे सुखी इंसान बना दूंगी।

नसरुद्दीन ने उदास चेहरा बनाते हुए कहा- लेकिन गुलजान बेगम, मानो या न मानो। खुदा कसम, मुझे तुम्हारी बड़ी याद सताएगी। तुम्हारी मौत के बाद!

नसरुद्दीन पहले रागी था, बेचारा विवाह के पांच साल बाद विरागी हो गया है। जिसके संग रहो, उससे ऊब पैदा हो जाती है। इस विराग को वीतरागी होना मत समझ लेना। नसरुद्दीन की बीवी मर जाए तो तुरंत दूसरी शादी कर लेगा। राग कहीं और लग जाएगा। शायद कहीं और आसक्ति लग ही चुकी है, तभी पत्नी से विरक्ति हो गई है। इस द्वन्द्वात्मक खेल से जागो।

73

नजरियों में भेद

निगेटिव , पॉजीटिव और सम्यक दृष्टिकोण में अंतर समझाएं।

नकारात्मक नजरिये से तो सब परिचित हैं- हर चीज को दुखदायी कोण से देखने की आदत। सकारात्मक दृष्टि है- प्रत्येक घटना को सुखदायी नजरिये से देखने की कला। और, सम्यक दृष्टिकोण का अर्थ है- समस्त दृष्टियों से मुक्ति, अपनी तरफ से कुछ प्रक्षेपित न करना, कुछ साबित करने का प्रयास नहीं, कोई पूर्वाग्रह नहीं; सत्य जैसा है, वैसा ही देखने का साहस।

मुल्ला नसरुद्दीन के सेव के बगीचे थे। अधिकतर किसानों की भांति उसकी आदत भी सदा रोने की थी- कभी अति-वर्षा, बाढ़, किसी साल अल्प-वर्षा, सूखा। कहीं फसल में कीड़े, कहीं फलों का सड़-गल जाना। किसी वर्ष फसल ठीक नहीं आई, किसी वर्ष फसल तो ठीक आई मगर सभी की अच्छी फसल आने से बाजार में दाम गिर गए।

एक साल चमत्कार घटा- न ज्यादा धूप, न कम धूप। न अधिक, न न्यून बारिश। न कीट-पतंगे, न कोई अन्य रोग। खूब फसल आई लेकिन फिर भी बाजार में अच्छी कीमत मिली। खूब पैसा कमाया। किंतु फिर भी मुल्ला ज्यों का त्यों दुखी!

एक पड़ोसी ने कहा- भाईजान, अब तो खुश हो जाओ। जिंदगी में ऐसे सेव कभी देखे न थे। सभी सेव पैदा करने वाले प्रसन्न हैं, सम्पन्न हो गए हैं। आप क्यों मुंह लटकाए, उदास बैठे रहते हैं और खुदा को कोसते रहते हैं।

मुल्ला ने कहा- वे लोग नासमझ हैं जो खुश हो रहे हैं। उन बेवकूफों ने शायद इस तथ्य पर गौर नहीं किया कि इस साल कोई सेव सड़े-गले ही नहीं, इसलिए गाय-बैलों को, भेड़-बकरियों और भैसों को अच्छे खासे सेव खिलाने पड़ रहे हैं! हर साल जानवरों को सड़े फल खिलाकर काम चला लेते थे। और, इस साल फल बहुत मंहगे हैं। हमारे बाप-दादों ने कभी इमने मंहगे फल पशुओं को नहीं खिलाए थे। हाय, मैं तो लुट गया!

निगेटिव आदमी के पास अपने तर्क होते हैं और पॉजीटिव आदमी के पास भी। सुनो एक दूसरी घटना- न्यू जर्सी नामक अमेरिका के प्रान्त में, वेस्ट औरेंज नामक एक कस्बे में, एक सर्द रात थॉमस एडिसन की फैक्ट्री में रोज की तरह कामकाज का शोर हो रहा था। ऐसी अनेक योजनाओं पर काम चल रहा था जो एडिसन ने अपने सपनों को हकीकत में बदलने के लिए प्रारंभ की थीं। ऐसा कहा जाता था कि लोहे और कंक्रीट से बनी एडिसन की फैक्ट्री फायरप्रूफ थी, लेकिन आग की ताकत का अनुमान लगाना मुश्किल है।

१९१४ की उस जमा देने वाली सर्द रात कस्बे का आसमान फैक्ट्री से उठती आग की लपटों से दीप्तिमान हो उठा। एडिसन के २४ वर्षीय पुत्र चार्ल्स ने अपने पिता को बड़ी

मुश्किल से ढूंढा। वे जब मिले, एडिसन आग में जलती हुई फैक्ट्री का नजारा देख रहे थे। उनके सफेद हो चुके बाल सर्द हवा में हिल रहे थे और आग की भभक उनके अविचल चेहरे को चमका रही थी।

'मेरे हृदय में उनके लिए अतीव दर्द उमड़ आया'- बाद में चार्ल्स ने सबको बताया- 'चट्टान की तरह मजबूत वह ६७ वर्षीय वृद्ध बड़ी मेहनत से बनी अपनी फैक्ट्री को खाक होते देख रहा था। उन्होंने जब मुझे देखा तो वो चिल्लाकर मुझसे बोले- 'चार्ल्स! तुम्हारी माँ कहाँ है?' 'जब मैंने उन्हें बताया- 'मैं नहीं जानता', वे बोले 'उसे ढूंढो और यहाँ ले आओ! ऐसा दृश्य शायद उसे फिर कभी देखने को नहीं मिलेगा'।

अगले दिन एडिसन ने अपनी फैक्ट्री के अवशेषों को देखा और आग से हुए नुकसान के बारे में यह कहा- 'त्रासदी में भी कोई भलाई निहित होती है। हमारी सारी गलतियाँ आग की भेंट चढ़ गई हैं। भगवान का शुक्र है, अब हम नए सिरे से सब कुछ शुरू कर सकते हैं'। उस त्रासदी को देखने का एडिसन का नजरिया अनूठा है।

सकारात्मक दृष्टि है- प्रत्येक घटना को सुखदायी नजरिये से देखने की कला। निश्चित ही यह एक सुंदर कला है। निगेटिव आदत से छुटकारा हो, फिर यह पॉजीटिव कला विकसित हो जाए, तो ही सम्यकत्व की ओर यात्रा संभव है।

व्यापार में घाटा, पारिवारिक अशांति, तलाक, अवज्ञाकारी संतान, बड़ी बीमारी, किसी दुर्घटना में सपनों का चूर-चूर हो जाना... ये सारी घटनाएँ किसी आदमी को कितना तोड़ सकती हैं यह जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। जो भी बुरा हुआ उसके कारणों की खोज करो और उनसे सबक लेते हुए नए सिरे से शुरुआत करो। ऐसे नजरिये से जीने वाला व्यक्ति सदा प्रसन्न रहता है, मुसीबत को चुनौती समझता है। उसे अशुभ में छिपा शुभ नजर आता है। निगेटिव व्यक्ति शुभ में भी अशुभ खोजने में कुशल होता है।

समता भाव को उपलब्ध ऋषि शुभ-अशुभ के पार जीता है। उसका कोई आग्रह नहीं। वह सुख-दुख का अतिक्रमण कर गया, चिर-शांति में, आनंद में जीता है। वह सत्य के संग पूर्णतः राजी है।

निगेटिव दुख में, नरक में होता है। पॉजीटिव सुख में, स्वर्ग में होता है। और सम्यक दृष्टिकोण वाला मोक्ष में, निर्वाण में होता है। एक त्रिकोण से समझें। स्वर्ग और नरक, नीचे के दो आधारकोण हैं। मोक्ष मध्य में, ऊपर स्थित शीर्षकोण है। माना कि नीचे के दोनों कोणों से शीर्षकोण बराबर दूरी पर स्थित है लेकिन वहां पहुंचने का मार्ग स्वर्ग से होकर जाता है। नरक से कोई द्वार नहीं खुलता, कोई रास्ता ऊपर की ओर नहीं जाता।

धन्यभागी हैं वे लोग जो स्वर्ग में आ गए; उमंग में, उत्साह में, सुख में जीने की कला सीख गए। उनकी निर्वाण के परमानंद में जीने की संभावना बन गई।

नीति का सार

नैतिक व्यवहार के बारे में संक्षेप में कुछ बताने की कृपा करें।

पहले यह घटना सुनो-

रात्रि एक दावत में डॉक्टर साहब खड़े-खड़े किसी मित्र वकील से बातचीत कर रहे थे। आते-जाते लोग अक्सर डॉक्टर को देखकर रुकते और उनसे अपने स्वास्थ्य संबंधी परेशानियों के निदान के बारे में पूछने लगते। इससे बातचीत में बार-बार खलल पड़ रहा था। घंटे भर में डॉक्टर साहब परेशान हो गये। मुफ्त में इलाज चाहनेवाले लोगों पर रुष्ट होते हुए उन्होंने वकील से पूछ ही लिया- कार्यालय के बाहर सलाह लेने से आप लोगों को कैसे रोकते हैं?

कैसे भी नहीं रोकता- वकील साहब ने जबाब दिया- मैं तो उस समय सलाह दे देता हूं। हां, बाद में बिल जरूर भेज देता हूं।

डॉक्टर साहब सोच में पड़ गये। हांलाकि यह तरीका उन्हें कुछ कम अच्छा लगा लेकिन उन्होंने इस विचार को आजमाने के बारे में सोचा। दूसरे दिन, थोड़ा खराब महसूस करते हुए भी उन्होंने बिल बनाये, लिस्ट बनाई और चपरासी को देने के लिए उसे आवाज दी।

हाथ में लिफाफा लिये हुए चपरासी अंदर आया। डॉक्टर साहब ने खोलकर देखा। वकील साहब ने कल की सलाह के लिए बिल भेजा था।

बिल देखकर डॉक्टर साहब को अत्यंत बुरा लगा। उन्होंने तुरंत अपनी बनाई लिस्ट फाड़ दी।

चपरासी ने पूछा- साहब, आपने मुझे क्यों बुलाया?

डॉक्टर साहब बोले- ये कागज के टुकड़े कचरे में फेंकने के लिए ले जाओ।

दूसरों के संग वैसा व्यवहार न करो, जैसा आप नहीं चाहते कि कोई आपके संग करे। सारे नीति-शास्त्रों का सार-संक्षेप यही है।

75

क्रांतिकारी महापुरुष

मैं परंपरावादी हिन्दू हूं। आपकी विद्राही बातें उचित लगती हैं फिर भी उनका पालन नहीं कर पाता हूं। क्या करूं?

आप किसकी बात का पालन करते हो, कभी इस पर गौर करो। क्या आप भगवान कृष्ण की जीवन-शैली में अपना जीवन जीते हो? शंकराचार्य का अनुगमन करते हो? भगवान शिव के जैसे जीने का साहस है? हिन्दू धर्म यानि कौन? जो नाम मैंने गिनाए हैं, इनसे बड़े विद्रोही और क्रांतिकारी लोग कभी नहीं हुए। ये किस परंपरा को मानकर चले थे! एक उदाहरण सुनो।

श्री आद्य शंकराचार्य का जन्म लगभग ११ शताब्दी पूर्व त्रावणकोर के एक मलयाली ब्राह्मण के घर हुआ था। वे बहुत छोटे थे तभी उनके पिता का निधन हो गया। बचपन में ही उन्होंने वेदों और वेदांगों का पूरा अध्ययन कर लिया। उनके मन में संन्यस्त होने की बड़ी ललक थी और किसी गुरु की खोज में उन्होंने अपनी माता से घर त्यागने की आज्ञा माँगी परन्तु माँ ने उन्हें हमेशा मना कर दिया। परंपरा तो यह थी कि ७५ वर्ष की आयु में दीक्षा लेनी चाहिए।

उनके बारे में एक कथा यह भी कहती है कि नदी में एक मगरमच्छ ने उन्हें पकड़ लिया और उन्होंने अपनी माता को अपनी मृत्यु के साक्षात् दर्शन कराकर संन्यास के लिए अनुमति देने पर विवश कर दिया परन्तु अधिकांश विद्वान इसे कहानी मात्र ही मानते हैं। वास्तविकता में एक दिन जब उन्होंने पुनः अपनी माता से संन्यास के लिए अनुमति माँगी तो माँ ने दुखी होकर उनसे कहा- 'तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो। तुम्हारे संन्यास ले लेने के बाद मेरा अंतिम संस्कार कौन करेगा?'

बालक शंकर ने माँ को वचन दिया कि वे जहाँ भी होंगे, माँ का अंतिम संस्कार करने अवश्य आयेंगे।

मलयाली ब्राह्मणों ने शंकर के इस निर्णय का घोर विरोध किया। उनके अनुसार एक ब्रह्मचारी को संन्यास लेने का और संन्यासी को अंतिम संस्कार करने का कोई अधिकार नहीं था। लेकिन शंकर ने उनकी एक न सुनी। सभी उनसे रुष्ट हो गए और उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया गया।

जब शंकर की माँ की मृत्यु हुई तो ब्राह्मण समाज का कोई भी व्यक्ति उनके शव को श्मशान ले जाने के लिए आगे नहीं आया। शंकराचार्य न तो झुके और न ही उन्होंने

अपना धीरज खोया। वे स्वयं तो दुबले-पतले थे, किंतु मां की देह बहुत मोटी और भारी थी। वे अकेले उठाकर नहीं ले जा सकते थे अतः उन्होंने निर्जीव शरीर के कई टुकड़े कर दिए और स्वयं उन्हें एक-एक करके ले गए और अकेले ही अंतिम संस्कार किया। इतनी बगावती घटना पहले कभी सुनी है?

मात्र बत्तीस वर्ष की छोटी आयु में शंकराचार्य ने अपने अगाध पांडित्य, अनवरत प्रयत्न और लगन से देश भर में घूम-घूम कर वेदांत का प्रचार किया। देश के चार वेदपीठों की स्थापना का श्रेय भी उन्हें ही दिया जाता है। अगर वे ७५ साल की उम्र होने का इंतजार करते तो क्या कभी संन्यस्त हो पाते?

हम जिन्हें महापुरुष कहते हैं, उनसे अधिक क्रांतिकारी लोग नहीं हुए। इसीलिए तो वे आज तक स्मरणीय हैं। यदि उनसे कुछ सीखना है तो यही सीखो कि परंपरा की चिंता छोड़ो। आपके विवेक को जैसा उचित प्रतीत हो, वैसी जीवन जियो। मेरी बात भी मानने की आवश्यकता नहीं है। सबकी सुनो, समझो, लेकिन करो अपनी।

....और याद रखना, मैं ऐसी कोई बात कहता भी नहीं हूं, जो आपको माननी पड़े। हां, स्वयं जानने का प्रयास करो। खोज में लगो।

सम्यक वाणी

क्या मधुर वाणी ही सम्यक वाणी कहलाती है?

नहीं। मधुरता सम्यकता का केवल एक अंश मात्र है।

सम्यक वाणी के तीन तत्व हैं- सत्यं, शिवं, सुंदरं। सत्यं यानि तथ्य से हटकर नहीं, तथ्य को छिपाने वाली भी नहीं। शिवं अर्थात् मंगलं, शुभं, हितकारी, कल्याणकारी। और सुंदरं यानि मधुर, प्रिय लगने वाली, रससिक्त। यदि ये तीनों तत्व मौजूद हैं तो सोने में सुगंध आ गई, किंतु सदा ऐसा संभव नहीं। तीन मुमकिन नहीं, तो कम से कम दो तत्व हों। दो भी कठिन, तो कम से कम एक ही हो, मगर वह एक शिवं हो।

संक्षेप में समझ लो कि हितकारी न हों तो वे वचन असम्यक हैं, चाहे वे सुनने में मधुर लगें और चाहे वे तथ्यपूर्ण भी हों। किसी को हानि पहुंचाने के लिए बोला गया सत्य हिंसात्मक है। धोखा देने के लिए बड़े मीठे ढंग से बोला गया झूठ भी असम्यक है। जलालुद्दीन रूमी की किताब 'मसनवी' से ली गई यह कहानी सुनो-

एक बादशाह ने दो गुलाम सस्ते दाम में खरीदे। उसने सुंदर दिखने वाले पहले गुलाम से बातचीत की तो वह गुलाम बड़ा बुद्धिमान और मीठा बोलने वाला मालूम हुआ। जब होंठ ही मिठास के बने हुए हों तो उनमें से शरबत के सिवाय और क्या निकलेगा? मनुष्य की मनुष्यता उसकी वाणी में भरी हुई ही तो है। बादशाह जब इस गुलाम की परीक्षा कर चुका तो उसने दूसरे को पास बुलाकर देखा तो पाया कि यह बहुत बदसूरत और गंदा है। बादशाह इसके चेहरे को देखकर खुश नहीं हुआ परन्तु उसकी योग्यता और गुणों की जांच करने लगा। पहले गुलाम को उसने नहा-धोकर आने के लिए कह दिया और दूसरे से कहा- 'तुम अपने बारे में कुछ बताओ। तुम अकेले ही सौ गुलामों के बराबर हो। तुम्हें देखकर उन बातों पर यकीन नहीं होता जो तुम्हारे साथी ने तुम्हारे पीठ पीछे कही हैं। मैं तो चाहता हूं कि तुम भी इसकी कमियों का वैसा ही बखान करो जैसा इसने तुम्हारी कमियों का किया है।'

गंदे गुलाम ने जवाब दिया- 'उसने यदि मेरे बारे में कुछ कहा है तो सच ही कहा होगा। यह बड़ा सच्चा आदमी है। इससे ज्यादा भला आदमी मैंने और कोई नहीं देखा। यह हमेशा सच बोलता है। यह स्वभाव से ही सत्यवादी है इसलिए इसने जो मेरे संबंध में कहा है यदि वैसा ही मैं इसके बारे में कहूं तो झूठा दोष लगाना होगा। मैं इस भले आदमी की बुराई नहीं करुंगा। इससे तो यही अच्छा है कि मैं खुद को दोषी मान लूं। बादशाह सलामत, हो सकता है कि वह मुझमें जो ऐब देखता हैं वह मुझे खुद न दीखते हों। किसी की गलतियों को सामने लाना और ऐब ढूंढना हालांकि बुरा लगता है तो भी वह मेरे लिए

तो अच्छा ही है। आप फिक्र न करें, मैं स्वयं में सुधार लाने की कोशिश करूंगा।'

बादशाह ने कहा- 'अपने साथी की ज्यादा तारीफ न करो क्योंकि यदि मैंने तुम्हारा इम्तिहान लेने के लिए इसे बुला लिया तो तुम्हें शर्मिंदा होना पड़ेगा।'

गुलाम ने कहा- 'नहीं, मेरे साथी की अच्छाइयां इससे भी अधिक हैं। जो कुछ मैं अपने दोस्त के बारे के संबंध में जानता हूं यदि आपको उस पर यकीन नहीं तो मैं और क्या अरज करूं!'

इस तरह बहुत सी बातें करके बादशाह ने उस बदसूरत गुलाम की अच्छी तरह परीक्षा कर ली और जब पहला गुलाम स्नान करके बाहर आया तो उसको अपने पास बुलाया। बदसूरत गुलाम को वहां से विदा कर दिया। उस सुंदर गुलाम के रूप और गुणों की प्रशंसा करके कहा- 'पता नहीं, तुम्हारे साथी को क्या हो गया था कि इसने पीठ-पीछे तेरी खूब बुराई की!'

सुंदर गुलाम ने चिढ़कर कहा- 'बादशाह सलामत, इस नामुराद ने मेरे बारे में जो कुछ कहा उसे जरा तफसील से मुझे बताइये।'

बादशाह ने कहा- 'सबसे पहले इसने तुम्हारे दोगलेपन का जिक्र किया कि तुम सामने तो दवा हो लेकिन पीठ-पीछे दर्द हो।'

जब इसने बादशाह के मुंह से ये शब्द सुने तो इसका पारा चढ़ गया, चेहरा तमतमाने लगा और अपने साथी के बारे में उसके मुंह में जो आया वह बकने लगा। वह बदसूरत गुलाम की बुराइयां करता ही चला गया तो बादशाह ने इसके होंठों पर हाथ रख दिया और कहा- 'बस करो, हद हो गयी। उसका तो सिर्फ बदन ही गंदा है लेकिन तुम्हारी तो रूह भी गंदी है।'

अंत में जलालुद्दीन रूमी कहता है कि हमेशा ख्याल रखो, सुन्दर और लुभावना रूप होते हुए भी यदि मनुष्य में अवगुण हैं तो उसका मान नहीं हो सकता। और यदि रूप बुरा पर चरित्र अच्छा है तो उस मनुष्य के चरणों में बैठकर प्राण विसर्जन कर देना भी श्रेष्ठ है। काश, दोनों ही श्रेष्ठ हो, तब तो कहना ही क्या!

सम्यक वाणी के तीन तत्वों- सत्यं, शिवं, सुंदरं; में से बदसूरत गुलाम चाहे असत्य ही बोला, मगर उसकी वाणी में शिवं, सुंदरं मौजूद थे। सुंदर गुलाम के वचनों में सत्यं-शिवं; ये दो तत्व सर्वथा गायब थे। आरंभ में वे आकर्षक व मधुर थे, लेकिन अंततः परीक्षा लेने पर विषैले-कटु निकले। वह असत्य अशिव, असुंदर साबित हुआ।

सम्यक वाणी का मामला जरा जटिल है। केवल मधुरता पर्याप्त नहीं। तीन कसौटियों पर कसना होगा।

आत्मज्ञान का साधन

गृहस्थ जीवन और समाज का त्याग, परिवार व पैसों के प्रति निर्मोही होना, कठिन शारीरिक तपस्या, शास्त्र-अध्ययन, पूजा-प्रार्थना, तीर्थयात्रा, उपवास आदि में से सर्वश्रेष्ठ साधन कौन सा है जिससे आत्मज्ञान फलित होता है?

क्षमा करिए, इनमें से एक भी नहीं। इन साधनों से आत्मज्ञान का लक्ष्य प्राप्त नहीं होता। आइंस्टीन के जीवन का यह प्रसंग सुनो। नाजी गतिविधियों के कारण आइंस्टीन को जर्मनी छोड़कर अमेरिका में शरण लेनी पड़ी। उन्हें बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों ने अपने यहां आचार्य का पद देने के लिए निमंत्रित किया लेकिन आइंस्टीन ने प्रिंसटन विश्वविद्यालय को उसके शांत बौद्धिक वातावरण के कारण चुन लिया।

पहली बार प्रिंसटन पहुँचने पर वहां के प्रशासनिक अधिकारी ने आइंस्टीन से कहा- 'आप प्रयोग के लिए आवश्यक उपकरणों की सूची दे दें ताकि आपके कार्य के लिए उन्हें जल्दी ही उपलब्ध कराया जा सके।'

आइंस्टीन ने सहजता से कहा- 'आप मुझे केवल एक ब्लैकबोर्ड, कुछ चाक, कागज और पेन्सिल दे दीजिये।'

यह सुनकर अधिकारी हैरान हो गया। इससे पहले कि वह कुछ और कहता, आइंस्टीन ने कहा- 'और एक बड़ी टोकरी भी मंगा लीजिये क्योंकि अपना काम करते समय मैं बहुत सारी गलतियाँ भी करता हूं और छोटी टोकरी बहुत जल्दी रद्दी से भर जाती है।'

जब लोग आइंस्टीन से उनकी प्रयोगशाला के बारे में पूछते थे तो वे केवल अपने सर की ओर इशारा करके मुस्कुरा देते थे। एक वैज्ञानिक ने उनसे उनके सबसे प्रिय उपकरण के बारे में पूछा तो आइन्स्टीन ने उसे अपना फाउंटन पेन दिखाया। उनका दिमाग उनकी प्रयोगशाला थी और फाउंटन पेन उनका उपकरण।

कैलटेक (कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी) ने अलबर्ट आइंस्टीन को एक समारोह में आमंत्रित किया। आइंस्टीन अपनी पत्नी के साथ कार्यक्रम में हिस्सा लेने गए। उन्होंने माउन्ट विल्सन पर स्थित अन्तरिक्ष वेधशाला भी देखी। उस वेधशाला में उस समय तक बनी दुनिया की सबसे बड़ी अन्तरिक्ष दूरबीन स्थापित थी।

उतनी बड़ी दूरबीन को देखने के बाद श्रीमती आइंस्टीन ने वेधशाला के प्रभारी से पूछा- 'इतनी बड़ी दूरबीन से आप क्या देखते हैं?'

प्रभारी को यह लगा कि श्रीमती आइंस्टीन का खगोलशास्त्रीय ज्ञान कुछ कम है। उसने बड़े रौब से उत्तर दिया- 'इससे हम बह्मांड के रहस्यों का पता लगाते हैं।'

'बड़ी अजीब बात है। मेरे पति तो यह सब उनको मिली चिट्ठियों के लिफाफों पर ही कर लेते हैं' -श्रीमती आइंस्टीन ने कहा।

आपने जो साधन गिनाए हैं- गृहस्थ जीवन और समाज का त्याग, परिवार व पैसों के प्रति निर्मोही होना, कठिन शारीरिक तपस्या, शास्त्र-अध्ययन, पूजा-प्रार्थना, तीर्थयात्रा, उपवास आदि; इन उपकरणों से आत्मा को नहीं देखा जा सकता। इन उपकरणों की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि आत्मा अर्थात् चेतना, और चैतन्य का गुणधर्म है जानना, संवेदनशीलता, जागरूकता, होश। सामान्यतः हमारी चेतना बहिर्मुखी है, इसलिए जगत के विषयों को जानने में व्यस्त रहती है। अगर अंतर्मुखी हो जाए तो खुद को जान लेगी।

सवाल साधन परिवर्तन का नहीं, दिशा पलटने का है। तीर्थयात्रा का नहीं, अंतर्यात्रा का है। पूजा-प्रार्थना का नहीं, ध्यानस्थ होकर आत्म-रमण का है। शारीरिक तपस्या एवं शास्त्र-अध्ययन तो क्रमशः तन और मन से संबंधित हैं। जाना है तन-मन के पार, इन दोनों के द्रष्टा चेतन में। साक्षी होना ही उसका एकमात्र साधन कहा जा सकता है।

आइंस्टीन का दिमाग उनकी प्रयोगशाला थी और फाउंटन पेन उनका उपकरण। कम से कम कुछ तो था। आत्मज्ञान के लिए उनकी भी जरूरत नहीं है। कलम से लिखे शास्त्रों से मुक्त होना होगा, और मस्तिष्क में चल रहे विचारों का भी अतिक्रमण करना होगा। वे सब बाहर से संबधित हैं और भीतर से संबधित होने में असहयोगी हैं। वे 'पर' के बारे में हैं, 'स्व' से जुड़ने में बाधक हैं।

निष्क्रिय जागरूकता यानि ध्यान, सर्वश्रेष्ठ साधन है जिससे आत्मज्ञान फलित होता है। सर्वश्रेष्ठ कहना, तुलनात्मक शब्द का प्रयोग करना उचित नहीं, क्योंकि वही इकलौता साधन है।

आत्मज्ञ सद्गुरु और शास्त्राज्ञ पुरोहित

एक प्राचीन लोक कथा है कि किसी आदिवासी गाँव में भोला नामक एक जवान लड़का रहता था जो ढोरों को चराया करता था। जिस मैदान में वह अपने ढोर चराता था वहां उसने यह देखा कि रोज दोपहर में एक तय समय पर एक बंदरिया मैदान से गुजरकर झुरमुटों में पानी के कुंड तक जाती थी। उसे इसपर अचरज हुआ कि वह कैसी बंदरिया है और इस तरह रोज एक ही समय पर दबे-छुपे कुंड तक क्यों जाती है! उसने यह तय किया कि वह अगले दिन छुपकर इस बात का पता लगायेगा। अगले दिन जब बंदरिया मैदान से गुजरी तो उसने दबे पाँव उसका पीछा किया और झाड़ियों में छुपकर उसे देखने लगा। उसकी आँखें यह देखकर फटी रह गईं कि कुंड के पानी में उतरने से पहले बंदरिया ने अपनी खाल उतार दी और वह अपूर्व सुंदरी में बदल गई! नहाने के बाद वह दिव्य अप्सरा कुंड से बाहर आई और बंदरिया की खाल पहन के वापस गाँव की ओर चल दी। भोला ने यह देखने के लिए उसका पीछा किया कि वह कहां जाती है। उसने उस मदारी के घर का पता लगा लिया और वापस काम पर लौट गया।

उन्हीं दिनों लड़के के माँ-बाप उसकी शादी का विचार कर रहे थे और उसके लिए एक लड़की ढूंढ रहे थे। भोला ने अपने माँ-बाप से कहा कि वह शादी करेगा तो एक बंदरिया से ही! बंदरिया से शादी... घर में तो हंगामा हो गया! आस पड़ोस वालों ने इस बात का भरपूर मजा लिया। लेकिन जवान हो चुके लड़के पर कब किसका जोर चला है! धीरे-धीरे सब लोग यह बोलने लगे कि इस दीवाने लड़के में एक बंदर की आत्मा है और उसके लिए बंदरिया ही ठीक रहेगी।

भोला के माँ-बाप ने उससे पूछा कि क्या उसकी नजर में कोई खास बंदरिया शादी के लायक है। लड़के ने उन्हें उस आदमी का नाम बता दिया जिसके घर में वह बंदरिया रहती थी। माँ-बाप उस आदमी के घर रिश्ते की बात करने के लिए गए। बंदरिया के मालिक ने भी इस बात की खूब मौज ली कि कोई उसकी बंदरिया से शादी करना चाहता था लेकिन अंततः वह मदारी बंदरिया के बदले कुछ दहेज की रकम तय करके अपनी बंदरिया का हाथ लड़के के हाथ में देने के लिए राजी हो गया।

मुहूर्त के दिन नाचते-गाते हुए गाँव के लोग शादी के लिए आये। शादी के लिए आकर्षक पंडाल लगाया गया और स्वागत के लिए कुछ जंगली वानरों, लंगूरों को भी द्वार के पास बिठाया गया। दूसरे गावों से भी लोग फोकट का खाने के लिए आ गए। पूरे रीति-रिवाजों से विवाह संपन्न हुआ। बंदरिया की विदाई की रस्म भी ठीक तरीके से निपट गई।

कुछ दिनों तक लड़का अपनी नवविवाहिता पर नजर रखे रहा। एक रात बंदरिया दबे पाँव उठी और उसने अपनी खाल उतार दी। वह घर से बाहर जाने लगी। लड़का सोने का नाटक करके उसे देख रहा था। जैसे ही वह कमरे से बाहर जाने लगी, लड़का

झपटकर उठा और उसने दिव्यात्मा को पकड़ लिया और उसकी खाल उठाकर आग में फेंक दी। सुंदरी अब बंदरिया नहीं बन सकती थी। उसने लड़की की पत्नी बनकर रहना मंजूर कर लिया। उसकी सुन्दरता के चर्चे दूर-दूर तक फैल गए और सबने बंदरिया से शादी करने के लिए भोला की दूरदर्शिता की तारीफ की।

लड़के का एक दोस्त था जिसका नाम होशियार था। जब होशियार ने अपने दोस्त की सुन्दर पत्नी अर्थात भूतपूर्व बंदरिया को देखा तो उसने भी तय कर लिया कि वह भी एक बंदरिया से ही शादी करेगा। इस बार गाँव में किसी को इस बात पर अचरज नहीं हुआ और सब लोग एक बार और बारात में जाने की तैयारी करने लगे। होशियार ने भी अपने लिए एक बंदरिया पसंद कर ली और शादी तय हो गई। शादी के दिन जब बंदरिया को हल्दी और चन्दन का उबटन लगाया जा रहा था तब वह उछल-कूद मचाने लगी। मंडप के नीचे होशियार बंदरिया की मांग में सिन्दूर भरने लगा तो बंदरिया उसका हाथ चबाने के लिए लपकी। थोड़ी खरोंच अवश्य आई, खैर, बीच-बचाव हो गया। विदाई के समय होशियार की दुल्हन अपना बंधन छुड़ाकर भागने लगी। वृक्षों पर छलांगें भरती हुई घने वन में गायब हो गई। सबने होशियार से कहा कि अपनी पत्नी को पकड़कर लाओ। होशियार उसके पीछे-पीछे भागकर पस्त हो गया लेकिन वह उसके हाथ नहीं आई। थक-हारकर होशियार अपनी माला नोचता हुआ, मुकुट उतारकर अपने घर वापस चला गया। थोड़ी सी जो खरोंच लगी थी उसके कारण कुछ दिनों बाद उसे रेबीज का भयावह रोग हो गया और होशियार पागल होकर मरा।

बंदर की खाल जैसा ही मनुष्य का शरीर यानि ऊपरी चोला है। बुद्धि भी आंतरिक वस्त्र से ज्यादा नहीं। बुद्धपुरुष और पंडित, दोनों के वचन एक जैसे हो सकते हैं। कभी-कभी क्या, अक्सर ही जाग्रत व्यक्ति से भी अधिक ज्ञानी शास्त्रज्ञाता प्रतीत होता है। दोनों इंसान की खाल में छिपे हैं, किंतु उनमें बड़ा भेद है, आत्मज्ञ सद्‌गुरु और शास्त्रज्ञ पुरोहित में जमीन-आसमान का अंतर होता है। एक के भीतर दिव्य चेतन मौजूद है, दूसरे के अंदर केवल बंदर जैसा मन। जो उन्हें नहीं पहचानते, उनकी गति होशियार जैसी होती है। चालाकीपूर्ण विद्वता का जहर फैल जाए तो विक्षिप्तता घटित हो जाती है। दिव्यता से विवाह हो जाए तो भगवत्ता फलित हो जाती है।

स्वर्ग में आग

स्वर्ग–नर्क के बारे में कुछ बताने की कृपा करें।

पहले ये तीन किस्से सुनो। इस्लाम में सूफी परम्परा की एक अत्यन्त महान महिला संत राबिया के बारे में बस इतना ही ज्ञात है कि उनका जन्म अरब में आठवीं शताब्दी में हुआ था। वे साधुओं की भांति समाज से दूर कुटिया बनाकर ईश्वर की आराधना में ही लीन रहती थीं। उनके बारे में कई कहानियाँ प्रचलित हैं। संभवतः कुछ प्रतीकात्मक बातें हों, जैसे यह प्रथम घटना–

उनकी कुटिया में केवल एक चटाई, घड़ा, मोमबत्ती, कुरान और ठण्ड में ओढ़ने के लिए कम्बल रहता था। एक रात एक चोर उनकी कुटिया से कम्बल चुराकर ले जाने लगा। कुटिया से बाहर जाते समय उसने यह पाया कि दरवाजा बंद था और खुल नहीं पा रहा था। उसने कम्बल नीचे जमीन पर रख दिया। कम्बल नीचे रखते ही दरवाजा खुल गया। उसने कम्बल उठा लिया पर दरवाजा फिर से बंद हो गया। उसे कुटिया के कोने से किसी की आवाज सुनाई दी–

'उसने तो सालों पहले ही मेरी शरण ले ली है। शैतान भी यहाँ आने से डरता है तो तुम जैसा चोर कैसे उसका कम्बल चुरा सकता है? बाहर चले जाओ! जब ईश्वर का मित्र सो रहा होता है तब स्वयं ईश्वर उसकी रक्षा के लिए उसके पास बैठा जाग रहा होता है।'

द्वितीय घटना– एक दिन मलिक नामक एक विद्वान राबिया से मिलने गया। उसने औरों को राबिया के बारे में यह बताया– 'उसके पास एक घड़ा है जो वह पीने का पानी रखने और धोने के लिए इस्तेमाल करती है। वह जमीन पर चटाई बिछाकर सोती है और तकिये की जगह पर वह सर के नीचे ईंट लगा लेती है। उसकी गरीबी देखकर मैं रो पड़ा। मैंने उससे कहा कि मेरे कई धनी मित्र हैं जो उसकी सहायता करने के लिए तैयार हैं।'

'लेकिन राबिया ने मेरी बात सुनकर कहा– 'नहीं मलिक, क्या मुझे जीवन और भोजन देनेवाला वही नहीं है जो उन्हें भी जीवन और भोजन देता है? क्या तुम्हें यह लगता है कि वह गरीबों की गरीबी का ख्याल नहीं रखता और सिर्फ अमीरों की मदद करता है?'

मलिक– 'नहीं राबिया'।

राबिया बोली– 'तुम ठीक कहते हो। जब उसे मेरी हालत का इल्म है तो मैं उससे किस बात का गिला-शिकवा करूँ? अगर वह मुझे ऐसे ही पसंद करता है तो मैं उसकी मर्जी से ही रहूंगी।'

तृतीय घटना– एक दिन लोगों ने बाजार से राबिया को दौड़ते हुए देखा। उसके एक

हाथ में जलती हुई लकड़ी थी और दूसरे हाथ में पानी की बाल्टी। भीड़ में से किसी ने चिल्लाकर पूछा- 'अरे राबिया, तुम कहाँ जा रही हो और ये क्या कर रही हो?'

राबिया ने कहा- 'मैं स्वर्ग में आग लगाने और नर्क की लपटें बुझाने जा रही हूँ। ऐसा होने पर ही तुम यह जान पाओगे कि ये दोनों भ्रम हैं और तब तुम अपना मकसद हासिल कर पाओगे। जब तुम कोई परम सुख की कामना नहीं करोगे और तुम्हारे दिल में कोई उम्मीद और डर न रह जाएगा तभी तुम ईश्वर को पा सकोगे। आज मुझे कोई भी आदमी ऐसा नहीं दिखता जो स्वर्ग की लालसा और नर्क के भय के बिना ईश्वर की आराधना केवल ईश्वर को पाने के लिए करता हो।'

आप कह रहे हो स्वर्ग-नर्क के बारे में कुछ बताने की। यदि वे होते, तो बताने की कृपा करता। वे दोनों भ्रम हैं। राबिया का वचन स्मरण रखना- 'मैं स्वर्ग में आग लगाने और नर्क की लपटें बुझाने जा रही हूँ।' अकेली राबिया ही नहीं, सभी संत यही कार्य करते हैं। मगर दुर्भाग्य कि पंडित-पुरोहितों, धर्मगुरुओं का धंधा स्वर्ग-नर्क के प्रलोभन एवं भय पर आधारित है, अतः वे स्वर्ग-नर्क की भ्रांतियों को नष्ट नहीं होने देते।

छोटे बच्चों को लालच देकर या डराकर माता-पिता नियंत्रण में रखते हैं। यही मनोवैज्ञानिक तरकीब दुनिया को संचालित करने के लिए सदियों से धर्म और समाज के ठेकेदार उपयोग में लाते रहे हैं। जब तक लोगों का बचकानापन खत्म न हो, मानसिक प्रौढ़ता न विकसित हो, तब तक यह शोषण-तंत्र जारी रखेगा।

इसी बात को अन्य शब्दावली में समझो कि स्वीकार-भाव में है शांति, स्वर्ग, परमात्मा का सान्निध्य। अस्वीकार-भाव में है अशांति, नर्क, परमात्मा से दूरी।

पुण्य की आधारभूमि

मैं जानना चाहता हूं कि क्या दान हमेशा पुण्य ही होता है?

हमेशा नहीं। दान में सेवा भाव ना हो, तो वह अहंकार को बढ़ाता ही है। घमंड की मूर्च्छा में किया गया पुण्य भी पाप हो जाता है। कृत्य से अधिक भाव महत्त्वपूर्ण है।

एक बार नगर-सेठजी अपने मित्रों के साथ जा रहे थे। अचानक उन्हें एक भिखारी दिखाई दिया। सेठजी उसके पास गए और उसे कुछ दान दिया। थोड़ा आगे जाकर सेठजी ने अपने मित्र से पूछा, 'मैं बहुत ही दानी हूँ। मेरी दानशीलता से मुझे कभी-कभी लगता है कि मैं बहुत ही महान हूँ। तुम मेरे बारे में क्या सोचते हो?'

मित्र ने जवाब दिया, 'सेठजी, ऐसा ही एक बार मुझे भी लगा था। अपनी महानता को प्रदर्शित करने के लिए मैंने एक विशाल भोज का आयोजन किया। उसमें मैंने अपने नगर के सारे व्यक्तियों को आमंत्रित किया। मुझे लगता था कि जब सारा नगर ही मेरे द्वारा दिए गए भोज पर आएगा, तब स्वतः ही मेरी महानता सिद्ध हो जाएगी। भोज के समय मैं अपने महल की छत पर खड़ा था। वहां से मैंने देखा था कि एक व्यक्ति उस समय अपनी कुल्हाड़ी से पेड़ काट रहा था। मुझे लगा कि शायद मेरे यहां भोज है, यह बात उस व्यक्ति को मालूम नहीं है। इसलिए मैंने अपने नौकर को उस व्यक्ति के पास भेजा। कुछ समय बाद मेरा नौकर मेरे पास आया और उसने कहा कि वह व्यक्ति भोज में नहीं आ पाएगा।

यह बात मुझे अजीब-सी लगी। मैं खुद उसके पास गया और उसे भोज में आने के लिए कहा। उस व्यक्ति का जवाब था, 'मैं तो अपनी मेहनत की रोटी खाता हूँ। दूसरों के दान, कृपा, भलाई का बोझ ढोना मुझे पसंद नहीं है।' बस सेठजी, उस दिन के बाद मैंने अपने को कभी महान नहीं कहा। सेठजी ने यह सुनकर कहा, 'मैं भी उस लकड़हारे की बात को सचमुच समझ गया हूँ। दान देकर खुद को महान समझने की बजाय मेहनत की कमाई खाने वाला ही अधिक महान है। मैं खुद अपनी मेहनत की नहीं, दूसरों के श्रम की कमाई करता हूं। मैं श्रमिकों का शोषक हूं। और, आज मेरा हृदय परिवर्तन हो गया है।

मूर्च्छा से जागरण ही वास्तविक हृदय परिवर्तन है। इस प्रकार का आत्म-रूपांतरण ही पुण्य की आधारभूमि है। होशपूर्वक जो भी किया जाता है, वह उचित ही होता है। वह प्रेम और करुणा से जन्मता है। उस से कर्ताभाव मजबूत नहीं होता। 'मैं' का खो जाना ही महान घटना है, शेष सब तो क्षुद्र ही है।

जीत और हार

जगत में सत्य पराजित होता और असत्य जीतता क्यों है? ईसा मसीह सूली चढ़ते और भगवान राम को वनवास क्यों मिलता है?

ऐसा ऊपर-ऊपर से आभास हो सकता है, कि जगत में बड़ा अन्याय है। किंतु गहराई में देखने पर सचाई कुछ और ही नजर आती है। असत्य अर्थात् जो है ही नहीं, वह जीतेगा कैसे? सत्य यानि जिसकी सत्ता है, जो वास्तव में है- 'दैट विच एक्झिस्ट्स', उसके हारने का कोई उपाय नहीं। नकारात्मक अंधकार जीत नहीं सकता। सकारात्मक प्रकाश पराजित नहीं हो सकता।

मैंने सुनी है एक यहूदी लोक कथा कि एक भिखारी को बाजार में चमड़े का एक बटुआ पड़ा मिला। उसने बटुए को खोलकर देखा। बटुए में सोने की सौ अशर्फियाँ थीं। तभी भिखारी ने एक सौदागर को चिल्लाते हुए सुना- 'मेरा चमड़े का बटुआ खो गया है! जो कोई उसे खोजकर मुझे सौंप देगा, मैं उसे ईनाम दूंगा!'

भिखारी बहुत ईमानदार आदमी था। उसने बटुआ सौदागर को सौंपकर कहा- 'ये रहा आपका बटुआ। क्या आप ईनाम देंगे?'

'ईनाम!'- सौदागर ने अपने सिक्के गिनते हुए हिकारत से कहा- 'इस बटुए में तो दो सौ अशर्फियाँ थीं! तुमने आधी रकम चुरा ली और अब ईनाम मांगते हो! दफा हो जाओ वर्ना मैं सिपाहियों को बुला लूँगा!'

इतनी ईमानदारी दिखाने के बाद भी व्यर्थ का दोषारोपण भिखारी से सहन नहीं हुआ। वह बोला- 'मैंने कुछ नहीं चुराया है! मैं अदालत जाने के लिए तैयार हूँ!'

अदालत में काजी ने इत्मीनान से दोनों की बात सुनीं, चांज-पड़ताल कराई, फिर कहा- 'मुझे तुम दोनों पर यकीन हो गया है। ऐसा कोई भी सबूत नहीं मिला कि भिखारी ने अशर्फियां चुराई हैं। अब मैं इंसाफ करूँगा। सौदागर, तुम कहते हो कि तुम्हारे बटुए में दो सौ अशर्फियाँ थीं। लेकिन भिखारी को मिले बटुए में सिर्फ सौ अशर्फियाँ ही हैं। इसका मतलब यह है कि यह बटुआ तुम्हारा नहीं है। चूंकि भिखारी को मिले बटुए का कोई दावेदार नहीं है इसलिए मैं आधी रकम शहर के खजाने में जमा करने और बाकी भिखारी को ईनाम में देने का हुक्म देता हूँ'।

बेईमान सौदागर हाथ मलता रह गया। अब वह चाहकर भी अपने बटुए को अपना नहीं कह सकता था क्योंकि ऐसा करने पर उसे कड़ी सजा हो जाती। इंसाफ-पसंद काजी की वजह से भिखारी को अपनी ईमानदारी का अच्छा ईनाम मिल गया। सौदागर खराब

नीयत वाला और झूठ बोलने वाला था, उसे अपने कर्म का दंड प्राप्त हो गया।

यह लोक कथा आंतरिक सत्य को उजागर कर रही है। चाहे बहिर्जगत में ऐसा हो या न हो, अंतर्जगत में निश्चित ही सदैव न्याय है। वस्तुतः वहां ईश्वर रूपी कोई काजी भी नहीं बैठा है। व्यक्ति नहीं है जिसकी स्तुति करके, भेट चढ़ाकर, प्रार्थना द्वारा प्रसन्न कर सको। समष्टि है, अस्तित्व का नियम है, ताओ है, धम्म है; वहां धोखा देने का सवाल नहीं।

आप पूछते हो कि ईसा मसीह सूली चढ़ते और भगवान राम को वनवास क्यों मिलता है? मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि ईसा मसीह सूली चढ़ने के बाद भी क्या जीवित नहीं हैं- आधी दुनिया के गले में उनकी सूली लटकी है? और भगवान राम को वनवास मिलने के बावजूद भी पांच हजार सालों में क्या उन्होंने अरबों लोगों के हृदय-सिंहासन पर अधिकार नहीं कर लिया है?

सुकरात को जहर दिया जा रहा था तो उसने कहा था कि तुम मुझे न मार पाओगे, देह नष्ट हो जाएगी, वह तो खुद ही हो जाती; किंतु जिस सत्य का उद्घाटन मैंने किया है वह कभी नहीं मरेगा। और अगर कोई भावी पीढ़ियां तुम्हारा नाम भी स्मरण रखेंगी तो केवल इसलिए कि तुमने मुझे विषपान कराया था। मीरा को जहर भेजने वाले राणा का नाम मीरा की वजह से ही ज्ञात है। अन्यथा तो ऐसे लाखों राजा, महाराजा हो चुके, कहां खो गए, पता भी नहीं!

कैकयी का नाम और पांटियस पायलेट का नाम किन कारणों से याद है? क्या तुमने आज तक सुना कि किसी ने अपनी पुत्री का नाम कैकयी रखा हो? कालांतर में कैकयी जीती कि राम जीते? सत्य को परेशान किया जा सकता है मगर पराजित नहीं।

सत्य को जीना स्वयं अपने-आप में पुरस्कार है। अलग से कोई ईनाम का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। और असत्य में जीना अपने-आप में नर्क है। अलग से किसी दंड की जरूरत भी नहीं है।

82

मिलने पर नजर

मुझे प्रेम नहीं मिलता, मैं प्यार का भूखा हूं। क्या करूं?

जिसने प्रेम प्राप्त करना चाहा, उसे कभी नहीं मिलता। ओशो का वचन है- 'प्रेम भीख नहीं, दान है'। देने का भाव है। आप ऐसा सवाल पूछ रहे हैं जैसे कोई कहे कि 'मैं देने के भाव को लेना चाहता हूं'। प्रेम शब्द का पर्याय 'देने का भाव' उपयोग करिये और तत्क्षण आपको इस प्रश्न की निरर्थकता ख्याल में आ जाएगी!

संत मैक्सिमिलियन कोल्बे (१८९४-१९४१) पोलैंड के फ्रांसिस्कन मत के पादरी थे। नाजी हुकूमत के दौरान उन्हें जर्मनी की खुफिया पुलिस 'गेस्टापो' ने बंदी बना लिया। उन्हें पोलैंड के औश्वित्ज के यातना शिविर में भेज दिया गया।

एक दिन यातना शिविर में दैनिक हाजिरी के दौरान एक बंदी कम पाया गया। अधिकारियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि वह भाग गया लेकिन बाद में उसका शव कैम्प के गुसलखाने में मिला। वह शायद भागने के प्रयास में पानी की टंकी में डूब गया था। अधिकारियों ने यह तय किया कि मृतक बंदी के भागने का प्रयास करने के कारण उसी बैरक के दस बंदियों को मृत्युदंड दे दिया जाए ताकि कोई दूसरा बंदी भागने का प्रयास करने का साहस न करे। जिन दस बंदियों का चयन किया गया उनमें फ्रान्सिजेक गजोनिव्जेक भी था। जब उसने अपनी भावी मृत्यु के बारे में सुना तो वह चीत्कार कर उठा- 'हाय मेरी बेटियाँ, मेरी बीवी, मेरे बच्चे! अब मैं उन्हें कभी नहीं देख पाऊँगा!'- वहां मौजूद सभी बंदियों की आँखों में यह दृश्य देखकर आंसू आ गए।

उसका दुःख भरा विलाप सुनकर फादर कोल्बे आगे आये और उसे ले जानेवालों से बोले- 'मैं एक कैथोलिक पादरी हूँ। मैं उसकी जगह लेने के लिए तैयार हूँ। मैं बूढ़ा हूँ और मेरा कोई परिवार भी नहीं है'।

फ्रान्सिजेक के स्थान पर कोल्बे की मरने की फरियाद स्वीकार कर ली गई। फादर कोल्बे के साथ बाकी नौ बंदियों को एक कालकोठरी में बंद करके भूख और प्यास से मरने के लिए छोड़ दिया गया। फादर कोल्बे ने सभी बंदी साथियों से उस घड़ी में प्रार्थना करने और ईश्वर में अपनी आस्था दृढ़ करने के लिए कहा। वे बंदियों के लिए माला जपते और भजन गाते थे। भूख और प्यास से एक के बाद एक बंदी मरता गया। फादर कोल्बे अंत तक जीवित रहे और सबके लिए प्रार्थना करते रहे।

कुछ दिनों बाद जब कालकोठरी को खोलकर देखा गया तो फादर कोल्बे जीवित मिले। १४ अगस्त, १९४१ के दिन उन्हें बाएँ हाथ में कार्बोलिक एसिड का इंजेक्शन देकर मार दिया गया। उन्होंने प्रार्थना करते हुए अपना हाथ इंजेक्शन लेने के लिए बढ़ाया था। जिस कालकोठरी में फादर कोल्बे की मृत्यु हुई अब वह औश्वित्ज जानेवाले यात्रियों के लिए किसी पावन तीर्थ की भांति है।

फादर कोल्बे द्वारा जीवनदान दिए जाने के ५३ वर्ष बाद फ्रान्सिजेक गजोनिव्जेक की मृत्यु ९५ वर्ष की उम्र में १९९५ में हुई। जब पोप जॉन पॉल द्वितीय ने १९८२ में फादर कोल्बे को संत की उपाधि दी तब वह उस समय वहां अपने परिवार के साथ उपस्थित था। उसकी चार पीढ़ियां मौजूद थीं, कोल्बे के प्रति गहन प्रेम, सम्मान और अनुग्रह से भरी हुई।

आप पूछ रहे हो कि मैं प्यार का भूखा हूं। क्या करूं?

अब भीख मांगना बंद करो। जीवन के नियम को समझो। यह बैंक के नियम जैसा है। अगर कोई भिखारी बैंक में लोन मांगने जाए तो उसे लौटा दिया जाता है। बैंक के कर्मचारी अमीरों के घर जाकर उन्हें फुसलाते हैं कि लोन ले लीजिए। जिन्हें जरूरत नहीं है, उन्हें सदा देने को तैयार हैं, और जो जरूरतमंद हैं उन्हें खाली हाथ लौटा देते हैं।

जो देते हैं, उन्हें खूब मिलता है; यह अलग बात है। किंतु मिलने पर नजर लगी हो तो नहीं मिलता।

83

शुभ का मुखौटा

घर पहुँचने की जल्दी के बावजूद किसी के कराहने की आवाज सुनकर वह ठिठक गया। पास ही एक गहरे गंदे नाले में एक आदमी जख्मी हालत में गिरा पड़ा था। उसने इधर-उधर देखा। आसपास कोई नहीं था। शहर में चल रहे दंगों और दहशत के माहौल को देखते हुए उसने उसे उसके हाल पर छोड़कर आगे बढ़ जाने में ही अपनी सुरक्षा समझी। लेकिन उस जख्मी आदमी की 'बचाओ-बचाओ' की बहुत धीमी और करुण पुकार सुनकर उसके पाँव आगे नहीं बढ़ पाए।

बड़ी मुश्किल और मेहनत से आखिर उसने उसे नाले से बाहर निकाल ही लिया। उसने देखा वह आदमी बुरी तरह जख्मी था और उसके जख्मों से खून बह रहा था। दूर पड़े अपने झोले से उसने एक मैला-कुचैला कपड़ा निकालकर उस आदमी का मुँह पोंछा और पूछा, 'कौन हो? इस नाले में कैसे गिर पड़े?'

बड़ी मुश्किल से उसने बताया, 'गरीब आदमी हूं। दंगाई मुझे मार-पीटकर नाले में फेंक गए हैं। मेरा नाम....है।'

एकाएक उसे जैसे करंट लगा। अरे, यह तो दूसरे धर्म का है? अब क्या करूँ? नहीं नहीं..... अब क्या करूँ? वैसे भी इसे अस्पताल नहीं पहुँचाया तो ये यहीं पड़ा-पड़ा ऐसे ही......! क्या करूँ, धर्म आड़े आ गया है। वैसे इंसानियत के नाते इसे मैंने बाहर निकाल ही दिया है। मेरा कर्तव्य तो पूरा हो गया है।

वह अपने रास्ते पर चल पड़ा, लेकिन उसके कदम टनों भारी थे।

आदमी को आदमी से जो तोड़ता है, वह धर्म नहीं हो सकता। फिर जगत में धर्म के नामों पर क्या चल रहा है? चिंतन करने जैसी बात है। अच्छे लेबल के पीछे बुराई खड़ी है। शुभ का मुखौटा पहनकर अशुभ शक्तियां कार्यरत हैं। ईश्वर को प्रेम करने वाले उसके बंदों से प्रेम नहीं करते। सृष्टा को पूजने वाले लोग उसकी सृष्टि से नाराज हैं। उसके विध्वंस को राजी हैं। ये कैसे धर्म हैं जो मारकाट कराते हैं? धर्म के नाम पर 'धर्मयुद्ध' तक हुए हैं। फिर अधर्म और क्या होगा!

वक्त की कीमत

संत कबीर साहब का प्रसिद्ध वचन है—
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करेगा कब।।

मैंने विभिन्न धर्मगुरुओं से इसकी व्याख्या पूछी तो अलग-अलग उत्तर मिले। अनेक सालों से मैं विद्वानों से भी पूछता घूम रहा हूं। आपका क्या मंतव्य है?

मेरा मंतव्य समझ में आ जाएगा, पहले ये दो घटनाएं सुनो-

बेंजामिन फ्रेंकलिन की किताबों की दुकान थी। एक दिन उनकी दुकान पर एक ग्राहक आया। कुछ किताबें देखने के बाद उसने दुकान के एक कर्मचारी से पूछा- 'इस किताब की कीमत क्या है?'

कर्मचारी ने कहा- 'एक डॉलर'।

ग्राहक ने कहा- 'यह तो ज्यादा है। कुछ कम नहीं हो सकता क्या?'

कर्मचारी ने स्पष्ट कहा- 'नहीं'।

ग्राहक ने कहा- 'क्या बेन फ्रेंकलिन यहाँ हैं? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ'।

'वे अभी आने वाले हैं'- कर्मचारी ने कहा।

फ्रेंकलिन के आने के बाद ग्राहक ने उनसे पूछा- 'इस किताब की कम-से-कम कीमत क्या होगी?'

फ्रेंकलिन ने कहा- 'सवा डॉलर'।

ग्राहक ने आश्चर्य से कहा- 'लेकिन आपकी दुकान के कर्मचारी ने तो इसकी कीमत एक डॉलर बताई है!'

'उसने ठीक बताया था। चौथाई डॉलर मेरे समय की कीमत है'।

ग्राहक ने आग्रह किया- 'ठीक है। अब आप इसकी सही कीमत बता दीजिये'।

'अब डेढ़ डॉलर। आप लेने में जितनी देर करते जायेंगे, उतने समय का मूल्य भी इसमें जुड़ता जायेगा'।

ग्राहक के पास अब कोई रास्ता न था। एक डॉलर के बदले डेढ़ डॉलर देकर उसने वह किताब शीघ्रता से खरीद ली। किताब के साथ ही उसे समय का मूल्य भी ज्ञात हो गया।

समय के महत्त्व को जानने वाले यही बेंजामिन फ्रेंकलिन अमेरिका के महान वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ और चिन्तक बने।

अब दूसरी घटना सुनो- एक दिन सड़क के किनारे बेंच पर मुल्ला नसरुद्दीन घंटों से चुपचाप बैठा था। एक आदमी ने शाम उसके पास आकर कहा- भाई साहब, मैं आज सुबह से आपको यहां खाली बैठे देख रहा हूं। आप क्या कर रहे हैं?

नसरुद्दीन बोला- जनाब, मैं बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा हूं। वक्त ने मुझे बरबाद किया है, इसलिए मैं भी बदला लेने की कोशिश में, वक्त को बरबाद कर रहा हूं। मगर यह तो बताइए कि आप क्यों मुझे इतने घंटों से देख रहे हैं? लगता है आपमें अक्ल की कुछ कमी है!

स्वर्ग और नर्क

ओशो कहते हैं कि स्वर्ग और नर्क परिस्थितियां नहीं, बल्कि मनस्थितियां हैं। कृपया इस पहेली को समझाएं।

इस वचन को पहेली नहीं, बल्कि प्रतीक रूप में समझना- प्रेम स्वर्ग है, घृणा नर्क है। दूसरे शब्दों में कह लो कि सद्भावना सुखदाई है, दुर्भावना दुखदाई है। हिंसक मनोवृत्ति अंततः आत्मघाती सिद्ध होती है। अहिंसा और करुणा की भावना रूपांतरणकारी साबित होती है, आत्म-ज्ञान की ओर ले जाती है।

एक प्यारी लोक कथा मैंने सुनी है कि अफ्रीका में किसी जगह एक बहुत गरीब आदमी रहता था जिसका नाम 'सब-कुछ' था। उसके घर के पास एक बहुत अमीर आदमी रहता था जिसका नाम 'कुछ-नहीं' था। एक दिन सब-कुछ और कुछ-नहीं ने यह तय किया कि वे पास के शहर में जाकर अपने लिए पत्नियाँ लेकर आयेंगे।

कुछ-नहीं तो बहुत पैसेवाला था इसलिए उसने यात्रा पर जाने से पहले मलमल का शानदार कुरता पहना। बेचारे गरीब सब-कुछ के पास पहनने के लिए सिर्फ एक फटी हुई सूती शर्ट ही थी। बीच रस्ते में सब-कुछ ने कुछ-नहीं से उसका कुरता माँगा और कहा कि वह शहर पहुँचने से पहले उसे वापस कर देगा। लेकिन शहर पहुँचने के बाद भी उसने किसी-न-किसी बहाने से कुछ-नहीं को उसका कुरता वापस नहीं किया। सब-कुछ से दोस्ती के नाते कुछ-नहीं ने अपना कुरता माँगना बंद कर दिया और वह सब-कुछ की फटी शर्ट पहने रहा।

सब-कुछ ने तो मलमल का शानदार कुरता पहना हुआ था इसलिए उसे अपने लिए पत्नियाँ ढूँढने में कोई दिक्कत नहीं हुई। उसने बहुत सारी पत्नियाँ प्राप्त कर लीं। दूसरी ओर, कुछ-नहीं की ओर किसी ने देखा भी नहीं और उसकी बहुत बेईज्जती की। एक बूढ़ी गरीब औरत को कुछ-नहीं पर दया आ गई और उसने उसे अपनी गुणवान किंतु कुरूप बेटी दे दी। सब-कुछ की पत्नियों ने कुछ-नहीं की पत्नी का बहुत मजाक उड़ाया क्योंकि उन्हें कुछ-नहीं बहुत गरीब जान पड़ रहा था। कुछ-नहीं की बुद्धिमान पत्नी ने उनकी अभिमान भरी तुच्छ बातों पर ध्यान नहीं दिया।

सभी लोग अपने-अपने घर को चल दिए। जब वे अपने शहर पहुंचे तो दोनों की पत्नियों को बहुत आश्चर्य हुआ। सब-कुछ के घर को जानेवाला रास्ता तो ऊबड़खाबड़ था और कुछ-नहीं के महल जैसे घर का रास्ता पक्का था। कुछ-नहीं के नौकरों ने उसपर जानवरों की खालें और कालीन बिछाए हुए थे। नौकर स्वयं अपनी पत्नियों के साथ अच्छे कपड़े पहनकर स्वागत के लिए खड़े थे। सब-कुछ के लिए कोई इंतजार नहीं कर रहा था।

कुछ-नहीं की पत्नी पूरे शहर की रानी की तरह रहती थी और जो चाहे खरीद सकती थी। सब-कुछ की पत्नियों को तो खाने के लाले पड़े हुए थे और वे नमक लगाकर कच्चे केले खातीं थीं। कुछ-नहीं की पत्नी को जब सब-कुछ की पत्नियों की दुर्दशा के बारे में पता चला तो उसने उन्हें अपने महल में बुला लिया। सब-कुछ की पत्नियाँ कुछ-नहीं के महल में पहुंचकर इतनी खुश हुईं कि उन्होंने सब-कुछ की झोपड़ी में वापस जाने को मना कर दिया।

सब-कुछ को बहुत गुस्सा आया। उसने कुछ-नहीं को जान से मारने का फैसला कर लिया। उसने अपने कुछ चूहे दोस्तों को पटाकर उन्हें कुछ-नहीं के महल के दरवाजे तक सुरंग खोदने पर राजी कर लिया। जब सुरंग पूरी बन गई तब उसने सुरंग के भीतर चाकू और कांच की बोतलों के टुकड़े बिछा दिए। फिर उसने कुछ-नहीं के महल के दरवाजे के सामने बहुत सारा साबुन मल दिया जिससे रास्ता फिसलन भरा हो गया।

रात को जब उसे लगा कि कुछ-नहीं आराम से सो गया है तब उसने कुछ-नहीं को बाहर आकर कुछ बात करने एक लिए आवाज लगाई। कुछ-नहीं की पत्नी ने उसे इतनी रात को बाहर जाने के लिए मना कर दिया। सब-कुछ ने बार-बार कुछ-नहीं को पुकारा लेकिन उसकी पत्नी उसे बाहर जाने से रोकती रही। लेकिन कुछ-नहीं ने अंततः उसकी बात को अनसुना कर दिया और सब-कुछ से बात करने के लिए बाहर आ गया। देहलीज पर पैर रखते ही वह फिसल गया और सीधे सुरंग में जा गिरा और घायल होकर मर गया।

कुछ-नहीं की पत्नी को अपने पति के मरने का बड़ा शोक हुआ। उसने बहुत सारी नारियल की बर्फी बनाई और शहरभर में बच्चों को बांटी ताकि वे उसके प्यारे पति के लिए रोएँ। अफ्रीका में मान्यता है कि जिसके विदा होने पर जितने ज्यादा लोग रोते हैं, वह उतने ही ऊंचे स्वर्ग में निवास करता है। यह भी विश्वास है कि जिसके मरने पर जितने अधिक लोग प्रसन्न होते हैं, वह उतने ही नीची कोटि के नर्क में गिरता है। अर्थात् प्रेम करने वाले व्यक्ति सुख में रहते हैं और हिंसा, चालाकी घृणा करने वाले दुख में। प्रेम स्वर्ग है, घृणा नर्क है।

इसीलिए आज भी हम जब कभी बच्चों को रोते देखते हैं तो रोने का कारण पूछने पर यह जवाब मिलता है कि वे 'कुछ-नहीं के लिए रो रहे हैं', 'दे आर क्राईंग फॉर नथिंग'।

'कुछ-नहीं' अर्थात् अहंकार-मुक्त। दंभी नर्कवासी और निर्दंभी स्वर्गवासी हैं।

ओशो का यह वचन अनूठा है कि स्वर्ग और नर्क परिस्थितियां नहीं हैं, जहां हम मरने के बाद पहुंचते हैं। बल्कि वे मनस्थितियां हैं जिनमें हम जीते हैं और उन्हें अपने संग लिए घूमते हैं। स्वर्ग-नर्क के निर्माता हम खुद हैं, भगवान या शैतान नहीं। और जिस क्षण विवेक जाग्रत हो जाए, हम उस क्षण अपना निर्णय बदलने को स्वतंत्र हैं, नर्क से स्वर्ग में जा सकते हैं। कहीं दीवार नहीं है, कोई रोकने वाला दरबान नहीं बैठा है।

चुनने का प्रश्न ही नहीं

यूं तो परमगुरु ओशो की शिक्षा संसार और अध्यात्म के समन्वय की है, किंतु दोनों में से यदि एक को चुनना पड़े, तो किसे चुनना चाहिए?

पहले यह घटना सुनो। किसी धनी भक्त ने एक बार श्री रामकृष्ण परमहंस को एक कीमती दुशाला भेंट में दिया। स्वामीजी ऐसी वस्तुओं के शौकीन नहीं थे लेकिन भक्त के आग्रह पर उन्होंने भेंट स्वीकार कर ली। उस दुशाला को वह कभी चटाई की तरह बिछाकर उसपर लेट जाते थे, कभी उसे कम्बल की तरह ओढ़ लेते थे।

उन सज्जन को दुशाले का ऐसा उपयोग ठीक नहीं लगा। उसने स्वामीजी से कहा- 'यह तो बहुत मूल्यवान दुशाला है। इसका बहुत जतन से प्रयोग करना चाहिए। ऐसे तो यह बहुत जल्दी खराब हो जायेगी!'

सहज भाव से परमहंस ने उत्तर दिया- 'जब सभी प्रकार की मोह-ममता को छोड़ दिया है तो इस कपड़े से कैसा मोह करु? क्या अपना मन भगवान की ओर से हटाकर इस तुच्छ वस्तु में लगाना उचित होगा? ऐसी छोटी वस्तु की चिंता करके अपना ध्यान बड़ी बात से हटा देना कहां की बुद्धिमानी है?'

ऐसा कहकर उन्होंने दुशाले के एक कोने को पास ही जल रहे दिए की लौ से छुआकर थोडा सा जला दिया और उस सज्जन से कहा- 'लीजिये, अब न तो यह दुशाला मूल्यवान रही और न सुन्दर। अब मेरे मन में इसे सहेजने की चिंता कभी पैदा नहीं होगी और मैं अपना सारा ध्यान भगवान की ओर लगा सकूंगा। तुम्हारे मन भी निश्चिंत हो जाएगा। तुम भी आराम से सत्संग में भाग ले सकोगे। जबसे तुमने दुशाला दी है, तबसे तुम्हारा चित्त भी मेरे उपदेशों पर नहीं टिकता, तुम दुशाला की तरफ देखते रहते हो।'

वे सज्जन निरुत्तर हो गए। परमहंस ने भक्तों को समझाया कि सांसारिक वस्तुओं से मोह-ममता जितनी कम होगी, आनंदित जीवन के उतना ही निकट पहुंचा जा सकेगा। वस्तुओं में ही अपने शरीर को भी गिनना। अब आपके सवाल का जवाब सुनो। प्राचीन धारणा के अनुसार, अद्वैतवादी कहलाने वाले लोग भी वास्तव में द्वैत में ही भरोसा करते रहे। कई हजारों सालों का सम्मोहन था कि परमात्मा और प्रकृति, आत्मा और शरीर, संसार और धर्म, भोग और त्याग एक-दूजे के विपरीत हैं। यह

विभाजन गहरे द्वैत-भाव से पैदा होता है। यद्यपि परमहंस स्वयं अत्यंत क्रांतिकारी थे, संसार छोड़कर नहीं भागे, विवाह किया। उन्होंने परिवार को नहीं त्यागा, साधु बनकर जंगल नहीं चले गए। गृहस्थ आश्रम में रहकर सब प्रकार की साधनाएं कीं। हिंदू धर्म की सीमा से बाहर छलांग लगाई।

रामकृष्ण ने परंपरा से हटकर बहुत कुछ किया, किंतु उनकी भाषा, उनकी उपमाएं, उनके समझाने के तरीके पुराने ढंग के थे। अनुभूति तो परम-अद्वैत की थी, मगर अभिव्यक्ति द्वैतपूर्ण प्रचलित भाषा में रही। उस काल में, उनकी परिस्थितियों में इतना ही संभव था। ओशो का समय आते-आते बात अपनी तार्किक निष्पत्ति 'झोरबा दि बुद्धा' पर पहुंच गई।

निश्चत ही झोरबा बुनियाद है, बुद्धा उस नींव पर खड़ा महल है। संसार कीचड़ है, अध्यात्म फूल है कमल का। लेकिन नींव या कीचड़ कहने से कहीं आपको भ्रांति न हो जाए कि उनका अपमान किया जा रहा है। ऐसा वक्तव्य निंदात्मक नहीं, सिर्फ तथ्यात्मक है। क्या जड़ के बिना फल-फूलों की कल्पना भी संभव है? संसार और अध्यात्म के समन्वय करना नहीं है, वे संयुक्त हैं ही। हमें केवल आंख खोलकर सत्य को देखना है। फिर दोनों में से एक को चुनने का प्रश्न ही नहीं उठेगा।

धर्म आंतरिक साधना

रमेश मिश्रा की चार वर्षीय बेटी ईशा जब नर्सरी स्कूल में प्रवेश कराने लायक हो गयी तो वह पर्याप्त रूप से तैयारी कराके- ए, बी, सी, डी, वन, टू, थ्री, फोर व ए फार एपल, बी फार बर्ड और काफी कुछ रटाकर ले गया। थ्री, फोर की जगह ईशा थ्ली, फोल कहती, तथा ए फाल एपल, बी फाल बल्ड।

स्कूल की प्रधानाचार्य ने ईशा से पूदा, 'बेबी, व्हाट इज योर नेम?'

उसने जवाब दिया, 'माई नेम इज ईशा मिश्ला।'

प्रधानाचार्य ने फिर पूछा, 'बेटे आपके पापा क्या करते हैं?'

बेटी ईशा ने उत्तर दिया, 'मेले पापा पत्रकाल हैं।' प्रधानाचार्य ने फिर गिनती और कई शब्दों के अर्थ पूछे। बेटी ने सारे प्रश्नों के उत्तर तुतलाते हुए दे दिए।

प्रधानाचार्य ने फिर पूछा, 'बेटे आपका धर्म कौन-सा है?'

र का उच्चारण ल करती ईशा ने बड़ा मीठा-सा उत्तर दिया, 'मेला कोई धल्म नहीं है, मैं तो छोटा बच्चा हूँ।'

प्रधानाचार्य ईशा के इस उत्तर पर मुस्करा दीं और एक पिता के रूप में रमेश मिश्रा को लगा कि आज के बच्चे कितने समझदार हैं जबकि हम वयस्क लोग?... यह एक बड़ा सवाल है, कि कौन ज्यादा समझदार है?

धर्म के नाम पर नासमझी ही अधिक हुई हैं। इतने लड़ाई-दंगे और मारकाट तो अधर्म ने भी नहीं किए। मंदिर, मस्जिद, चर्च आदि इंसान के रक्तपात से रंजित हैं। ईश्वर की छबि धूमिल हुई है। समझदार आदमी धर्म के नाम से घबराने लगा है।

किंतु वास्तविक धर्म कुछ भिन्न ही बात है। वह बाह्य क्रियाकांड नहीं, आंतरिक साधना है। उसका शास्त्रों, सिद्धांतों, वाद-विवादों से कोई संबंध नहीं, वह तो निर्विचार ध्यान की ज्योति जलाने से उत्पन्न प्रेम का प्रकाश है। वह आकारों का विक्षिप्त मोह नहीं, वरन निराकार सत्य की अनुभूति है।

काश, हम धर्म के नाम पर चल रही बचकानी बातों से मुक्त हो पाएं, अन्यथा हमारे बच्चे, आने वाली पीढ़ियां हम पर हंसेगी!

88

चेतना की शक्ति

चैतन्य शक्ति के ज्ञान से जीवन आनंदमय कैसे हो सकता है?

पदार्थ की शक्ति के ज्ञान से जीवन सुखद हो गया, यह तो आप जानते ही हैं। विज्ञान ने प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग सीखकर धरती को स्वर्ग की कल्पना से भी बेहतर बना दिया है। सुनो यह घटना- स्कॉट्लैंड में रहने वाला एक छोटा बालक अपनी दादी की रसोई में बैठा हुआ था। चूल्हे पर बर्तन चढ़े हुए थे और वह उनमें खाना बनता देखते हुए बहुत सारी चीजों के होने का कारण तलाश रहा था। वह हमेशा ही यह जानना चाहता था कि हमारे आसपास जो कुछ भी होता है वह क्यों होता है?

'दादी'- उसने पूछा- 'आग क्यों जलती है?'

यह पहला मौका नहीं था जब उसने अपनी दादी से वह सवाल पूछा था जिसका जवाब वह नहीं जानती थी। उसने बच्चे के प्रश्न पर कोई ध्यान नहीं दिया और खाना बनाने में जुटी रही।

चूल्हे में जल रही आग पर एक पुरानी केतली रखी हुई थी। केतली के भीतर पानी उबलना शुरू हो गया था और उसकी नाली से भाप निकलने लगी थी। थोडी देर में केतली हिलने लगी और उसकी नली से जोरों से भाप बाहर निकलने लगी। बच्चे ने जब केतली का ढक्कन उठाकर अन्दर झाँका तो उसे उबलते पानी के सिवा कुछ और दिखाई नहीं दिया।

'दादी, ये केतली क्यों हिल रही है?' -उसने पूछा।

'उसमें पानी उबल रहा है बेटा'।

'हाँ, लेकिन उसमें कुछ और भी है! तभी तो उसका ढक्कन हिल रहा है और आवाज कर रहा है'। बच्चे की नादानी पर दादी हंसकर बोली- 'अरे, वो तो भाप है। देखो भाप कितनी तेजी से उसकी नली से निकल रही है और ढक्कन को हिला रही है'।

'लेकिन आपने तो कहा था कि उसमें सिर्फ पानी है। तो फिर भाप ढक्कन को कैसे हिलाने लगी?'

'बेटा, भाप पानी के गरम होने से बनती है। पानी उबलने लगता है तो वो तेजी से बाहर निकलती है' -दादी इससे बेहतर नहीं समझा सकती थी।

बच्चे ने दोबारा ढक्कन उठाकर देखा तो उसे पानी ही उबलता हुआ दिखा। भाप केवल केतली की नली से बाहर आती ही दिख रही थी।

'अजीब बात है!' -बच्चा बोला- 'भाप में ढक्कन को हिलाने की ताकत है। दादी, आपने केतली में कितना पानी डाला था?'

'बस आधा लीटर पानी डाला था, जेमी बेटा'

'अच्छा, यदि सिर्फ इतने से पानी से निकलनेवाली भाप में इतनी ताकत है तो बहुत सारा पानी उबलने पर तो बहुत सारी ताकत पैदा होगी! तो हम उससे भारी सामान क्यों नहीं उठाते? हम उससे पहिये क्यों नहीं घुमाते?'

दादी ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने सोचा कि जेमी के ये सवाल किसी काम के नहीं हैं। जेमी बैठा-बैठा केतली से निकलती भाप को काफी देर तक देखता रहा और कुछ सोचता रहा।

भाप में कैसी ताकत होती है और उस ताकत को दूसरी चीजों को चलाने और घुमाने में

कैसे लगाया जाए, जेम्स वाट नामक वह स्कॉटिश बालक कई दिनों तक सोचता रहा। केतली की नली के आगे तरह-तरह की चरखियां बनाकर उसने उन्हें घुमाया और थोड़ा बड़ा होने पर उनसे छोटे-छोटे यंत्र भी चलाना शुरू कर दिया। युवा होने पर तो वह अपना पूरा समय भाप की शक्ति के अध्ययन में लगाने लगा।

'भाप में तो कमाल की ताकत है!' -वह स्वयं से कहता था- 'किसी दानव में भी इतनी शक्ति नहीं होती। अगर हम इस शक्ति को काबू में करके इससे अपने काम करना सीख लें तो हम इतना कुछ कर सकते हैं जो कोई सोच भी नहीं सकता। ये सिर्फ भारी वजन ही नहीं उठाएगी बल्कि बड़े-बड़े यंत्रों को भी गति प्रदान करेगी। ये विराट चक्कियों को घुमाएगी और नौकाओं को चलाएगी। ये चरखों को भी चलाएगी और खेतों में हलों को भी धक्का देगी। हजारों सालों से मनुष्य इसे प्रतिदिन खाना बनाते समय देखता आ रहा है लेकिन इसकी उपयोगिता पर किसी का भी ध्यान नहीं गया। लेकिन भाप की शक्ति को वश में कैसे करें, यही सबसे बड़ा प्रश्न है'।

एक के बाद दूसरा, तीसरा, चौथा... वह सैकडों प्रयोग करके देखता गया। हर बार वह असफल रहता लेकिन अपनी हर असफलता से उसने कुछ-न-कुछ सीखा। लोगों ने उसका मजाक उड़ाया- 'कैसा मूर्ख आदमी है जो यह सोचता है कि भाप से मशीनें चला सकता है!'

लेकिन जेम्स वाट ने हार नहीं मानी। कठोर परिश्रम और लगन के फलस्वरूप उन्होंने अपना पहला स्टीम इंजन बना लिया। उस इंजन के द्वारा उन्होंने भांति-भांति के कठिन कार्य आसानी से करके दिखाए। उनमें सुधार होते-होते एक दिन भाप के इंजनों से रेलगाडियां चलने लगीं। लगभग २०० सालों तक भाप के इंजन सवारियों और भारी सामानों को ढोते रहे और अभी भी कई देशों में भाप के लोकोमोटिव चल रहे हैं। उसी इंजन की संरचना के आधार पर बाद में डीजल-पेट्रोल से चलने वाले इंजन निर्मित हुए।

जब क्षुद्र पदार्थ की शक्ति को पहचानकर विज्ञान ने पृथ्वी को इतने सुख से भर दिया है तो अनुमान कीजिए कि विराट चैतन्य शक्ति के ज्ञान से जीवन कितना आनंदमय हो सकेगा! चेतना के विज्ञान का नाम ही अध्यात्म है। ध्यान आत्मा को जानने की विधि है। विज्ञान ऑब्जेक्ट को जानता है, ध्यान सब्जेक्ट को। विज्ञान परमाणु पर पहुंच जाता है, ध्यान परमात्मा पर। आनंद आत्मज्ञान का परिणाम है। दुख आत्म-अज्ञान का फल है।

विज्ञान सुख का इंतजाम करता जाता है किंतु दुख खत्म नहीं होता। पिछले तीन सौ सालों में विचित्र घटना घटी- बहुत सुविधाएं हो गईं, और उसी अनुपात में दुविधाएं भी उत्पन्न हो गईं। स्वर्ग बनाने की कोशिश चली, और नरक भी निर्मित होता गया। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध, फिर परमाणु विस्फोट, और अब तीसरे अर्थात् अंतिम युद्ध की तैयारी- सर्वनाश के कगार पर!

सुख और दुख जुड़े हुए हैं, एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह। दोनों के पार है आनंद। सुख और दुख, दोनों ही उत्तेजना हैं। आनंद निरुत्तेजना है, शांत चेतना है। आप पूछते हैं कि चैतन्य को जानकर जीवन आनंदमय कैसे होता है? वास्तव में चैतन्य आनंदमय है। आनंद उसका स्वभाव है। आनंद, चैतन्य का गुणधर्म है। उस आंतरिक शक्ति को जानना मात्र पर्याप्त है। विज्ञानी हमेशा यह जानना चाहता है कि हमारे आसपास जो कुछ भी होता है वह क्यों होता है? ध्यानी हमेशा यह जानना चाहता है कि हमारे अंदर जो कुछ है वह क्या है? भीतर क्यों और कैसे का प्रश्न नहीं है। सवाल है- क्या? मैं कौन हूं? और खोजते-खोजते आत्म-सत्ता का अहसास होने लगता है, कि मैं आनंदमय चैतन्य हूं। सच्चिदानंद हूं।

89

आंतरिक वास्तविकता

ओशो, कबीर, गौतम बुद्ध जैसे सभी ज्ञानीजन, ज्ञानवर्धन करने वाले शास्त्रों के खिलाफ क्यों होते हैं?

क्योंकि वे वास्तविक ज्ञान के पक्ष में होते हैं। शास्त्रों से बाहरी जगत के बारे में तो ज्ञानवर्धन होता है किंतु आंतरिक वास्तविकता पर पर्दा पड़ जाता है। संसार में किताबें उपयोगी हैं लेकिन अध्यात्म में नहीं। खासकर जब उन्हें पढ़कर यह भ्रम होने लगे कि सचाई को जान लिया। बस, अब और क्या करना है! यदि किताब जानने की प्यास बढ़ाए तो काम की है, अन्यथा बाधा है। वह शास्त्र पर नहीं आपकी दृष्टि पर निर्भर है। वस्तुतः ज्ञानीजन शास्त्र के नहीं, इस असम्यक दृष्टि के खिलाफ होते हैं।

रेड इंडियन लोक-कथा है कि एक बार परमेश्वर ने मनुष्य के सिवाय सभी प्राणियों को अपने पास बुलाया और उनसे कहा- 'मैं मनुष्यों से कुछ छुपाना चाहता हूँ। मैं परमसत्य को मनुष्यों से छुपाना चाहता हूँ लेकिन समझ नहीं पा रहा कि उसे कहाँ रखूं'?

गरुड़ ने कहा- 'वह मुझे दे दो। मैं उसे चाँद में छुपा दूंगा'।

परमेश्वर ने कहा- 'नहीं। एक दिन वे वहां पहुंचकर उसे ढूंढ लेंगे'।

सालमन मछली ने कहा- 'मैं उसे सागरतल में गाड़ दूँगी'।

'नहीं। एक दिन वे वहां भी पहुँच जायेंगे'।

भैंस ने कहा- 'मैं उसे चारागाहों में छुपा दूँगी'।

परमेश्वर ने कहा- 'एक दिन वे धरती की खाल को उधेड़ देंगे और उसे खोज लेंगे'।

सभी प्राणियों की दादी छछूंदर धरती माँ की छाती से चिपकी रहती थी। परमेश्वर ने उसे भौतिक नेत्र नहीं बल्कि अलौकिक ज्योति प्रदान की थी। वह बोली- 'उसे उन्हीं के भीतर रख दो'।

परमेश्वर ने कहा- 'बहुत अच्छा'।

तब से आज तक आदमी सर्वत्र सत्य तलाशता फिरता है, खूब भटकता है। यदा-कदा ही कोई विवेकीजन स्वयं के भीतर खोजता और उस अमूल्य संपदा को पाता है। ज्ञानवर्धन करने वाले शास्त्रों में उलझे लोग अक्सर स्वयं से चूक जाते हैं।

जब जागे, तभी सवेरा!

जगत में इतने अंधविश्वास क्यों प्रचलित हैं?

अंधविश्वास प्रचलित हैं, क्योंकि लोग अंधे हैं, और अंधे रहना चाहते हैं। जिन षड़यंत्रकारियों को उनके अंधेपन का लाभ उठाना है, उनके हित में भी यही है कि लोग अंधे रहें। केवल अंधे ही विश्वास कर सकते हैं।

कुछ दिनों पहले एक कहानी पढ़ रहा था कि बहुत समय पहले एक नगर में एक धनाढ्य व्यापारी रहता था। दूर-दूर तक उसका व्यापार फैला हुआ था। नगर में उस व्यापारी का सभी लोग मान-सम्मान करते थे। इतना सब कुछ होने पर भी वह व्यापारी अंतर्मन से बहुत दुखी था क्योंकि उस व्यापारी का कोई पुत्र नहीं था। दिन-रात उसे एक ही चिंता सताती रहती थी। उसकी मृत्यु के बाद उसके इतने बड़े व्यापार और धन-संपत्ति को कौन संभालेगा!

पुत्र पाने की इच्छा से वह व्यापारी प्रति सोमवार भगवान शिव की व्रत-उपासना किया करता था। सायंकाल को व्यापारी शिव मंदिर में जाकर भगवान शिव के सामने घी का दीपक जलाया करता था। उस व्यापारी की भक्ति देखकर एक दिन पार्वतीजी ने भगवान शिव से कहा- 'हे प्राणनाथ, यह व्यापारी आपका सच्चा भक्त है। कितने दिनों से यह नियमित सोमवार का व्रत और पूजा कर रहा है। भगवान, आप इस व्यापारी की मनोकामना अवश्य पूर्ण करें।

भगवान शिव ने मुस्कराते हुए कहा- 'हे पार्वती! इस संसार में सबको उसके कर्म के अनुसार फल की प्राप्ति होती है। प्राणी जैसा कर्म करते हैं, उन्हें वैसा ही फल प्राप्त होता है।' इसके बावजूद पार्वतीजी नहीं मानीं। उन्होंने आग्रह करते हुए कहा- 'नहीं प्राणनाथ! आपको इस व्यापारी की इच्छा पूरी करनी ही पडेग़ी। यह आपका अनन्य भक्त है। प्रति सोमवार आपका विधिवत व्रत रखता है और पूजा-अर्चना के बाद आपको भोग लगाकर एक समय भोजन ग्रहण करता है। आपको इसकी पुत्र-प्राप्ति की मनोकामना पूर्ण करनी ही होगी।'

पार्वती का इतना आग्रह देखकर भगवान शिव ने कहा- 'तुम्हारे आग्रह पर मैं इस व्यापारी को पुत्र-प्राप्ति का वरदान देता हूँ, लेकिन इसका पुत्र १६ वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहेगा।' उसी रात भगवान शिव ने स्वप्न में उस व्यापारी को दर्शन देकर उसे पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया और उसके पुत्र के १६ वर्ष तक जीवित रहने की बात भी बताई।

भगवान के वरदान से व्यापारी को खुशी तो हुई, लेकिन पुत्र की अल्पायु की चिंता ने उस खुशी को नष्ट कर दिया। व्यापारी पहले की तरह सोमवार का विधिवत व्रत करता रहा। कुछ महीने पश्चात उसके घर अति सुंदर पुत्र-रत्न ने जन्म लिया। पुत्र जन्म से व्यापारी के घर में खुशियाँ भर गईं। बहुत धूमधाम से पुत्र-जन्म का समारोह मनाया गया। लेकिन व्यापारी को पुत्र-जन्म की अधिक खुशी नहीं हुई क्योंकि उसे पुत्र की अल्प आयु के रहस्य का पता था। यह रहस्य घर में किसी को नहीं मालूम था। विद्वान ब्राह्मणों ने उसके पुत्र का नाम अमर रखा।

जब अमर १२ वर्ष का हुआ तो शिक्षा के लिए उसे वाराणसी भेजने का निश्चय हुआ।

व्यापारी ने अमर के मामा को बुलाया और कहा कि अमर को शिक्षा प्राप्त करने के लिए वाराणसी छोड़ आओ। अमर अपने मामा के साथ शिक्षा प्राप्त करने के लिए चल दिया। रास्ते में जहाँ भी अमर और उसके मामा रात्रि विश्राम के लिए ठहरते, वहीं यज्ञ करते और ब्राह्मणों को भोजन कराते थे।

लंबी यात्रा के बाद अमर और उसके मामा एक नगर में पहुँचे। उस नगर के राजा की कन्या के विवाह की खुशी में पूरे नगर को सजाया गया था। निश्चित समय पर बारात आ गई लेकिन वर का पिता अपने बेटे के एक आंख से काने होने के कारण बहुत चिंतित था। उसे इस बात का भय सता रहा था कि राजा को इस बात का पता चलने पर कहीं वह विवाह से इनकार न कर दे। इससे उसकी बदनामी होगी।

वर के पिता ने अमर को देखा तो उसके मस्तिष्क में एक विचार आया। उसने सोचा क्यों न इस लड़के को दूल्हा बनाकर राजकुमारी से विवाह करा दूँ। विवाह के बाद इसको धन देकर विदा कर दूँगा और राजकुमारी को अपने नगर में ले जाऊँगा।

वर के पिता ने इसी संबंध में अमर और उसके मामा से बात की। मामा ने धन मिलने के लालच में वर के पिता की बात स्वीकार कर ली। आमर को दूल्हे के वस्त्र पहनाकर राजकुमारी से उसका विवाह कर दिया गया। राजा ने बहुत-सा धन देकर राजकुमारी को विदा किया।

अमर जब लौट रहा था तो सच नहीं छिपा सका और उसने राजकुमारी की ओढ़नी पर लिख दिया- 'राजकुमारी, तुम्हारा विवाह तो मेरे साथ हुआ था, मैं तो वाराणसी में शिक्षा प्राप्त करने जा रहा हूँ। अब तुम्हें जिस नवयुवक की पत्नी बनना पडेग़ा, वह काना है।'

जब राजकुमारी ने अपनी ओढ़नी पर लिखा हुआ पढ़ा तो उसने काने लड़के के साथ जाने से इनकार कर दिया। राजा ने सब बातें जानकर राजकुमारी को महल में रख लिया। उधर अमर अपने मामा के साथ वाराणसी पहुँच गया। अमर ने गुरुकुल में पढ़ना शुरू कर दिया।

जब अमर की आयु १६ वर्ष पूरी हुई तो उसने एक यज्ञ किया। यज्ञ की समाप्ति पर ब्राह्मणों को भोजन कराया और खूब अन्न, वस्त्र दान किए। रात को अमर अपने शयनकक्ष में सो गया। शिव के वरदान के अनुसार शयनावस्था में ही अमर के प्राण-पखेरू उड़ गए। सूर्योदय पर मामा अमर को मृत देखकर रोने-पीटने लगा। आस-पास के लोग भी एकत्र होकर दुख प्रकट करने लगे।

मामा के रोने, विलाप करने के स्वर समीप से गुजरते हुए भगवान शिव और माता पार्वती ने भी सुने। पार्वतीजी ने भगवान से कहा- 'प्राणनाथ! मुझसे इसके रोने के स्वर सहन नहीं हो रहे। आप इस व्यक्ति के कष्ट अवश्य दूर करें।' भगवान शिव ने पार्वतीजी के साथ अदृश्य रूप में समीप जाकर अमर को देखा तो पार्वतीजी से बोले- 'पार्वती! यह तो उसी व्यापारी का पुत्र है। मैंने इसे १६ वर्ष की आयु का वरदान दिया था। इसकी आयु तो पूरी हो गई।'

पार्वतीजी ने फिर भगवान शिव से निवेदन किया- 'हे प्राणनाथ! आप इस लड़के को जीवित करें। नहीं तो इसके माता-पिता पुत्र की मृत्यु के शोक में रो-रोकर अपने प्राणों का त्याग कर देंगे। इस लड़के का पिता तो आपका परम भक्त है। वर्षों से सोमवार का व्रत करते

हुए आपको भोग लगा रहा है।' पार्वती के आग्रह करने पर भगवान शिव ने उसे जीवित होने का वरदान दिया और कुछ ही पल में अमर जीवित होकर उठ बैठा।

शिक्षा समाप्त करके अमर मामा के साथ अपने नगर की ओर चल दिया। दोनों चलते हुए उसी नगर में पहुँचे, जहाँ अमर का विवाह हुआ था। उस नगर में भी अमर ने यज्ञ का आयोजन किया। समीप से गुजरते हुए नगर के राजा ने यज्ञ का आयोजन देखा। राजा ने अमर को तुरंत पहचान लिया। यज्ञ समाप्त होने पर राजा अमर और उसके मामा को महल में ले गया और कुछ दिन उन्हें महल में रखकर बहुत-सा धन, वस्त्र देकर राजकुमारी के साथ विदा किया।

रास्ते में सुरक्षा के लिए राजा ने बहुत से सैनिकों को भी साथ भेजा। अमर के मामा ने नगर में पहुँचते ही एक दूत को घर भेजकर अपने आगमन की सूचना भेजी। अपने बेटे अमर के जीवित वापस लौटने की सूचना से व्यापारी बहुत प्रसन्न हुआ। व्यापारी ने अपनी पत्नी के साथ स्वयं को एक कमरे में बंद कर रखा था। भूखे-प्यासे रहकर व्यापारी और उसकी पत्नी बेटे की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि यदि उन्हें अपने बेटे की मृत्यु का समाचार मिला तो दोनों अपने प्राण त्याग देंगे।

व्यापारी अपनी पत्नी और मित्रों के साथ नगर के द्वार पर पहुँचा। अपने बेटे के विवाह का समाचार सुनकर, पुत्रवधू राजकुमारी चंद्रिका को देखकर उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उसी रात भगवान शिव ने व्यापारी के स्वप्न में आकर कहा- 'हे श्रेष्ठी! मैंने तेरे सोमवार के व्रत करने और व्रतकथा सुनने से प्रसन्न होकर तेरे पुत्र को लंबी आयु प्रदान की है। व्यापारी बहुत प्रसन्न हुआ।'

सोमवार का व्रत करने से व्यापारी के घर में खुशियाँ लौट आईं। शास्त्रों में लिखा है कि जो स्त्री-पुरुष सोमवार का विधिवत व्रत करते, ब्राह्मणों को भोज कराते, ब्राह्मणों को दान देते और व्रतकथा सुनते हैं उनकी सभी मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं।

आप पूछते हो कि इतने अंधविश्वास क्यों प्रचलित हैं? क्योंकि लोगों के अंधेपन पर बड़े धंधे फल-फूल रहे हैं। सारी दुनिया के विभिन्न धर्मों के पुरोहित नहीं चाहते कि लोगों की आंख खुले। सदियों-सदियों से इन शोषकों के पास बड़ा प्रचार-तंत्र रहा है। इन्होंने ही शास्त्र लिखें हैं। ये ही ग्रंथों की व्याख्या करते हैं।

सच पूछो तो वस्तुतः कोई अंधा नहीं है, लेकिन विश्वासों की पट्टियां आंखों पर बांध दी गई हैं। भीतर विवेक सोया पड़ा है, मर नहीं गया है। अतः थोड़ी सी मेहनत करके सोए हुए को जगाया जा सकता है। निराश ना होओ... पट्टियां खोली जा सकती हैं, चाहे वे कितनी ही पुरानी क्यों न हों... यह आशा की किरण सदा मौजूद है। इस दिशा में थोड़ा सा श्रम शुरु करो। जब जागे, तभी सवेरा!

प्रकृति-प्रेम

चीफ सियाटल (१७८६-१८६६) अमेरिका के मूल निवासियों के, रेड इंडियन्स के नेता थे। वाशिंगटन राज्य में सियाटल शहर का नामकरण उन्हीं के ऊपर किया गया है। अपनी जमीन से अधिकार छोडऩे के मुद्दे पर उन्होंने ११ मार्च, १८५४ को सियाटल में अपने लोगों के सामने यह उल्लेखनीय भाषण दिया थाः-

भाइयो, वाशिंगटन से राष्ट्रपति ने यह कहलवाया है कि वह हमारी जमीन खरीदना चाहते हैं। लेकिन कोई जमीन को या आकाश को कैसे खरीद सकता है? मुझे यह बात समझ नहीं आती।

जब हवा की ताजगी पर और पानी के जोश पर तुम्हारा मालिकाना नहीं है तो तुम उसे कैसे खरीद और बेच सकते हो? इस धरती का हर एक टुकड़ा मेरे लोगों के लिए पवित्र है। चीड़ की हर चमकती पत्ती, हर रेतीला किनारा, घने जंगलों का कुहासा, हर मैदान, हर भुनभुनाता कीड़ा- ये सभी मेरे लोगों की स्मृति और अनुभवों में रचे-बसे हैं और पवित्र हैं।

इन पेड़ों के तनों में बहने वाले अर्क को हम उतना ही बेहतर जानते हैं जितना हम अपनी शिराओं में बहने वाले रक्त से परिचित हैं। हम इस धरती के अंश हैं और यह भी हमारा एक भाग है। महकते फूल हमारी बहनें हैं। भालू, हिरन, और गरुड़, ये सभी हमारे भाई हैं।

पथरीली चोटियाँ, चारागाहों की चमक, खच्चरों की गरमाहट, और हम सब, एक ही परिवार के सदस्य हैं। इन झरनों और नदियों में बहनेवाला चमकदार पानी सिर्फ पानी ही नहीं है बल्कि हमारे पूर्वजों का लहू है। यदि हम तुम्हें अपनी जमीन बेच दें तो तुम यह कभी नहीं भूलना कि यह हमारे लिए कितनी पावन है। इन झीलों के मंथर जल में झलकने वा ली परछाइयां हमारे लोगों की ज़िंदगी के किस्से बयान करतीं हैं। बहते हुए पानी का कलरव मेरे पिता और उनके भी पिता का स्वर है।

नदियाँ हमारी बहनें हैं। उनके पानी से हम प्यास बुझाते हैं। वे हमारी नौकाओं को दूर तक ले जातीं हैं और हमारे बच्चों को मछलियाँ देतीं हैं। इसके बदले तुम्हें नदियों को उतनी ही इज्ज़त बख्शनी होगी जितनी तुम अपने बहनों का सम्मान करते हो।

यदि हम तुम्हें अपनी जमीन बेच दें तो यह न भूलना कि हमारे लिए इसकी हवा अनमोल है। इस हवा में यहाँ पनपने वाले हर जीव की आत्मा की सुगंध है। हमारे परदादाओं के जीवन की पहली और अंतिम सांस इसी हवा में कहीं घुली हुई है। हमारे बच्चे भी इसी हवा में सांस लेकर बढ़े हैं। इसलिए, अगर हम तुम्हें अपनी जमीन बेच दें तो इसे तुम अपने लिए भी उतना ही पवित्र जानना।

इस हवा में मैदानों में उगनेवाले फूलों की मिठास है। क्या तुम अपने बच्चों को यह नहीं सिखाओगे, जैसा हमने अपने बच्चों को सिखाया है कि यह धरती हम सबकी माता है? इस धरती पर जो कुछ भी गुज़रता है वह हम सबको साथ में ही भोगना पड़ता है।

हम तो बस इतना ही जानते हैं कि हम इस धरती के मालिक नहीं हैं, यह हमें विरासत में मिली है। सब कुछ एक-दूसरे में उतना ही घुला-मिला है जैसे हमें आपस में जोड़ने वाला रक्त। यह जीव-जगत हमारा बनाया नहीं है, हम तो इस विराट वस्त्र के थान के एक छोटे से तंतु हैं। यदि इस थान का बिगाड़ होगा तो हम भी नहीं बचेंगे।

और हम यह भी जानते हैं कि हमारा ईश्वर तुम्हारा भी ईश्वर है। यह धरती ईश्वर को परमप्रिय है और इसका तिरस्कार उसके क्रोध को भड़कायेगा।

तुम जिसे नियति कहते हो वह हमारी समझ से परे है। तब क्या होगा जब सारे चौपाये जिबह किये जा चुके होंगे? और जब साधने के लिए कोई जंगली घोड़े नहीं बचेंगे? और तब क्या होगा जब जंगलों के रहस्यमयी कोनों में असंख्य आदमियों की गंध फ़ैल जायेगी और उपजाऊ टीले तुम्हारे बोलनेवाले तारों से बिंध जायेंगे? तब झुरमुट कहाँ बचेंगे? गरुड़ कहाँ बसेंगे? सब ख़त्म हो जाएगा। चपल टट्टुओं पर बैठकर शिकार पर निकल चलने का क्या होगा? यह वह व़क्त होगा जब जीवन ख़त्म होने के कगार पर होगा और ज़िंदगी कायम रखने की जद्दोजहद शुरू हो जायेगी।

इस वीराने से आखिऱी लाल निवासियों के चले जाने के बाद जब आकाश गुजरऩेवाले बादलों की परछाईं ही उन्हें याद करेगी। क्या तब भी यह सागरतट और अरण्य बचे रहेंगे? क्या यहाँ से हमारे चले जाने के बाद भी हमारी आत्मा यहाँ बसी रहेगीं?

हम इस धरती से उतना ही प्यार करते हैं जितना एक नवजात अपने माता की छाती से करता है। तो, अगर हम तुम्हें अपनी जमीन बेच दें तो इसे उतना ही प्यार करना। हम इसकी बहुत परवाह करते हैं, तुम भी करना। इसे ग्रहण करते समय इस धरती की स्मृति को भी अपना लेना। इसे अपनी संततियों के लिए संरक्षित रखना, जैसे ईश्वर ने हमें हमेशा संभाला है।

जिस तरह हम इस धरती के अंश हैं, तुम भी इसके अंश हो। यह हमारे लिए अनमोल है और तुम्हारे लिए भी।

हम तो बस इतना ही जानते हैं- कि हम सबका एक ही ईश्वर है। न तो कोई लाल आदमी है और न ही कोई गोरा, कोई भी किसी से अलग नहीं है। हम सब भाई हैं।

प्रकृति का नियम

इस दुनिया को चलाने वाला कोई न कोई मालिक जरूर है?

इस बात को यूं आसानी से समझा जा सकता है कि वह मालिक प्रकृति के रूप में उपस्थित है। उसके नियमों के साथ छेड़छाड़ करना गुनाह है और साथ चलने के मायने हैं इबादत।

इस्लाम के सीरतुस्सालेहीन में एक कहानी का जिक्र है। एक बूढ़ी औरत को चरखा चलाते देखकर एक पढ़े-लिखे युवक ने उससे पूछा कि जिंदगी भर चरखा ही चलाया है या उस परवरदिगार की कोई पहचान भी की है?

बुढ़िया ने जवाब दिया, 'बेटा, सब कुछ तो इस चरखे में ही देख लिया है।'

पढ़ा-लिखा आदमी चौंका और उसने पूछा, 'कैसे?'

बूढ़ी औरत ने जवाब दिया, 'जब मैं इस चरखे को चलाती हूँ तब यह चलता है। जब मैं इसे छोड़ देती हूँ तो बंद हो जाता है। चलाए बिना नहीं चलता। इस दुनिया में जमीन, आसमान, चांद, सूरज- ये जो बड़े-बड़े चरखे हैं, इनको भी चलाने के लिए कोई एक होना चाहिए।'

'जब तक वो चला रहा है, ये चल रहे हैं। मिसाल के तौर पर जब मैं इसे चलाती हूं तो यह मेरे हिसाब से चलता रहता है। यदि मेरे सामने कोई बैठ जाए और इस चरखे को चलाने लगे तो यह चरखा ठीक से चलेगा जब सामने वाला मेरी चाल के मुताबिक इसको चलाए। यदि वो मेरे चलाने के विपरीत चलाएगा तो यह चलेगा नहीं, टूट जाएगा। बस, यही उसूल उस ऊपर वाले की दुनिया का है।

'उसने जिस ढंग से यह प्रकृति बनाई है, हमें नियमों का पालन करना चाहिए और यदि हम दूसरी तरपफ चलने वाले बनकर उल्टा चलाएंगे यानी प्रकृति के नियमों को तोड़ेंगे, उस परवरदिगार के उसूलों को नहीं मानेंगे तो नुकसान उठाएंगे। इसी का नाम इबादत है।'

बूढ़ी औरत की बात उस आदमी की समझ में आ गई।

पर्यावरण का संकट, या आदमी की सेहत की परेशानी, या दुनिया की सैकड़ों अन्य मुश्किलें उल्टी चाल से ही पैदा होती है।

मालिक कोई व्यक्ति नहीं, समष्टि है। चाहे कहो– प्रकृति का नियम या लाओत्से की भाषा में ताओ, अथवा बुद्ध की शब्दावली में धम्म!

धर्मों में धर्म नहीं

सद्गुरु ओशो ने एक प्रवचन में कहा है कि धर्मों में धर्म नहीं है। इस वक्तव्य का क्या अभिप्राय है?

अभिप्राय बिल्कुल स्पष्ट है। जिन्हें हम धर्म कहते हैं, वे संगठन हैं। और सभी संगठन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, इत्यादि बुनियादों पर खड़े होते हैं। वास्तविक धर्म व्यक्ति की आत्मा से संबंधित होता है। अध्यात्म अर्थात् आत्म-विकास का विज्ञान। संगठन की कोई आत्मा नहीं होती। 'धर्मों' में 'धर्म' नहीं हो सकता। बहुवचन जहां आ गया, वहां उस 'एक' का अनुभव भर खो जाता है, 'अनेक' प्रकार के वचन, सिद्धांत एवं वाद-विवाद आ जाते हैं। राजनीतियां शुरु हो जाती हैं। भाईचारा फैलाने के लिए लड़ाई-झगड़े और खून-खराबे शुरु हो जाते हैं। दुनिया में शांति लाने के लिए लोग अशांत हो उठते हैं। हिंसा मिटाने की खातिर सांप्रदायिक दंगे-फसाद होने लगते हैं। और अधर्म को नष्ट करने के लिए अंततः धर्मयुद्ध पर उतर आना पड़ता है। कन्टेनर पर जो लेबल चिपका था, भीतर के कन्टेन्ट में सिर्फ वही शेष नहीं बचता। जैसे मच्छरदानी में मच्छर नहीं होता, गुलाबजामुन में न गुलाब होता न ही जामुन होता।

मुल्ला नसरुद्दीन की बीमार बीबी पलंग पर लेटी थी। मुल्ला से चाय बनाकर लाने को बोली। नसरुद्दीन किचिन में गया। बड़ी खटर-पटर की आवाजें आती रहीं, आधा घंटा बीत गया, मगर चाय बनाकर नहीं लाया। बीबी ने पूछा-मियां, इतनी देर से क्या कर रहे हो? मुल्ला ने कहा-चाय की पत्ती किस डिब्बे में है? बीबी बोली-कैसे पढ़े-लिखे इंसान हो! हर डिब्बे पर तो साफ-साफ लिखा हुआ है। अंधे हो, दिखता नहीं! जिस पर लाल मिर्च का लेबल लगा है, उसी में चाय पत्ती है।

नसरुद्दीन ने पूछा-और शक्कर कहां है? बीबी ने कहा-शुद्ध घी के डिब्बे में। अरे, इतनी भी अक्ल नहीं है! या अल्लाह, कैसा निकम्मा हसबैंड लिख दिया मेरी किस्मत में? मुल्ला ने जवाब दिया-अब मैं राज समझा। वाकई, मैं बना किसी और के लिए था, मगर गलती से किस्मत के लेबल पर तुम्हारा नाम लिखा था।

बस ऐसे ही धर्म के नाम पर अधर्म चल रहा है। नीति के नाम पर अनीति प्रचलित है। यदि अनीति घोषणा कर दे कि मैं अनीति हूं तो फिर चल ही न पाएगी। पाप को ढिंढोरा पीटना पड़ता है कि मैं ही असली पुण्य हूं। अधर्म को गारंटी देनी पड़ती है, बड़े लुभावने आश्वासनों सहित! असत्य के अपने पैर नहीं होते, उसे सत्य की वैसाखियों के सहारे चलना होता है। विज्ञापन की बदौलत झूठ चल पाता है।

जैसे संपूर्ण जगत में विज्ञान एक है, बहुत नहीं हो सकता। वैसे ही धर्म भी एक ही संभव है। उसके कोई विशेषण संभव नहीं हैं। चीनी भौतिक शास्त्र, भारतीय भौतिक शास्त्र और आस्ट्रेलियन भौतिक शास्त्र नहीं होते। जापानी केमिस्ट्री और अमेरिकन केमिस्ट्री जैसी कोई चीज नहीं होती। रसायन शास्त्र बस रसायन शास्त्र है- सारी दुनिया में एक ही है। न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत खोजा, इसलिए गुरुत्वाकर्षण ईसाई नहीं हो जाता। और आइन्स्टीन द्वारा खोजे जाने की वजह से सापेक्षिकता यहूदी नहीं हो जाती।

स्त्री-पुरुष का सामान्य प्रेम तक निजी, वैयक्तिक मामला है, तो इंसान और भगवान के बीच की प्रीति अर्थात् भक्ति कैसे सामूहिक, संस्थागत हो सकती है? अच्छा है कि अभी तक लैलावादी नारी संस्थान, मजनूवादी लवर्स एसोशिएसन, युनाइटेड इश्क आर्गनाइजेशन, निराकार प्रेयसी आंदोलन, साकार हुस्न सेना, अखिल भारतीय प्रेम रजिस्ट्रेशन सोसाइटी इत्यादि किस्म के संगठन नहीं बने, वरना आए दिन इनमें सैद्धांतिक टकराव, नियमावलि परिवर्तन हेतु नारेबाजी, हड़ताल, पथराव वगैरह की घटनाएं सुनने में आतीं। स्कूल विश्वविद्यालयों में प्रेम के प्रकार, विभाजन, उपविभाजन, तरीके, प्रेम का इतिहास वगैरह पढ़कर, परीक्षा में उत्तीर्ण होकर ही किसी को प्रेम करने का सर्टिफिकेट मिलता। संविधान में प्रेम-कानून की जटिल धाराओं को समझने के लिए वकीलों की शरण जाना पड़ता। व्यावसायिक प्रेम एजेंसियां खुल जातीं। सरकारी और प्राइवेट के अतिरिक्त बहुराष्ट्रीय कंपनियां भी इस क्षेत्र में कूदकर अग्रणी हो जातीं। कोई चालाक अमरीकी 'बुक ऑफ लव-लेटर्स' का पेटेन्ट करा लेता। इसमें से ही चुनकर सच्चे प्रेमपत्र लिखे जाते, जिनकी रॉयल्टी चुकानी पड़ती। अपनी मनमर्जी से लिखे गए प्रेमपत्र नकली माल के अंतर्गत आते जिनके पकड़ाने पर एक लाख का जुर्माना या एक साल की कैद या दोनों सजाएं मिलतीं। तीन से अधिक बार पकड़े जाने पर प्रेम करने का लाइसेंस रद्द कर दिया जाता और ऐसे रद्दी व्यक्ति की सूची अखबारों में प्रकाशित की जाती, ताकि आम जनता सावधान रहे, इनके छलावे में न आए। निश्चित ही इतने सारे 'प्रेमों' के झमेलों के बीच 'प्रेम' भर जीवित नहीं बचता।

अखबारों में कुछ इस तरह की खबरें छपतीं- 'हुस्न के हजार हथकंडे' पुस्तक पुरुस्कृत। मगर लेखिका की निर्मम हत्या। ईर्ष्यालु प्रतियोगी लेखिकाओं पर पुलिस को संदेह। चुम्बन विरोधयों और चुम्बन समर्थकों की मुठभेड़ में बीस जख्मी, चार स्वर्गवासी। कट्टरपंथी खजुराहोवादियों ने कोणार्क की मूर्तियों को तोड़ा। रूढ़ीवादी प्रेमगीत गाने वालों द्वारा फिल्मी गीत गाने वालों पर मुकदमे दायर। संसद में मांग की गई कि सरकार राष्ट्रभाषा में आफिसियल प्रेमगीतों की सूची प्रकाशित करे। प्रेम-गुट द्वारा मुहब्बत के झंडे पर शीरी-फरिहाद के चित्र को लेकर आपत्ति और तोड़फोड़। स्थानीय बोलियों में

प्रेम-कविताएं लिखने वालों के अल्प संख्यक प्रतिनिधि मंडल ने हंगामा किया और काम-सूत्र में आग लगाई। इश्क-दल और प्रेम-पार्टी के सदस्यों के बीच डंडे चले। पंडित कोक एवं वात्स्यानन के परंपरावादी चेले-चेलियों ने आधुनिक बगावती प्रेमी-प्रेमिकाओं को पीटा। दो जोड़े शहीद हुए। मुम्बई में मराठी के अलावा किसी अन्य भाषा में प्रेम निवेदन करने वालों की जान से मारने की धमकी। 'देशी प्रेम संगठन' के उपद्रवी अध्यक्ष, सचिव एवं वरिष्ठ अधिकारियों के बीच छुटपुट हिंसक वारदातें। 'आशिक पार्टी' और 'माशूक पार्टी' के बीच कव्वाली मुकाबला का आयोजन बुरी तरह विफल। परस्पर ताने और आरोप वाली शायरी से तनाव, अंततः घमासान गाली-गलौज, पत्थरबाजी। चार हस्पताल में, सात हवालात में।

'वर्ल्ड फ्रेन्ड्स डे' किस तारीख को मनाया जाए इस गंभीर मुद्दे पर बहस छिड़ जाने से 'वर्ल्ड फ्रेन्ड्स कमेटी' के सदस्यों ने आक्रोश में एक-दूसरे पर गोलियां बरसाईं। 'श्यामवर्ण युवक संघ' के नेताओं ने मांग की है कि उन्हें आरक्षण प्रदान किया जाए कि कम से कम बीस प्रतिशत गोरी युवतियों को उनसे प्रेम करना पड़ेगा, चाहे वे शादी न करें। राधा-कृष्ण को वर्ण-भेद के खिलाफ आदर्श युगल के रूप में निरूपित करते हुए उन्होंने अपनी डिमांड को देश की ऐतिहासिक व धार्मिक संस्कृति के अनुरूप बताया। 'सुंदरी सोसाइटी' ने घोर विरोध करते हुए काले युवकों को काले झंडे दिखाए। 'गौरवर्ण कन्या सभा' की अध्यक्षा ने आरोप लगाया कि राधा-कृष्ण की कथा सर्वथा काल्पनिक है, काले-कलूटे शरारती लड़कों द्वारा रचित है। इस कहानी को भारतीय अथवा हिन्दू संस्कृति का प्रतीक बताया गया तो 'गौरवर्ण कन्या सभा' की सदस्याएं सामूहिक आत्मदाह कर लेंगी तथा अपने साथ उन धर्म-शास्त्रों को भी भस्मीभूत कर देंगी जिनमें इस कथा का वर्णन है। रासलीला की मनगढ़ंत कथा में उन्होंने विदेशी हाथ बताया। पूछताछ से पता चला कि अफ्रीकन नीग्रो लफंगों पर उन्हें संदेह है। दूसरी तरफ 'बराबरी वाला प्रेम' एवं 'बेशर्त प्रेम सिद्धांत' को मानने वाली 'कुरूप युवती समिति' की साम्यवादी शाखा ने पचास प्रतिशत हैंडसम प्रेमी पाने हेतु आरक्षण अधिकार की मांगपूर्ति में विलम्ब होने से अनशन आरंभ कर दिया। जब तक 'हैंडसम प्रेमीदल' के पचास सदस्य खुद आकर उनकी मांग में सिन्दूर नहीं भरेंगे, यह अनशन जारी रहेगा।

'पीड़ित विवाहित संघ' के विषादग्रस्त नर-नारियों के उग्रवादी समूह ने अविवाहितों की एक 'सुखी-कालोनी' में आगजनी की। वे नारे लगा रहे थे कि जिन्हें देखकर हमारा खून जलता है, हम उनके घर जलाएंगे। प्रतिशोध अग्नि भविष्य में पुनः भड़कने की आशंका। 'वसुधैव कुटुम्बकम् इंटरनैशनल फाउन्डेशन' के नेताओं के आपसी मतभेद ने अंततः युद्ध का रूप धारण किया। बमबारी आरंभ होने से नागरिकों में भगदड़, अशांति

एवं भय का वातावरण। राजधानी में दो वर्ष पूर्व हुए 'प्रेम-दंगे' में गुप्तचर विभाग ने पाकिस्तान से प्रशिक्षण प्राप्त 'आतंक-ए-मुहब्बत' नामक गिरोह का हाथ बताया।

एक बात तय है कि प्रेमों के नाम पर चल रहे इन तांडव नृत्यों के बीच सहज स्वाभाविक प्रेम जीवित नहीं बचेगा। यह सारा तमाशा देखकर प्रेम में भरोसा न रखने वाले नास्तिक पैदा हो जाते। 'प्रेम-दंगा' और 'आतंक-ए-मुहब्बत' शब्द जितने हास्यास्पद हैं, क्या जिहाद या धर्म-युद्ध उससे कम चुटकिले हैं! यदि युद्ध धार्मिक हो सकता है तो फिर अधर्म कैसा होगा? आस्तिकों की करतूतों से घबराकर आधे लोग नास्तिक हो गए हैं, तो आश्चर्य कैसा!

ध्यान, बस ध्यान है, चेतना का विज्ञान है। गौतम बुद्ध के खोजने से विपस्सना विधि बौद्ध नहीं हो गई है तथा महावीर की साधना पद्धति पर जैनियों की मुहर नहीं लग गई है। न योग पर किसी की बपौती है न भक्ति पर। समाधि हिन्दुओं की नहीं है और तान्देन चीनियों की नहीं है। ये सब चेतना के विज्ञान के विविध आयाम हैं, जैसे बाहरी जगत में विज्ञान के कई आयाम हैं। साइंस ऑफ दि मैटर, और साइंस ऑफ दि सोल, दोनों ही संगठनों, देशों, राजनीतियों, समाजों की सीमाओं के दायरे से बाहर की बातें हैं। सत्य किसी का नहीं होता। हम सत्य के हो सकते हैं। लोग प्रार्थना में कहते हैं- 'हे मेरे प्रभु' 'ओ माई गॉड'। ईश्वर पर भी मालकियत का दावा! मेरा भगवान या मैं भगवान का? मेरा धर्म या मैं धर्म का?

दुर्भाग्यवश तथाकथित 'धर्मों' के नाम पर जो चल रहा है वह 'धर्म' नहीं है। शिव ने, पतंजलि ने, लाओत्से ने, कृष्ण ने जो जाना और जिया, वह तो वास्तविक धर्म है। मगर उनके पीछे चलने वाले अनुयायियों ने जो किया, वह कुछ और ही है। ईसा मसीह तो अपनी हत्या करने वालों को भी क्षमा करके विदा हुए, परंतु इन दो हजार सालों में ईसाईयों ने जितने यहूदियों के प्राण लिए हैं, उसका हिसाब लगाना कठिन है। प्रेम के मसीहा को पूजने वाले ईसाई मुल्कों की कृपा से ही प्रथम विश्वयुद्ध हुआ, फिर द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ। अब तीसरा और संभवतः आखिरी युद्ध भी इन्हीं प्रेम व शांति के पुजारियों द्वारा आपस में लड़ा जाएगा। जब तक पूरी पृथ्वी मरघट न बन जाए, तब तक पूर्ण शांति नामुमकिन है। ये लोग शांति लाकर ही मानेंगे।

अर्जुन बनूं कि एकलव्य?

प्रश्नकर्ता– स्वामी जी, क्षमा चाहता हूं, आज मेरा प्रश्न थोड़ा लंबा है। 'एकलव्य एजुकेशन फाउन्डेशन' द्वारा प्रकाशित एक मन को मंथन करने वाले लेख में कहा गया है कि यदि जीवन में हमें द्रोणाचार्य जैसा गुरु मिले तो हमें अर्जुन बनना चाहिए या एकलव्य?

निश्चित रूप से अधिकांश लोग अर्जुन होना चाहेंगे। वैसे यह निर्णय उचित भी प्रतीत होता है। अतः इस पक्ष का विश्लेषण करना आवश्यक है।

मान लें कि अर्जुन धनुर्विद्या सीख रहा है और उसका तीर निशाने से करीब दो इंच चूक जाता है। वह द्रोण के पास जाकर उपाय पूछता है। गुरु स्थिति देख कर बता देते हैं कि उसका बाएं पांव पर वजन ज्यादा है, थोड़ा कम करके तीर छोड़ो। वह एक-दो बार में निशाने पर तीर लगा लेता है। दूसरी तरफ एकलव्य का तीर भी निशाने से दो इंच दूर लगता है। तत्क्षण सहायता के लिए उसके पास गुरु उपलब्ध नहीं है। अर्थात् उसे 'तैयार उत्तर' नहीं मिलता। उसे अपना उत्तर स्वयं खोजना पड़ेगा। इस हेतु वह स्वयं सोचेगा, देखेगा, व चिन्तन करेगा। बार-बार नए तरीके से तीर चलाकर प्रयोग करेगा। उत्तर खोजने के क्रम में हो सकता है उसे रात को नींद न आए। उपाय खोजता हुए संभवतः दो-तीन सप्ताह या माह में उसे पता लग जाएगा कि उसे बाएं पांव पर जोर अधिक देना है तब वह सफल हो जाएगा। इस प्रकार वह अपना मार्ग स्वयं खोज लेता है।

अब सवाल यह उत्पन्न होता है कि विपरीत स्थिति में अपना उत्तर दूसरों की सहायता से खोजने में बुद्धिमत्ता है कि उसे स्वयं खोजना चाहिए। अर्जुन की सहायता प्राप्ति की आदत ने ही कुरुक्षेत्र के मैदान में भी सहायता चाही। वह परिजनों को सामने देखकर युद्धभूमि में घबरा गया। तभी तो कृष्ण ने वहां पर गीता का उपदेश दिया। अर्थात् अर्जुन सदैव मुसीबत में दूसरों की तरफ देखता है जबकि एकलव्य अपना समाधान खुद खोजता है। इससे वह तृप्त व आत्मविश्वास से युक्त रहता है। एकलव्य को अपने पर भरोसा अधिक है, वह स्वयं से सन्तुष्ट है क्योंकि दूसरों की तरफ देखने की आदत नहीं है। चुनौतियों का मुकाबला वह अपने तरीके से करता है। जबकि अर्जुन सदैव दूसरों की तरफ ताकता है।

अतः पुनः विचार करें कि क्या हमें सदैव मार्गदर्शन मांगने वाला अर्जुन बनना चाहिए या अपनी सहायता आप करने वाला एकलव्य? क्या द्रोण जैसा कोई प्रत्यक्ष गुरु अनिवार्य

है या साक्षात् गुरु के बिना भी जीवन आगे बढ़ सकता है?

ओशो शैलेन्द्र– मैं भी क्षमा चाहता हूं, आज मेरा उत्तर थोड़ा छोटा है। ठीक से समझना, गौर से सुनना।

जहां तक बाहरी विद्यार्थियों के ज्ञान की बात है, मनुष्य की खूबी यही है कि पिछली पीढ़ियां अपना ज्ञान आगंतुक पीढ़ी को सौंप जाती हैं। भाषा, लिपि, शिक्षा प्रणाली आदमी की ईजादें हैं। इसी कारण जानवरों की भांति हर पीढ़ी को अ-ब-स-द से शुरू नहीं करना पड़ता। मनुष्य जाति विज्ञान का इतना विकास कर सकी, अन्य पशु-पंछी नहीं कर सके। विगत ढ़ाई-तीन हजार साल में मनुष्यता ने जो खोजा है, आने वाली पीढ़ी पच्चीस-तीस सालों में सीख जाती है, और उसके आगे कदम उठा लेती है। अब कोई फिर से खोज में लगे कि धरती गोल है या चपटी, 'अपनी' विद्युत का अन्वेषण करे, तो वह विक्षिप्त ही कहलाएगा। कोई पुनः 'सेल्फ मेड' यानि मौलिक भाषा और लिपि बनाए, तो उसका जीवन व्यर्थ जाएगा। बाहरी सांसारिक ज्ञान के बारे में तो हमें एजुकेशन सिस्टम पर निर्भर होना होगा। हां, इस सिस्टम को और उन्नत, बेहतर बनाया जा सकता है। 'एकलव्य एजुकेशन फाउन्डेशन' वालों को खबर कर देना। यदि ये फाउन्डेशन वाले सज्जन पढ़े-लिखे न होते, तो यह लेख भी न लिख सकते थे। अब तीर-कमान चलाने वाला आदिवासी जमाना गुजर गया, क्या आज एकलव्य होता तो खुद आणविक शस्त्र, मिसाइल्स, बायोलॉजिकल वेपन्स, स्टार वार की तैयार कर सकता?

अब रही बात आंतरिक ज्ञान की, ध्यान की, समाधि की। इस मामले में स्पष्ट जान लें, गुरु के बिना लाखों-करोड़ों में कोई एक व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो पाता है। परमगुरु ओशो स्वयं इसी प्रकार के विरले अपवादों में से एक हैं। नियम तो यही है कि 'गुरु बिन होई न ज्ञान'। जब छोटी-मोटी, स्थूल बातें सीखने के लिए भी शिक्षक चाहिए, तो अदृश्य चैतन्य लोक में सूक्ष्म अंतर्यात्रा करना, बगैर पथ-प्रदर्शक के भला कैसे संभव होगा!

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन हाईवे पर आड़ी-तिरछी, कभी बाएं कभी दाएं मोड़ता हुआ कार चला रहा था। ट्रैफिक पुलिस ने रोका, पूछा-'दारू पीकर चला रहे हो क्या? लाइसेंस दिखाओ।' मुल्ला बोला-'जी नहीं, पूरे होशो-हवास में हूं। ये रहा मेरा लर्निंग लाइसेंस'। सिपाही ने कहा- 'अच्छा तो अभी सीख रहे हो। मगर मियां, तुम्हारा ट्रेनर, प्रशिक्षक कहां है?' नसरुद्दीन ने बताया- 'जी, मैं तो 'ड्राईविंग करेस्पांडेन्स कोर्स' कर रहा हूं।' बहिर्यात्रा सीखनी हो, ड्राईवर या पायलट बनना हो तो प्रैक्टिकल गाइडेन्स चाहिए। यद्यपि कोई चाहे तो सिर्फ किताबी ज्ञान से भी काम चला सकता है-

अपनी और दूसरे अनेक लोगों की जान जोखिम में डालकर! किंतु चेतना के जगत में तो लगभग असंभव ही समझो। कुछ दिन की जगह कई जन्म लग जाएंगे। लेकिन फिर भी तुम्हारी मौज!

आध्यात्मिक गुरु की बात छोड़ों, द्रोण को तो मैं एक सज्जन पुरुष भी नहीं मानता। मैं तो गुरु दक्षिणा में अंगूठा मांगने वाला द्रोण नहीं हूं। लेकिन तुम्हारा तार्किक दांवपेंच भरा सवाल तुम्हारी अर्जुन जैसी मनस्थिति का द्योतक है। अर्जुन का मतलब समझते हो? आड़ा-तिरछा। ऋजु यानि सीधा-सरल। अऋजु अर्थात् टेढ़ा, चालाक। जो अहंकार आत्मज्ञान में व्यवधान है, वही तिरछा अहंकार इस प्रकार के कुतर्कयुक्त प्रश्न उत्पन्न करता है।

थोड़ा सोचो, इस सवाल का जवाब तक तुम खुद न सोच पाए, किसी से पूछना पड़ा। पूछा कि शिष्य हो गए, जो बताएगा वह गुरु हो गया। चाहे तुम ऐसा नामकरण करो या न करो। और जनाब, उत्तर की तो छोड़ो, प्रश्न भी तुम्हारा मौलिक नहीं है। वह भी उधार है- 'एकलव्य एजुकेशन फाउन्डेशन' का है। प्रश्न का फाउन्डेशन, आधार भी तुम्हारे मन में नहीं है। फिर दोहरा दूं, कि यदा-कदा कोई विरला विवेकवान व्यक्ति स्वयंमेव जाग सकता है, परंतु वह अपवाद भी नियम को ही सिद्ध करता है। एक बात पक्की है, तुम वैसे प्रज्ञावान नहीं हो।

जब बीमार पड़ते हो तब नहीं कहते कि मैं खुद अपनी चिकित्सा पद्धति खोजूंगा, तब स्वनिर्मित दवाई खाउंगा। बिना मेडिकल साइंस सीखे, मैं स्वयं की सर्जरी करूंगा। फिर अध्यात्म के क्षेत्र में जिद क्यों? अपनी स्थिति को समझो, वरना मारे जाओगे। देह की चीरफाड़ शायद कर भी लो, अहंकार रूपी कैंसर का आपरेशन न कर पाओगे। अभी तो तुम्हें रोग तक का अहसास नहीं है, भला इलाज कैसे खोजोगे? वही अहंकार रूपी कैंसर अपने बचाव में तर्क दे रहा है, इस तरह का सवाल उठा रहा है।

पुनः चेताता हूं- सावधान! गुरु के प्रति समर्पण, यानि शिष्यत्व ही इस बीमारी की औषधि है। धन्यवाद।

अनिवार्य परिणति

मौत के बाद कर्म के अनुसार स्वर्ग या नर्क मिलता है अथवा किस्मत के मुताबिक, या कि परमात्मा में विश्वास और श्रद्धा, आस्तिकता–नास्तिकता के आधार पर? आत्मा को चुनाव की स्वतंत्रता होती है या अस्तित्व तय करता है? एक धार्मिक व्यक्ति को शत्रुओं के संग कैसा व्यवहार करना चाहिए?

कुछ कहानियां सुनाता हूं उसमें आपके सवाल का जवाब मिल जाएगा।

प्रथम कथा–

मरने के बाद आदमी ने स्वयं को अनेक दरवाजों के बीच खड़े पाया। एक पर लिखा था 'लालसा', दूसरे पर 'भय' तीसरे पर 'अभिमान' चौथे पर 'प्रेम–संबंध' पांचवें पर 'सम्पत्ति' और आगे के द्वारों पर शक्ति, बुद्धि, मूढ़ता, गरीबी, कमजोरी, सौंदर्य, कुरूपता, इत्यादि लिखा था। वह विचारने लगा, क्या मैं कहीं भी जाने के लिए आजाद हूं? जैसा धरती पर सुना था कि कर्मों का लेखा–जोखा होता है, वैसा तो यहां कुछ नजर नहीं आ रहा। आश्चर्य भी हो रहा था कि मूढ़ता, गरीबी, कमजोरी, कुरूपता, भय आदि द्वारों से भला कोई क्यों प्रवेश करेगा! इनकी जरूरत ही क्या है?

उसे चिंतामग्न देखकर एक देवदूत उस तक आया और बोला, 'तुम किसी भी द्वार को चुन सकते हो। तुम्हें मनपसंद जगह पहुंचने की सुविधा है। ये मार्ग निर्देशित मंजिल पर जाकर खुलते हैं।'

आदमी ने बहुत सोचा पर उसे तय करते नहीं बना। उसने देवदूत से ही पूछा, 'मैं तो सोचता था कि मुझे मजबूर किया जाएगा नर्क में जाने के लिए, क्योंकि मेरे विचार, भाव, संकल्प, कर्मादि शुभ नहीं रहे। कृपया आप ही बताएं कि मुझे कौन सा दरवाज़ा चुनना चाहिए? मैं बड़े द्वन्द्व में पड़ गया हूं। क्या पकड़ूं, क्या छोड़ूं?

देवदूत ने मुस्कुराते हुए कहा, 'उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कामनाओं के मार्ग पर सभी यात्राओं की अनिवार्य परिणति दुःख में होती है।'

एक दूसरी कहानी सुनो–

'क्या आप उचित–अनुचित में, शुभ–अशुभ में विश्वास करते हैं?' युवक झेन संन्यासी ने अपने गुरु से पूछा।

गुरु ने उत्तर दिया, 'नहीं, मैं इनमें भरोसा नहीं करता।'

'लेकिन कल ही मैंने आपको एक निर्धन व्यक्ति को दान देते देखा। यदि आप उचित और अनुचित, सही और गलत आदि में आस्था नहीं रखते हैं तो आप हमेशा उचित और सही कर्म ही क्यों करते हैं? क्या आप मरने के पश्चात् निर्वाण प्राप्त करना चाहते हैं।' युवक संन्यासी ने पूछा।

गुरु ने कहा, 'अब तुम मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो, कल मैंने तुम्हें चावल खाते देखा था

और आज सुबह तुम सेब खा रहे थे। तुम इन सब चीजों में श्रद्धा रखते हो? क्या तुम्हारे मन में कभी पत्थर खाने की इच्छा पैदा होती है?'

युवक संन्यासी ने कहा, 'यह तो बहुत अलग बात है! चावल या सेब खाने का संबंध उनमें विश्वास या आस्था रखने से थोड़े ही है!'

'बिलकुल वही!' गुरु ने कहा, 'सही या उचित कर्म करने के लिए उनमें विश्वास रखना ज़रूरी नहीं है। जागरूकता की स्थिति में पुण्य ही होते हैं, पाप नहीं होते। मूर्च्छित अवस्था में पाप ही होते हैं, पुण्य नहीं। सजगता का परिणाम आनंद है, प्रमाद का फल दुख है।'

आपने पूछा है कि आत्मा को चुनाव की स्वतंत्रता होती है या अस्तित्व तय करता है? अस्तित्व नियम से चल रहा है। व्यक्ति को चुनाव की स्वतंत्रता है, लेकिन परिणाम समष्टि के हाथों में हैं।

लो, तीसरी कहानी सुनो-

एक व्यापारी ने झेन गुरु से पूछा, 'आप कैसे कह सकते हैं कि हमारे जीवन में नियंत्रण का अभाव है? यह मैं ही निश्चित करता हूँ कि मुझे नींद से कब जागना है, कब सोना है, कहां जाना है, अन्य कोई व्यक्ति मुझे यह सब करने के लिए नहीं कहता।'

गुरु ने कहा, 'यदि मैं तुम्हें प्रतिदिन एक निश्चित रकम दूं जिसे तुम जैसे चाहे खर्च कर सको तो वास्तविक नियंत्रण किसके हाथ में होगा?'

व्यापारी ने कहा, 'यदि आप मुझे रकम देंगे तो नियंत्रण आपके हाथ में ही होगा। मगर आप यह क्यों पूछ रहे हैं?'

गुरु ने कहा, 'जीवन ने ही तुम्हें हाथ-पैर, आँख, कान, हृदयगति, और विचार-शक्ति दिया है। अब बताओ, तुम किसके नियंत्रण में हो?'

अब अंतिम, चौथी कहानी और सुनो-

एक झेन संन्यासी ने अपने गुरु से पूछा, 'हमें अपने शत्रुओं से कैसा व्यवहार करना चाहिए?'

गुरु ने कहा, 'तुम अपने शत्रुओं से केवल घृणा ही कर सकते हो?'

शिष्य ने अचरज से कहा, 'ऐसा कहकर क्या आप घृणा का समर्थन नहीं कर रहे?'

गुरु ने कहा, 'नहीं। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तुम उनसे घृणा करो। मेरे कहने का अर्थ यह है कि जब तुम किसी व्यक्ति को अपना शत्रु जानने लगते हो तब तुम उससे केवल घृणा ही कर सकते हो।'

अंत में सद्गुरु ओशो के एक अनूठे वचन पर अपनी बात पूरी करता हूं। वे कहते हैं कि स्वर्ग यानि मित्रों के बीच रहना, नर्क यानि शत्रुओं के बीच जीना। और दोस्त या दुश्मन कौन निर्मित करता है? हम खुद। अर्थात् हम स्वयं अपने स्वर्ग या नर्क के निर्माता हैं। ये हमारे चुनाव हैं। स्वर्ग तथा नर्क कोई भौगोलिक स्थल नहीं हैं, जहां मरने के पश्चात् हम जाते हैं। ये तो मनस्थितियां हैं, जिनमें हम जीते हैं। इन्हें हम अपने संग लिए फिरते हैं। ये हमारे दृष्टिकोण हैं, जिन चश्मों के माध्यम से देखने पर यही जगत स्वर्ग या नर्क सा दिखाई देने लगता है।

धन्यवाद।

96

दृष्टि परिवर्तन

अधिकांश लोग मुझे बुरे ही क्यों नजर आते हैं? इस नकारात्मक दृष्टि से कैसे मुक्ति पाऊं?

यह लघुकथा सुनो...डॉक्टर को जरूरी सर्जरी के लिये बुलाया गया। वह जितनी जल्दी अस्पताल में आ सकता था उतनी फुर्ती से आ गया। कपड़े बदलकर सीधा सर्जरी ब्लॉक मे चला गया। हाल से गुजरते हुए उसने देखा कि दुर्घटनाग्रस्त युवक के पिता उसका इन्तजार कर थे और चिन्ता मे इधर-उधर बेचैन घूम रहे थे। डॉक्टर को देखते ही वे बरस पड़े, 'आपने आने में इतना समय क्यों लगाया? क्या आपको नहीं पता कि मेरे बेटे की जान खतरे में है? क्या आपको अपनी जिम्मेदारी का कोई अहसास नहीं है?'

डॉक्टर विनम्रता से बोला- 'माफ कीजिए, मैं अस्पताल में नहीं था और जैसे ही मुझे सूचना मिली मैं जल्द से जल्द आ गया। आप कृपया शांत हो जाइए ताकि मैं ठीक से अपना काम कर सकूँ।'

'शांत हो जाऊँ! अरे, कैसे शांत हो जाऊँ? अगर आपका बेटा इस वक्त मरणासन्न होता तो क्या आप शांत हो सकते थे? और यदि आपका बेटा मर जाए तो आप क्या करते?' पिता ने गुस्से में लगभग चीखते हुए कहा।

डॉक्टर फिर भी मुस्कुराकर बोला- 'मैं ऐसे समय में भावपूर्वक परमात्मा को याद करता। संतगण कह गए हैं- 'माटी से काया बनी, माटी में मिल जायेगी।' देखिये, डॉक्टर जीवन को बढ़ा नहीं सकते। निवेदन है कि आप जाइए और प्रतीक्षालय में बैठकर अपने पुत्र के लिये प्रार्थना कीजिए। मैं भी प्रभु की दुआ के साथ आपके बेटे को बचाने की पूरी कोशिश करूंगा।'

पिता ने बड़बड़ाते हुए कहा 'जनाब, जब समस्या अपनी नहीं होती, तब दार्शनिक किस्म की सलाह देना बहुत आसान होता है।'

सर्जरी करीब दो घंटे तक चली। डॉक्टर खुशी-खुशी बाहर आकर बोला कि 'बधाई हो! भगवान का शुक्र है, आपका बेटा बच गया है। यदि कोई सवाल हो तो नर्स से पूछ लेना।' -ऐसा कहते हुए, पिता का जवाब सुने बिना ही डॉक्टर भागता हुआ सा चला गया।

डॉक्टर के चले जाने के कुछ मिनट बाद नर्स को देखकर पिता ने टिप्पणी की- 'उफ! ये डॉक्टर इतना घमंडी क्यों हैं? क्या वो कुछ देर के लिए रुक नहीं सकता था ताकि मैं अपने बेटे की हालत के बारे में तसल्ली से पूछ सकूँ?'

यह सुनकर नर्स की आँखों से आँसू बहने लगे। वह बोली- 'कल उनके इकलौते बेटे की एक सड़क दुर्घटना मैं मृत्यु हो गई थी। वे अपने पुत्र का अन्तिम संस्कार कर रहे थे जब हमने उन्हें आपके बेटे के इलाज हेतु बुलाया। आपके बेटे की जान बचाने के बाद अब वो अपने पुत्र का अन्तिम संस्कार पूरा करने गए हैं।'

दूसरों के बारे में नकारात्मक निर्णय लेने की शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। हमें पता नहीं होता कि उनके जीवन में क्या हो रहा है? वे किन परिस्थितियों से गुजर चुके हैं अथवा गुजर रहे हैं? किसी की मनोदशा या व्यवहार के पीछे क्या कारण छुपे हैं? संभवतः उस परिस्थिति में हमारी मनस्थिति **भी ऐसी हो जाती**!

97

नास्तिकता, आस्तिकता और तार्किकता

क्या कारण है कि आस्तिक सदा से हारते रहे हैं और नास्तिक तर्क में जीतते रहे हैं?

क्योंकि अतीत में प्रायः नास्तिक असली हुए हैं, आस्तिक नकली हुए हैं। बुद्धिमान लोग संदेहशील और मंदबुद्धि लोग विश्वासी हुए हैं। याद रखना- विश्वास यानि अंधविश्वास। अंधे लोग सदा आंख वालों से हारते रहे तो आश्चर्य कैसा? नास्तिक प्रगतिशील रहे हैं, आस्तिक परंपरावादी। नास्तिकों ने विज्ञान को जन्माया, धरती को स्वर्ग बनाने की दिशा भारी श्रम किया है। आस्तिकों ने विगत हजारों सालों में स्वर्ग की कल्पनाएं भर की हैं। वैज्ञानिकों ने दो-तीन सौ वर्षों में ही उन्हें साकार कर दिखाया। सच पूछो, तो स्वर्ग की कल्पनाएं फीकी पड़ गईं।

सुनो, सर रिचर्ड फेनमेन के बारे में- बीसवीं सदी के महान वैज्ञानिकों में से एक। वे असाधारण बुद्धि एवं प्रतिभा के धनी और घोर तार्किक थे। केवल २४ वर्ष की अवस्था में उन्होंने प्रिंसटन विश्विद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की और ४७ वर्ष की अवस्था में उन्हें सैद्धांतिक भौतिकशास्त्र में अभूतपूर्व योगदान के लिए नोबल पुरस्कार दिया गया।

रिचर्ड फेनमेन बहुत अच्छा ड्रम भी बजाते थे। १९६६ में स्वीडन के एक विश्वकोश प्रकाशक ने उनसे अनुरोध किया कि वे ड्रम बजाते हुए अपनी एक फोटो विश्वकोश में छपने के लिए भेजें ताकि 'सैद्धांतिक भौतिकशास्त्र जैसे कठिन विषय पर सिद्धहस्तता रखनेवाले वैज्ञानिक का मानवीय पक्ष भी उभरकर आ सके।'

फेनमेन ने प्रकाशक को पत्र में यह लिखकर भेजा-

'आदरणीय महोदय, मैं बहुत अच्छा ड्रम बजा सकता हूँ इस तथ्य का इससे कोई लेनादेना नहीं है कि मैं महान सैद्धांतिक भौतिकशास्त्री हूं। सैद्धांतिक भौतिकशास्त्र मानवीय बोध की पराकाष्ठा है और विज्ञान की चरम उपलब्धि है। आपका ऐसा सोचना और साबित करने का प्रयास करना कि जो लोग सैद्धांतिक भौतिकशास्त्र की समस्याएँ हल करते हैं वे सामान्य मनुष्यों द्वारा ड्रम बजाने जैसा दूसरा काम भी कर सकते हैं, यह मेरा अपमान है। मैं इतना मानवीय हूं कि आपसे यह कह सकूं, 'फोटो नहीं भेजूंगा, आपका विश्वकोश जाये भाड़ में'।

रिचर्ड फेनमेन को एक बार किसी पत्रिका ने 'विश्व का सर्वाधिक बुद्धिमान व्यक्ति' चुना। उनकी बुजुर्ग माँ ने इस पर कहा- 'यदि यह विश्व का सर्वाधिक बुद्धिमान आदमी है

तो ईश्वर हमारी रक्षा करे और ऐसे बुद्धिमानों से बचाये।’ स्मरण रहे कि फेनमेन घोर नास्तिक थे और उनकी मां पक्की रूढ़िवादी आस्तिक ईसाई महिला। शायद ऐसी परंपरावादी और क्रियाकांडी मां की खिलाफत में ही वे अधार्मिक हो गये थे।

एक बार फेनमेन और उनके वैज्ञानिक मित्र अल सेकेल पारलौकिकता पर चर्चा कर रहे थे। तभी फेनमेन की पत्नी आर्लीन का प्रसंग निकल पड़ा। आर्लीन को तपेदिक थी और वे अस्पताल में भरती थीं जब फेनमेन लॉस अलामोस की प्रयोगशाला में थे। उनके पलंग के पास एक पुरानी घड़ी रखी थी। आर्लीन ने फेनमेन से कहा कि वह घड़ी उन दोनों के साथ-साथ बिताये गए समय का प्रतीक है और फेनमेन इस बात को कभी न भूलें।

जिस दिन अस्पताल में आर्लीन की मृत्यु हो गई, नर्स ने आकर फेनमेन को आर्लीन की मृत्यु का समय बताया। फेनमेन ने देखा कि वह घड़ी ठीक उसी समय चलना बंद हो गई थी। ऐसा लग रहा था जैसे उनके एक-दूसरे के साथ बिताये गए समय की प्रतीक वह घड़ी ठीक उसी समय ठहर गई जब आर्लीन उनको हमेशा के लिए छोड़कर चली गई।

अल सेकेल ने फेनमेन से पूछा- ‘क्या इसमें तुम्हें कुछ पारलौकिक नहीं लगता?’

फेनमेन बोले- ‘बिलकुल नहीं। जैसे ही मैंने वह घड़ी देखी मैंने यह सोचना शुरू कर दिया कि ऐसा क्यों हुआ होगा? और मैं यह समझ गया- वह घड़ी पुरानी थी और अक्सर खराब होती रहती थी। वस्तुतः वह आर्लीन की मृत्यु से कुछ समय पहले ही रुक चुकी थी। बाद में नर्स कमरे में आई और उसने आर्लीन को मृत पाया। उसने फौरन घड़ी देखी और उसमें दिख रहा समय नोट कर लिया। नर्स ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि घड़ी कुछ मिनिटों से बंद पड़ी है। इसमें कोई पारलौकिक सम्बन्ध नहीं है। मैं इसे फौरन ही समझ गया।’

फेनमेन के नजदीकी लोग जानते हैं कि उनको पारलौकिकता के विषय पर राजी कर पाना असंभव था।

अतीत में प्रायः आस्तिक नकली हुए हैं। वे बचकाने प्रमाणों से असली नास्तिक को राजी नहीं कर सके। बुद्धिमान लोग संदेहशील होते हैं और मंदबुद्धि अंधविश्वासियों को पराजित कर देते हैं। वास्तविक आस्तिक इस प्रकार के बेहूदे सबूत प्रस्तुत नहीं करेगा। बाहर के जगत में सब नियम से चल रहा है, चाहे हमें पता हो अथवा न पता हो। नियम के अपवाद नहीं होते। घड़ी का चलना सकारण है और बंद होना भी किसी कारण से है। पदार्थ के लोक में अकारण कुछ भी संभव नहीं। यहां तक कि अनिश्चितता का भी नियम होता है- ‘दि लॉ ऑफ अनसरटेनिटी।’

अलौकिक और अकारण है चेतना, कॉन्सियसनैस। वह वस्तु-जगत का हिस्सा नहीं, ऑब्जेक्टिव नहीं। चैतन्य की अनुभूति आत्म-गत है, सब्जेक्टिव है। ‘लौकिक’ उसे कहते

हैं जिसे हम इंद्रियों के माध्यम से अथवा वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से जान सकते है। ये उपकरण इंद्रियों के फैलाव, उन्हीं के एक्सटेन्शन हैं। 'अलौकिक' यानि अतीन्द्रिय, जिसे किसी इंद्रिय या उपकरण से नहीं जाना जा सकता। जो जानने वाला है, द्रष्टा है, साक्षी चैतन्य है, वह कभी दृश्य नहीं बन सकता।

काश, इतनी सी बात समझ आ जाए तो आस्तिक-नास्तिक का यह पुराना संघर्ष समाप्त हो। धर्म की जगह एक नए प्रकार का विज्ञान आ जाएगा- चेतना का विज्ञान। प्राचीन भाषा में इसी को अध्यात्म कहा जाता था। तब विवाद की, हार-जीत की बात ही खतम हो जाएगी। धर्मों के विशेषण विदा हो जाएंगे। जैसे दुनिया में एक विज्ञान है, वैसे ही एक अध्यात्म रह जाएगा- नामरहित।इस दिशा में धीरे-धीरे कदम उठ रहे हैं। वे कदम अकेले वैज्ञानिकों द्वारा ही उठाए जा रहे हैं। अगर अध्यात्मविदों का सहयोग प्राप्त हो जाए तो शीघ्रता संभव है।

मैंने आरंभ में कहा कि अतीत में प्रायः नास्तिक असली हुए हैं, आस्तिक नकली हुए हैं। आजकल स्थिति कुछ पलट सी रही है- विशेषकर औद्योगिक और साम्यवादी क्रांति के बाद, विज्ञान की शिक्षा के प्रचार-प्रसार के पश्चात्। अब करीब-करीब आधी दुनिया में नास्तिक अंधविश्वासी हो गए हैं, सुनी-पढ़ी बात पर भरोसा करके, सरकार द्वारा फैलाई शिक्षा पद्धति के प्रभाव में आकर। उन मुल्कों और समाजों में अगर कोई आस्तिक होगा तो अपनी मेहनत से, अपनी प्रतिभा से, प्रचलित नास्तिकता पर संदेह करके होगा। साम्यवादी मुल्कों में अब आस्तिक शक्तिशाली, खोजी, अनुभवी, प्रौढ़, परिपक्व, विद्रोही व्यक्ति होगा। हालत काफी कुछ पलट गई है। और पूरी तरह पलटने के निकट पहुंच रही है।

शीघ्र ही फिजिसिस्ट और मिस्टिक का सुखद-संयोग होने वाला है। पुरानी मूढ़ताएं अपनी अंतिम घड़ियां गिन रही हैं।

98

वर्क इज वर्शिप

परमात्मा की खोजी में एक साहसी युवक, बामुश्किल नदी-पहाड़ों को पार करने के बाद आश्रम पहुँचने में सफल हुआ. उसने गुरुदेव के सत्संग में भाग लेने की अनुमति मांगी. अगले दिन भोर में आने की इजाजत पाकर वह प्रसन्न हुआ.

सुबह आश्रमवासियों के संग सत्संग में गुरुदेव ने चाय पी, तथा खेती-किसानी से जुड़ी काम की बातों पर चर्चा की.

चर्चा समाप्त होने के बाद युवक ने एक आश्रमवासी साधु से कहा- 'यह सब बहुत अजीब है. मैं तो यहाँ इस उम्मीद से आया था कि पाप-पुण्य के बारे में ज्ञानवर्धक प्रवचन सुनने को मिलेंगे, स्वर्ग-नरक और नैतिकता-अनैतिकता के बारे में सिखाया जाएगा. लेकिन गुरुदेव ने तो टमाटर व भिंडी उगाने, सिंचाई करने और खाद डालने जैसी साधारण बातों का जिक्र किया. मैं जहाँ से आया हूँ वहां तो सब यही कहते हैं कि ईश्वर करुणावान है और हमें सदैव उसकी प्रार्थना करनी चाहिए. वहाँ तो साधु-संन्यासी चाय पीना अधर्मिक मानते हैं. भोर के समय तो आप सबको ध्यान करना चाहिए'.

साधु ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया-

यहाँ हम लोग ऐसा समझते हैं कि ईश्वर ने अपने हिस्से की जिम्मेदारियां बहुत अच्छे से निभा दीं हैं और अब यह हमारे ऊपर है कि हम उसके काम को किस सुंदर विधि से आगे बढाएं. हमारे गुरुदेव कहते हैं- 'वर्क इज वर्शिप. कर्म ही पूजा है'. परमात्मा जो करे, सो ठीक ही होगा. उससे प्रार्थना करना अशोभनीय है एवं उसकी बुद्धिमत्ता पर संदेह का सूचक है. इस इलाके में केवल नासमझ लोग पूजा-पाठ करते हैं. कुछ तो शिकायतें करके प्रभु को सलाह भी देते हैं. और हां... चाय पीकर हम लोग अपनी सजगता को बढ़ाते हैं. मेरे भाई, इससे सरल ध्यान में सहयोगी बात भला और क्या होगी!'

एक कप चाय

परमगुरु ओशो की एक अंग्रेजी किताब का शीर्षक है–'ए कप ऑफ टी'। इसका तात्पर्य समझाने की अनुकंपा करें?

यह अद्भुत पुस्तक ओशो द्वारा हस्तलिखित पत्रों का संकलन है। जिनमें साधकों को दिए गए दिशा-निर्देश हैं। इन पत्रों में ओशो का ऐसा प्रेम झलकता है कि पढ़ने वाला भाव-विभोर हो जाता है। जरूरी नहीं कि आप आरंभ से ही शुरु करें। किसी भी पृष्ठ को खोलकर पढ़ लें और आपको ऐसा प्रतीत होगा कि आपके जीवन की आज की ही किसी घटना या समस्या के संबंध में परमगुरु की अंतर्दृष्टि आपको मिल गई। मूर्च्छा टूटी, जागृति आई।

चूंकि चाय हमें जगाती है, और विशेषकर जापान के झेन मठों में तो 'टी-सेरेमनी', चाय-समारोह को एक ध्यान विधि के रूप में ही किया जाता है। अतः यह प्यारा शीर्षक स्वयं ओशो द्वारा चुना गया है। थोड़े दिन पहले मैं एक कहानी पढ़ रहा था, प्रीतिकर लगी। सुनो। उसे सुनकर संकेत मिल जाएगा।

दर्शनशास्त्र के एक प्रोफेसर कक्षा में आये और उन्होंने छात्रों से कहा कि वे आज जीवन का एक महत्वपूर्ण पाठ पढ़ाने वाले हैं। उन्होंने अपने साथ लाई एक काँच की बड़ी बरनी (जार) को टेबल पर रखा और उसमें टेबल टेनिस की गेंदें डालने लगे और तब तक डालते रहे जब तक कि उसमें एक भी गेंद समाने की जगह नहीं बची। उन्होंने छात्रों से पूछा-क्या बरनी पूरी भर गई?

हाँ-आवाज आई।

प्रोफेसर साहब ने छोटे-छोटे कंकर उसमें भरने शुरु किये, धीरे-धीरे बरनी को हिलाया तो काफी सारे कंकर उसमें जहाँ जगह खाली थी, समा गये। फिर प्रोफेसर साहब ने पूछा, क्या अब बरनी भर गई है?

छात्रों ने एक बार फिर कहा-हाँ।

तब प्रोफेसर साहब ने रेत की थैली से हौले-हौले उस बरनी में रेत डालना शुरु किया, वह रेत भी उस जार में जहाँ संभव था वहाँ बैठ गई, अब छात्र अपनी नादानी पर हँसे। प्रोफेसर साहब ने पुनः पूछा- क्यों अब तो यह बरनी पूरी भर गई ना?

हाँ सर, अब तो पूरी भर गई है-सभी ने एक स्वर में उत्तर दिया।

सर ने टेबल के नीचे से चाय का एक कप निकालकर उसमें भरी चाय जार में डाली, चाय भी रेत के बीच मौजूद थोड़ी सी जगह में सोख ली गई। प्रोफेसर साहब ने गंभीर आवाज में समझाना शुरु किया-

इस काँच की बरनी को तुम लोग अपना जीवन समझो। टेबल टेनिस की गेंदें सबसे महत्वपूर्ण भाग अर्थात आजीविका, परिवार, बच्चे, मित्र, स्वास्थ्य और शौक हैं। छोटे

कंकर मतलब तुम्हारी कार, मकान, फर्नीचर, मनोरंजन आदि हैं, और रेत का मतलब और भी छोटी-छोटी बेकार सी बातें, निंदा, मनमुटाव, बहस, झगड़े वगैरह हैं। यदि तुमने काँच की बरनी में सबसे पहले रेत भरी होती तो टेबल टेनिस की गेंदों और कंकरों के लिये जगह ही नहीं बचती, या कंकर भर दिये होते तो गेंदें नहीं भर पाते। रेत जरूर आ सकती थी।

ठीक यही बात जीवन पर लागू होती है। यदि तुम छोटी-छोटी बातों के पीछे पड़े रहोगे और अपनी ऊर्जा उनमें नष्ट करोगे तो तुम्हारे पास मुख्य बातों के लिये पर्याप्त समय नहीं रहेगा। आत्म-सुख के लिये क्या जरूरी है- यह तुम्हें तय करना है। ध्यान साधना करो, भक्तिभाव में डूबो, अपने बच्चों के साथ खेलो, बगीचे में पानी डालो, सुबह पत्नी के साथ घूमने निकल जाओ, घर के बेकार सामान को बाहर निकाल फेंको, मेडिकल चेक-अप करवाओ। टेबल टेनिस गेंदों की फिक्र पहले करो, वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। तय करो कि क्या अनिवार्य है? फिर बाकी कम महत्व की वस्तुओं का, यानि कंकर का। और वक्त मिले तो रेत का भी ख्याल करो।

छात्र बड़े ध्यान से सुन रहे थे। अचानक एक ने पूछा, सर लेकिन आपने यह नहीं बताया कि 'चाय का कप' क्या है?

प्रोफेसर मुस्कुराये, बोले- मैं सोच ही रहा था कि अभी तक यह सवाल किसी ने क्यों नहीं किया? इसका उत्तर यह है कि चाय जागरण का प्रतीक है। होश की साधना के लिए अलग से वक्त नहीं लगता। उतना स्थान सदा खाली रहता ही है। जो कुछ भी करो, ध्यानपूर्वक करो। तुम्हारा संपूर्ण जीवन सजगता से ओत-प्रोत होता रहे। तब तुमसे कभी कुछ गलत न होगा, जिसके लिए पछताना पड़े।

चाय का एक अर्थ और है- जीवन हमें कितना ही परिपूर्ण और संतुष्ट लगे, लेकिन अपने खास मित्र के साथ एक कप चाय पीने की जगह हमेशा खाली होनी चाहिये। जीवन में जब सब कुछ एक साथ और जल्दी-जल्दी करने की इच्छा होती है, सब कुछ तेजी से पा लेने की इच्छा होती है, और हमें लगने लगता है कि दिन के चौबीस घंटे भी कम पड़ते हैं तो ऐसे तनाव के समय यह बोध कथा हमें याद रखनी चाहिए।

सिन्सियर बनो, सीरियस नहीं। गैर-गंभीर रहना सीखो। विश्राम भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना श्रम। परिवारजन या दोस्त के संग चाय पीने का समय जिसके पास नहीं है वह व्यक्ति चाहे आर्थिक रूप से सम्पन्न हो, मगर हार्दिक रूप से विपन्न है, भावनात्मक तल पर अति-दरिद्र है।

शून्यता में पूर्णता

अंतिम निवेदन.....सावधान!

मित्र, किताब को पढ़कर ज्ञानी तो नहीं बन गए?

खाली मन है दर्पण, जिसमें सत्य प्रतिबिम्बित होता है।

विचार–शून्य मन में अवतरित होता है पूर्ण।

इन रिक्त पृष्ठों की भांति हो जाना।

बस...! धन्यवाद।